VISION IAS
INSPIRING INNOVATION

MAINS 365

राजव्यवस्था

Classroom Study Material 2018

www.visionias.in
+91 8468022022

DELHI | JAIPUR | PUNE | HYDERABAD | AHMEDABAD | LUCKNOW

विषय सूची

1. केंद्र-राज्य सम्बन्ध 4

1.1. सहयोग की प्रणालियाँ 4

1.1.1. नीति आयोग 4

1.1.2. अंतर्राज्यीय परिषद 6

1.1.3. राज्यपाल 8

1.2. विशेष दर्जा प्राप्त राज्य 10

1.2.1. विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा 10

1.2.2. अन्य विशेष प्रावधान 11

1.2.3. पांचवीं अनुसूची (5th Schedule) 13

1.2.4. छठी अनुसूची 15

1.3. अंतर-राज्यीय जल विवाद 17

1.4. दिल्ली के लिए पूर्ण राज्य का दर्जा 21

1.5 राजकोषीय संघवाद 23

1.6. छोटे राज्यों की मांग 25

2. संवैधानिक उपबंधों से संबंधित मुद्दे 28

2.1 हेट स्पीच 28

2.2. निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु 30

2.3. धर्म परिवर्तन का अधिकार 32

2.4. प्रोन्नति में आरक्षण 34

2.5. खाप पंचायतें 35

2.6. अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान 37

2.7 राष्ट्रगान संबंधी मुद्दा 40

3. संसद/ राज्य विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्य 43

3.1. संसदीय कार्यवाही से संबंधित मुद्दे 43

3.1.1. सचेतक (व्हिप) 43

3.1.2. दल-बदल विरोधी कानून से संबंधित मुद्दे 44

3.1.3. संसदीय सत्र 46

3.1.4. संसदीय समितियां 48

3.1.5.लोकसभा अध्यक्ष (स्पीकर) से संबंधित मुद्दे 49

3.2. कार्यपालिका से संबंधित मामले 51

VISION IAS

3.2.1 अध्यादेश जारी करना 51

3.3. लाभ का पद 52

3.4. सरकारी मुकदमों की अधिकता 54

4. संवैधानिक ,विनियामकीय एवं अन्य निकाय 58

4.1. भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (CCI) 58

4.2 स्वायत्त निकायों को युक्तिसंगत बनाना 59

4.3. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग 60

4.4. केंद्रीय सतर्कता आयोग 60

5. भारत में चुनाव 63

5.1. चुनावी सुधार 63

5.1.1. हाइब्रिड इलेक्टोरल सिस्टम की मांग 63

5.1.2. लोकसभा एवं विधानसभाओं के एक साथ चुनाव 65

5.2. चुनावी वित्त-पोषण में सुधार 66

5.2.1. चुनावी बॉन्ड 67

5.3 लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम से सम्बंधित मुद्दे 69

5.4 भारत निर्वाचन आयोग से संबंधित मुद्दे 70

5.5. परिसीमन संबंधी मुद्दे 71

6. न्यायपालिका 73

6.1. न्यायिक नियुक्ति 73

6.1.1. उच्च न्यायालय में नियुक्तियों से सम्बन्धित मुद्दे 75

6.1.2. न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया 76

6.2 न्यायिक जवाबदेही 77

6.2.1. न्यायिक जवाबदेहिता और सूचना का अधिकार अधिनियम 79

6.3. न्यायिक विलंबन 80

6.4. न्यायाधिकरण 81

6.5. वैकल्पिक विवाद समाधान 83

7. पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व 86

7.1. निवारक सतर्कता 87

7.2 सूचना का अधिकार अधिनियम 88

7.3. सामाजिक लेखा परीक्षा कानून 91

VISION IAS

7.4 अभियोजन से पूर्व स्वीकृति 93

8. शासन (Governance) 95

8.1 राजनीति का अपराधीकरण 96

8.2. नेताओं से सम्बंधित मुकदमों की सुनवाई हेतु विशेष न्यायालय 97

8.3. राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र 98

8.4. आपराधिक न्याय प्रणाली 99

8.4.1. भारत में गवाहों का संरक्षण 100

8.4.2. कारागारों में क्षमता से अधिक कैदी 102

8.4.3. खुली जेल 105

8.4.4. यातना निरोधक कानून का प्रस्ताव 106

8.5. लेटरल एंट्री 107

8.6. मीडिया का विनियमन (Regulating Media) 110

8.6.1. फेक न्यूज़ (भ्रामक समाचार) 111

8.7 शासन में जन-सहभागिता में सुधार 112

8.7.1. विधान-पूर्व संवीक्षा 112

8.7.2 सिटीजन चार्टर 113

8.8 ई-गवर्नेंस: शासन का एक अवयव 115

8.8.1. सार्वजनिक वित्त प्रबन्धन प्रणाली 116

8.8.2. ई-विधान मिशन मोड परियोजना 116

8.8.3. ई-समीक्षा 116

8.8.4. यूनीफाइड प्लानिंग एंड एनालिसिस इंटरफ़ेस (UPaAI) 117

9. स्थानीय शासन (Local Government) 119

9.1. पंचायती राज संस्थाएं (Panchayti Raj Institutions: PRIs) 119

9.1.1. PRIs से सम्बंधित मामले 119

9.1.1.1. कार्यकर्ताओं से सम्बंधित मुद्दे 119

9.1.1.2. वित्त से संबंधित मुद्दे 120

9.1.1.3. प्रकार्यों से संबंधित मुद्दे 121

9.1.2. पंचायती राज संस्थाओं हेतु सरकार द्वारा उठाए गए कदम 121

9.2 शहरी स्थानीय निकाय 122

9.2.1 शहरी स्थानीय निकायों से संबंधित मुद्दे 122

9.2.2 ULBs हेतु सरकार द्वारा उठाये गए कदम 123

VISION IAS

1. केंद्र-राज्य सम्बन्ध

(CENTRE-STATE RELATION)

भारत एक संघ-आधारित लोकतंत्र है। सरकार के एक से अधिक स्तरों वाले किसी भी देश को इन स्तरों के मध्य अपनी शक्तियों, उत्तरदायित्वों तथा संसाधनों के सहभाजन की आवश्यकता होती है। भारत में संघीय शक्तियों के विभाजन को तीन भिन्न श्रेणियों के अंतर्गत रखा जा सकता है, ये हैं - विधायी, कार्यपालिका तथा वित्तीय।

श्रेणी	केंद्र और राज्य के मध्य विभाजन	केंद्र-राज्य संबंधों में मुद्दे
विधायी	• **क्षेत्रीय विभाजन:** संसद सम्पूर्ण भारतीय राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग हेतु विधि का निर्माण कर सकती है तथा राज्य, सम्पूर्ण राज्य या उसके किसी भाग हेतु विधि निर्माण कर सकता है। • **विधायी विषयों का तीन सूचियों में विभाजन,** जहाँ संसद को संघ सूची हेतु विधि निर्माण की अनन्य शक्ति प्राप्त है तथा राज्यों को राज्य सूची के विषयों के संबंध में यह शक्ति प्राप्त है। समवर्ती सूची के विषयों हेतु दोनों विधि निर्माण कर सकते हैं।	• राज्य सूची का असाधारण परिस्थितियों जैसे कि आपातकाल में केंद्र द्वारा अतिक्रमण। • राज्य विधेयकों को राष्ट्रपति के विचारार्थ आरक्षित रखने हेतु राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियाँ। • एक राज्य की क्षेत्रीय सीमा को पुनर्निर्मित करने की केंद्र में निहित शक्ति।
प्रशासनिक/ कार्यपालिका	• **तीन सूचियों के विषयों के संबंध में क्षेत्रीय विभाजन:** संघ सूची हेतु केंद्र की कार्यपालिका शक्ति का सम्पूर्ण भारत तक तथा राज्य सूची हेतु राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का उनके संबंधित क्षेत्रों तक विस्तार होता है। • समवर्ती सूची के अधीन विषयों पर कार्यपालिका शक्ति राज्यों में निहित है। अपवादस्वरूप उन परिस्थितियों को छोड़कर जब संविधान या संसद द्वारा अन्यथा निर्देशित किया गया हो।	• केंद्र द्वारा राज्यपाल की नियुक्ति और पदच्युति। • राष्ट्रपति शासन का अधिरोपण। • राज्यों में कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने हेतु केन्द्रीय बलों की तैनाती। • अखिल भारतीय सेवाओं, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो इत्यादि के अधिकारियों पर केंद्र का नियंत्रण।
वित्तीय	• **करारोपण शक्तियाँ:** संसद और राज्य विधानमंडल, दोनों को अपनी संबंधित सूचियों में उल्लिखित विषयों पर करों के अधिरोपण की शक्ति प्राप्त है। समवर्ती सूची के विषयों हेतु दोनों करों का आरोपण कर सकते हैं, परन्तु करारोपण की अवशिष्ट शक्ति संसद में निहित है।	• केंद्र और राज्यों के मध्य वित्त का आवंटन। उदाहरणार्थ, कई राज्य विशेष श्रेणी दर्जे की मांग कर रहे हैं। • केंद्र द्वारा निश्चित वित्त आयोग के कार्यक्षेत्र के माध्यम से राज्यों को वित्तीय आवंटन में भेदभाव।

1.1. सहयोग की प्रणालियाँ

(Mechanisms of Co-Operation)

1.1.1. नीति आयोग

(Niti Aayog)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, नीति आयोग की शासी परिषद (Governing Council) की चतुर्थ बैठक का आयोजन किया गया।

नीति आयोग के बारे में

- राष्ट्रीय भारत परिवर्तन संस्था (The National Institution for Transforming India: NITI आयोग) का गठन 1 जनवरी, 2015 को केन्द्रीय मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव के माध्यम से किया गया था।

VISION IAS

- यह भारत सरकार के एक प्रमुख नीतिगत "थिंक टैंक" के रूप में उभरा है, जो सहकारी संघवाद की भावना को बढ़ावा देता है।

  "सहकारी संघवाद" को संदर्भित करने वाले प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं:
    - राष्ट्रीय उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए राज्यों की सक्रिय भागीदारी के साथ राष्ट्रीय विकास प्राथमिकताओं, क्षेत्रकों तथा रणनीतियों का एक साझा दृष्टिकोण विकसित करना।
    - सशक्त राज्य ही सशक्त राष्ट्र का निर्माण कर सकता है इस तथ्य की महत्ता को स्वीकारते हुए राज्यों के साथ सतत आधार पर संरचनात्मक सहयोग की पहल और तंत्र के माध्यम से सहयोगपूर्ण संघवाद को बढ़ावा देना।
- इसके अन्य उद्देश्यों में शामिल हैं:
    - ग्रामीण स्तर पर विश्वसनीय योजना तैयार करने के लिए तंत्र विकसित करना और उसे उत्तरोत्तर उच्च स्तर तक समेकित करना।
    - आर्थिक प्रगति के लाभों से वंचित समाज के सुभेद्य वर्गों पर विशेष ध्यान केन्द्रित करना।
    - रणनीतिक और दीर्घकालिक नीति की रूपरेखाओं का निर्माण तथा उनकी प्रगति एवं क्षमताओं की निगरानी करना।
    - राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों, पेशेवरों तथा अन्य हितधारकों के एक सहयोगात्मक समुदाय के माध्यम से ज्ञान, नवाचार और उद्यमिता समर्थन प्रणाली का सृजन करना।

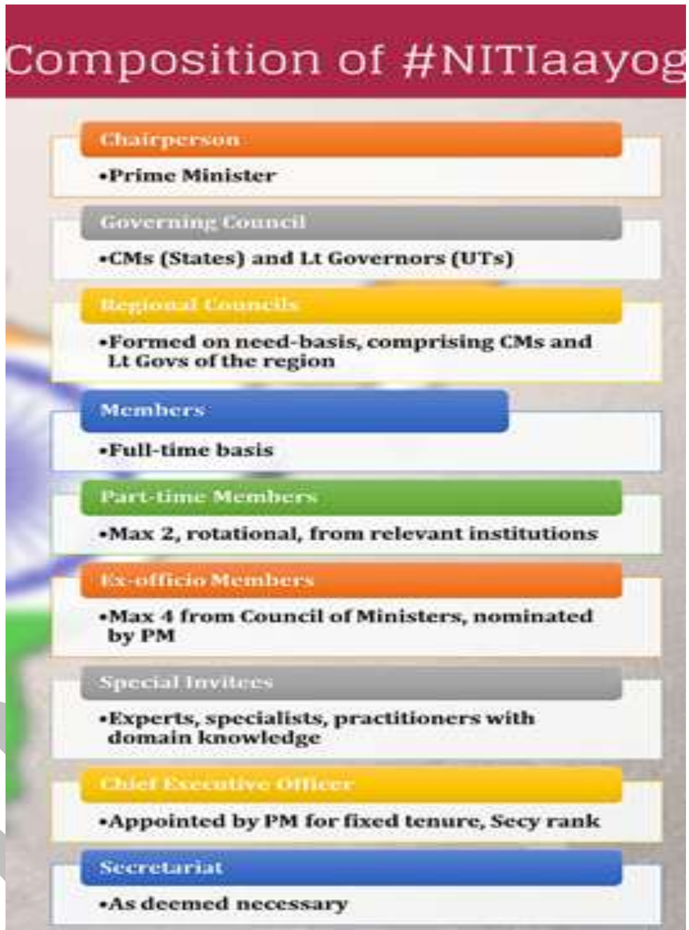

योजना आयोग से भिन्नता

- इसकी संरचना योजना आयोग के समान है, परंतु इसका कार्य केवल नीतिगत थिंक-टैंक के रूप में कार्य करने तक ही सीमित होगा। साथ ही इसे दो महत्वपूर्ण कार्यों (पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण तथा राज्यों को धन आवंटन) से मुक्त रखा गया है।
- नीति आयोग तथा योजना आयोग के मध्य योजना निर्माण करने के दृष्टिकोण में प्रमुख अंतर है यह कि नीति आयोग राज्यों की अधिकाधिक भागीदारी को प्रोत्साहित करता है, जबकि योजना आयोग ने 'वन-साइज़-फिट्स-ऑल' पद्धति के साथ 'टॉप-डाउन' दृष्टिकोण को अपनाया था।

नीति आयोग का महत्व

- **सहकारी संघवाद:** नीति आयोग की कार्यप्रणाली में राज्य सरकारों को प्रमुखता प्रदान की गई है तथा यह केन्द्रीय मंत्रालयों तथा राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों के मध्य मुद्दों के समाधान की प्रक्रिया को भी गति प्रदान की है।
- **प्रतिस्पर्द्धात्मक संघवाद:** नीति आयोग द्वारा विकसित सूचकांकों में राज्यों के मध्य बेहतर प्रदर्शन हेतु प्रतिस्पर्द्धा विद्यमान है। ये सूचकांक महत्वपूर्ण सामाजिक क्षेत्रों जैसे कि डिजिटल परिवर्तन सूचकांक, नवाचार सूचकांक, स्वास्थ्य सूचकांक इत्यादि में वृद्धिशील वार्षिक परिणामों का मापन करते हैं।
- **समावेशी विकास पर फोकस:** इसने 115 आकांक्षी जिलों के रूपांतरण पर ध्यान केन्द्रित करते हुए एक विशेष पहल प्रारम्भ की है। नीति आयोग सतत विकास लक्ष्यों के कार्यान्वयन की निगरानी हेतु यह एक नोडल निकाय भी है।
- **साक्ष्य आधारित नीति निर्माण:** यह पर्याप्त आंकड़ों पर आधारित नीति निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करता है। जैसे कि इसने तीन-वर्षीय कार्य एजेंडा, समग्र जल प्रबंधन सूचकांक, भौगोलिक सूचना तंत्र (GIS) इत्यादि पर आधारित योजना निर्माण को प्रोत्साहन दिया है।
- **आर्थिक सुधार:** इसने कृषि उत्पाद विपणन समिति अधिनियम (APMC Act), उर्वरक क्षेत्र के कायाकल्प, किसानों की आय में वृद्धि, मॉडल एग्रीकल्चर लैंड लीजिंग एक्ट आदि में सुधारों पर नीतिगत दस्तावेज प्रकाशित किया है।

VISION

- **ज्ञान एवं नवाचार केंद्र:** यह एक सूचना कोष (रिपोजिटरी) के रूप में कार्य करता है क्योंकि यह सभी राज्यों में सर्वोत्तम कार्यप्रणालियों के संकलन, संचारण तथा अनुकरण करवाने में संलग्न है। इसके द्वारा अटल इनोवेशन मिशन भी लॉन्च किया गया है। नीति आयोग द्वारा वैश्विक उद्यमिता शिखर सम्मेलन, 2017 का भी आयोजन किया गया था।
- **संतुलित क्षेत्रीय विकास:** जैसे कि उत्तर-पूर्व जैसे क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना। उदाहरणार्थ: पूर्वोत्तर हेतु नीति फोरम, जिसका उद्देश्य पूर्वोत्तर क्षेत्र (NER) के त्वरित, समावेशी और सतत आर्थिक विकास के मार्ग में आने वाले विभिन्न अवरोधों की पहचान करना है। इस नीति फोरम की सह-अध्यक्षता नीति आयोग के उपाध्यक्ष द्वारा की जाती है।

नीति आयोग के समक्ष चुनौतियाँ

- **कार्यों का अतिव्यापन:** सौंपे गए कार्यों के निर्वहन में नीति आयोग के कार्यक्षेत्र का अंतर-राज्य परिषद् के कार्यक्षेत्र के साथ अतिव्यापन हो जाता है। ध्यातव्य है कि अंतर-राज्य परिषद् एक संवैधानिक निकाय है। वर्तमान में अंतर-विभागीय समन्वय की जिम्मेदारी कैबिनेट सचिव के कार्यालय पर होती है और उसके लिए एक समन्वय प्राप्त करना मुश्किल हो जाता है।
- **समृद्ध राज्यों का पक्ष:** प्रतिस्पर्धात्मक संघवाद को प्रोत्साहन देने से पहले से ही समृद्ध राज्यों को अधिक लाभ हो सकता है जबकि पिछड़े राज्यों को हानि हो सकती है।
- **सांविधिक प्रकृति का अभाव:** इसे एक कार्यपालिका प्रस्ताव द्वारा स्थापित किया गया है, जिससे इसमें सरकारी हस्तक्षेप की अत्यधिक संभावना विद्यमान है।
- **सक्रिय कार्यवाही योग्य लक्ष्यों का अभाव:** इसे कुछ चुनौतियों के समाधान हेतु (जिनका आज भारत सामना कर रहा है) सक्रिय उपाय करने की आवश्यकता है जैसे कि रोजगार के अवसरों का सृजन, आर्थिक विकास में वृद्धि आदि। यहाँ तक कि इसका तीन-वर्षीय कार्यवाही एजेंडा भी आसन्न चुनौतियों हेतु अतिविस्तारित दृष्टिकोण रखता है।
- **कार्यान्वयन पर सीमित फोकस:** यह अपनी अनुशंसाओं के व्यावहारिक पहलुओं पर पर्याप्त ध्यान नहीं देता है जैसे कि नौकरशाहों के उत्तरदायित्वों का निर्धारण, सरकार-नागरिक अंतःक्रिया इत्यादि। ये इसके द्वारा प्रस्तुत उत्कृष्ट अनुशंसाओं के लिए अत्यावश्यक हैं किन्तु इन पहलुओं पर ध्यान न दिए जाने से ये अनुशंसाएं मात्र दस्तावेजों में दर्ज़ रह जाती हैं।

निष्कर्ष

सहकारी संघवाद से आगे बढ़ते हुए अब यह 'प्रतिस्पर्द्धात्मक सहकारी संघवाद' है जो केंद्र और राज्यों के मध्य संबंधों को परिभाषित करता है। इसके तहत नीति आयोग ने भारत में परिवर्तन के संचालन का दायित्व राज्यों को सौंपा है। भारत सतत विकास लक्ष्य, 2030 (SDGs 2030) प्राप्त करने के मार्ग में कई चुनौतियों का सामना कर रहा है। केंद्र सरकार ने कई मिशन मोड कार्यक्रम प्रारम्भ किए हैं, जैसे कि स्मार्ट सिटी, कौशल भारत-कुशल भारत, स्वच्छ भारत, सभी के लिए आवास और विद्युत इत्यादि। इन सभी की सफलता केंद्र और राज्यों के मध्य सक्रिय सहयोग एवं स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा पर निर्भर करती है। नीति आयोग इस सहयोग की प्राप्ति में उत्प्रेरक की भूमिका निभाने हेतु तैयार है।

1.1.2. अंतर्राज्यीय परिषद

(Inter-State Council)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में अन्तर्राज्यीय परिषद और अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थायी समिति का पुनर्गठन किया गया है।

पृष्ठभूमि

- संविधान का **अनुच्छेद 263** एक अन्तर्राज्यीय परिषद (ISC) के गठन का प्रावधान करता है।
- न्यायमूर्ति **आर. एस. सरकारिया** की अध्यक्षता में गठित आयोग ने 1988 में अपनी रिपोर्ट में अनुशंसा की थी कि:
  - अनुच्छेद 263 के अंतर्गत अंतर सरकारी परिषद (IGC) नामक एक **स्थायी अन्तर्राज्यीय परिषद** को स्थापित किया जाना चाहिए।
  - IGC को सामाजिक-आर्थिक योजना और विकास के अतिरिक्त, अनुच्छेद 263 के खंड (b) और (c) में निर्दिष्ट दायित्वों को सौंपा जाना चाहिए।
- इस प्रकार, 1990 में अन्तर्राज्यीय परिषद की स्थापना हुई।

अन्तर्राज्यीय परिषद

- **अनुच्छेद 263,** राष्ट्रपति को निम्नलिखित मुद्दों पर **जाँच, चर्चा और सलाह** देने के लिए एक अन्तर्राज्यीय परिषद स्थापित करने की शक्ति प्रदान करता है:

  (a) विवाद, जो राज्यों के मध्य उत्पन्न हो गए हों;

  (b) उन विषयों पर, जिनमें कुछ या सभी राज्यों अथवा संघ और एक या अधिक राज्यों के समान हित हों; या

VISION IAS

(c) लोक हित के किसी विषय पर अनुशंसा करने और विशिष्टतया उस विषय के संबंध में नीति और कार्यवाही के अधिक बेहतर समन्वयन के लिए अनुशंसाएं करने।

- इसकी स्थापना **1990 में सरकारिया आयोग की अनुशंसाओं के आधार पर एक राष्ट्रपति आदेश** द्वारा की गई थी।
- इसमें परिषद प्रधानमंत्री (अध्यक्ष), सभी राज्यों एवं संघ शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री, जिन संघ शासित प्रदेशों में विधानसभाएं नहीं हैं उनके प्रशासक तथा प्रधानमंत्री द्वारा मनोनीत छह केन्द्रीय कैबिनट मंत्री (गृह मंत्री सहित) शामिल होते हैं।
- इसके कार्य उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 131 के तहत प्रदत्त, सरकारों के मध्य कानूनी विवादों के निर्णयन के क्षेत्राधिकार के पूरक हैं।
- यह अंतरराज्यीय, केंद्र-राज्य तथा केंद्र एवं संघ शासित प्रदेश संबंधों से संबंधित मुद्दों पर एक **परामर्शदात्री निकाय** है।
- यह **एक स्थायी संवैधानिक निकाय नहीं** है परन्तु यदि राष्ट्रपति को ऐसा प्रतीत होता है कि इस परिषद की स्थापना लोकहित के लिए आवश्यक है, तब इसे किसी भी समय स्थापित किया जा सकता है।

ISC स्थायी समिति के संबंध में

- 1996 में परिषद के विचारार्थ मामलों पर सतत परामर्श और निपटान हेतु परिषद की **स्थायी समिति** की स्थापना की गयी थी। इसमें निम्नलिखित सदस्य शामिल होते हैं-
    - केंद्रीय गृह मंत्री (अध्यक्ष)
    - पाँच केंद्रीय कैबिनेट मंत्री
    - नौ मुख्यमंत्री
- 1991 में परिषद की सहायतार्थ एक अन्तर्राज्यीय परिषद सचिवालय की स्थापना की गयी जिसका प्रमुख भारत सरकार का एक सचिव होता है।

ISC का महत्व

- **संवैधानिक समर्थन-** केंद्र सरकार के सहयोग हेतु अन्य मंचों के विपरीत, ISC को संवैधानिक समर्थन प्राप्त है जो राज्यों की स्थिति को मजबूत करता है।
- **सहकारी संघवाद-** केंद्र और विभिन्न राज्यों में अलग-अलग राजनैतिक दलों के शासन के दौरान परस्पर संवाद व वार्ता की आवश्यकता बढ़ जाती है। इस प्रकार, ISC राज्यों को अपनी चिंताओं पर चर्चा करने हेतु एक मंच प्रदान करता है।
- **राज्य-राज्य तथा केंद्र-राज्य से संबंधित विवादों का समाधान करना-** इसके द्वारा वर्ष 2015 और 2016 में क्रमशः 82 एवं 140 मुद्दों का समाधान किया था।
- **निर्णयन प्रक्रिया को विकेंद्रीकृत बनाना -** अधिक विकेन्द्रीकृत राजनीति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सरकार के विभिन्न स्तरों के मध्य वार्ता की आवश्यकता होती है। इस दिशा में अंतर्राज्यीय परिषद पहला महत्वपूर्ण कदम है।
- **सरकारों को अधिक जवाबदेह बनाती है-** वार्ता एवं चर्चा हेतु एक मंच होने के कारण, यह केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर सरकारों को अपने कार्यों के प्रति और अधिक जवाबदेह बनाती है।
- **एक सुरक्षा वाल्व-** यह परिषद केंद्र और राज्यों के मध्य विश्वास की कमी को दूर करने में सहायता करती है। हालाँकि यह हमेशा समस्या का समाधान नहीं कर पाती है, फिर-भी इसने कम से कम एक सुरक्षा वाल्व के रूप में कार्य किया है।
- **अन्य उपायों का अभाव:** कुछ मुद्दों हेतु क्षेत्रीय परिषद जैसे अन्य संवैधानिक उपबन्ध भी उनके भौगोलिक दायरे के संदर्भ में सीमित हैं।

ISC की कार्य पद्धति से संबंधित मुद्दे

- इसे केवल वार्ता मंच के रूप में देखा जाता है। इस प्रकार इसके द्वारा यह दर्शाने की आवश्यकता है कि यह आगे की कार्यवाही कर सकता है।
- इसकी अनुशंसाएं सरकार पर बाध्यकारी नहीं होती हैं।
- इसकी बैठक नियमित रूप से नहीं होती जैसे कि हाल ही में इसकी बैठक 12 वर्षों के अन्तराल के पश्चात् हुई थी।

ISC को सशक्त बनाने हेतु क्या किये जाने की आवश्यकता है?

- केंद्र में बहुमत से एक-दलीय सरकार की वापसी हुई है। इससे संघीय ढाँचे के सामंजस्यपूर्ण ढंग से कार्य करने हेतु, ISC जैसी व्यवस्थाओं के माध्यम से **अंतर-सरकारी तंत्र** को सुदृढ़ करने की आवश्यकता पुनः प्रबल हुई है।
- **सरकारिया आयोग** ने अनुशंसा की थी कि इसे **संविधान में परिकल्पित सभी शक्तियाँ** प्रदान करने की आवश्यकता है। ज्ञातव्य है कि संविधान का **अनुच्छेद 263(a)** जो इसे अंतर्राज्यीय विवादों की जाँच करने की शक्ति प्रदान करता है परन्तु इसे 1990 के राष्ट्रपति आदेश में सम्मिलित नहीं किया गया था।

VISION IAS

- *सिविल सोसायटी इंस्टीट्यूशंस* और *कॉर्पोरेट क्षेत्र* को ISC के अंदर अपना प्रतिनिधित्व बढ़ाने के लिए **अधिक अवसर** प्रदान किए जाने चाहिए।
- इसके अतिरिक्त, इसके सचिवालय को केंद्रीय गृह मंत्रालय से राज्यसभा सचिवालय में **स्थानांतरित** किया जा सकता है ताकि वह केंद्रीय गृहमंत्री के स्थान पर, (एक तटस्थ संघीय कार्यकर्ता) भारत के उपराष्ट्रपति के निर्देशन में संचालित हो सके।
- इसे **केंद्र और राज्यों के मध्य** न केवल प्रशासनिक बल्कि **राजनीतिक और विधायी आदान-प्रदान** के एक मंच के रूप में सुदृढ़ करना चाहिए। उदाहरणार्थ राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित किए गए विषयों (जैसे शिक्षा एवं वन) पर कानून बनाते समय केंद्र को राज्यों से अधिक व्यापक रूप से परामर्श करना चाहिए तथा उन्हें इन विषयों के संबंध में अधिक नम्यता प्रदान करनी चाहिए।
- **पुंछी आयोग** की कुछ निम्नलिखित अनुशंसाओं पर भी विचार किया जाना चाहिए।
  - अंतर्राज्य परिषद की राज्यों के साथ उचित परामर्श के पश्चात् विकसित एजेंडे पर आधारित वर्ष में कम से कम तीन बैठकें अवश्य होनी चाहिए।
  - परिषद के संगठनात्मक ढांचे में अखिल भारतीय सेवाओं के अधिकारियों के अतिरिक्त विधि, प्रबंधन तथा राजनीति विज्ञान से संबंधित विषयों के विशेषज्ञों को भी शामिल किया जाना चाहिए।
  - परिषद को एक पेशेवर सचिवालय के साथ कार्यात्मक स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। सचिवालय सीमित अवधि हेतु प्रतिनियुक्ति पर आए केंद्र और राज्य अधिकारियों द्वारा समर्थित प्रासंगिक ज्ञान के क्षेत्र के विशेषज्ञों से गठित होना चाहिए।
  - ISC को नीति विकास तथा विवाद समाधान हेतु एक जीवंत एवं वार्ता मंच बनाने के पश्चात् राष्ट्रीय विकास परिषद के कार्यों को ISC को स्थानांतरित करने पर विचार किया जा सकता है।

यद्यपि प्रधानमंत्री, चयनित कैबिनेट मंत्रियों तथा मुख्यमंत्रियों सहित समान सरंचना से युक्त नीति आयोग की शासी परिषद् जैसे अन्य निकाय भी विद्यमान हैं। परन्तु, नीति आयोग के विपरीत ISC को संवैधानिक समर्थन प्राप्त है। नीति आयोग के पास केवल एक कार्यकारी शासनादेश है। यह केंद्र-राज्य संबंधों में सुधार के लिए आवश्यक सहयोगात्मक परिवेश के निर्माण में राज्यों को अधिक ठोस आधार प्रदान करता है।

1.1.3. राज्यपाल

(Governor)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में संपन्न कर्नाटक विधानसभा चुनावों में राज्यपाल की भूमिका पर प्रश्न उठाए गए।

अन्य सम्बंधित तथ्य

- इस संदर्भ में यह प्रश्न उठा कि क्या राज्यपाल द्वारा सरकार बनाने और सदन में अपना बहुमत सिद्ध करने के लिए चुनाव में सर्वाधिक सीटें प्राप्त करने वाले सबसे बड़े दल को आमंत्रित करना चाहिए, या चुनाव के बाद निर्मित ऐसे गठबंधन को जिसकी सीटों की संख्या सबसे बड़े दल से अधिक है।
- **संविधान के अनुच्छेद 164 (1)** के अनुसार मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा। सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया है कि अनुच्छेद 164 (1) में मुख्यमंत्री पद हेतु कोई अर्हता वर्णित नहीं की गयी है और इसे 164 (2) में वर्णित सामूहिक उत्तरदायित्व के साथ पढ़ा जाना चाहिए। साथ ही सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि मुख्यमंत्री पद के उम्मीदवार के लिए एकमात्र शर्त उसे "सदन में बहुमत का समर्थन प्राप्त होना" है।
- परन्तु राज्यपालों द्वारा मुख्यमंत्री की नियुक्ति से संबंधित अपनी विवेकाधीन शक्ति का दुरुपयोग किया गया है। यह विधायकों की हॉर्स ट्रेडिंग (खरीद-फरोख्त) के प्रोत्साहन, दसवीं अनुसूची की मूल भावना के विरुद्ध दल परिवर्तन तथा राज्यपाल पद के सम्बन्ध में लोक विश्वास में कमी का कारण बन सकता है।
- कर्नाटक के विपरीत गोवा, मणिपुर और मिजोरम राज्यों के मामलों में, सबसे बड़े दल को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित नहीं किया गया था। अतः इस घटना ने राज्यपाल की भूमिका पर प्रश्न चिह्न लगा दिया एवं सर्वोच्च न्यायालय को इस मुद्दे का संज्ञान लेने हेतु बाध्य किया।

राज्यपाल के पद का महत्व

- संवैधानिक योजना के तहत राज्यपाल का अधिदेश महत्वपूर्ण है जैसे कि
  - सरकार के गठन का पर्यवेक्षण करना,
  - राज्य में संवैधानिक तंत्र की विफलता पर प्रतिवेदन देना,
  - केंद्र और राज्य के मध्य समादेश और साथ ही साथ प्रभावी संचार की श्रृंखला को बनाए रखने,
  - राज्य विधानमंडल द्वारा पारित विधेयकों पर अपनी अनुमति आरक्षित रखना तथा
  - आवश्यकतानुसार अध्यादेश जारी करना।

VISION IAS

- एक नाममात्र शासक के रूप में राज्यपाल राज्य में संवैधानिक संकट के समय शासन की निरन्तरता को सुनिश्चित करता है, सरकार के विभिन्न स्तरों में अनौपचारिक रूप से विवादों के समाधान में उसकी भूमिका एक तटस्थ मध्यस्थ तथा समुदाय के एक शान्ति रक्षक की होती है।

राज्यपाल की भूमिका से संबंधित मुद्दे

- विवेकाधीन शक्तियों का दुरुपयोग:
    - अनुच्छेद 200 और 201: जब कोई विधेयक राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तो वह विधेयक पर अनुमति देता है या रोक सकता है अथवा उसे राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रख सकता है। राज्यों ने आरोप लगाया है कि इस प्रावधान का राज्यपाल द्वारा प्राय: दुरुपयोग किया जाता है, ऐसे मामलों में राज्यपाल केंद्र सरकार के आदेश पर कार्य करता है।
    - अनुच्छेद 356: एक राज्य में संवैधानिक आपातकाल के अधिरोपण हेतु अनुशंसा करना। वर्तमान समय तक केंद्र सरकार द्वारा राजनीतिक लाभ हेतु इस शक्ति का 120 से अधिक बार दुरुपयोग किया गया है। हालाँकि एस.आर.बोमई बनाम भारत संघ वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया था कि केन्द्रीय कार्यपालिका का राज्य कार्यपालिका पर नियंत्रण संबंधी ऐसा व्यवहार भारतीय संविधान की मूल संरचना के विपरीत है।
- केंद्र द्वारा नियुक्त: तत्कालीन सरकार के प्रति राजनीतिक रूप से निष्ठावान बनने हेतु इस पद को राजनीतिज्ञों के लिए एक सेवानिवृत्ति पैकेज के रूप में बदल दिया गया है। इसके परिणामस्वरूप एक राजनीतिक विचारधारा से जुड़े एक उम्मीदवार द्वारा संवैधानिक रूप से अधिदिष्ट निष्पक्ष स्थान की आवश्यकताओं के प्रति समायोजन करना कठिन हो सकता है।
- उनके कार्यकाल की समाप्ति से पूर्व स्वेछाचारी पदच्युति: यद्यपि बी.पी.सिंघल बनाम भारत संघ वाद में उच्चतम न्यायालय के निर्णय द्वारा राज्यपालों हेतु उनके कर्तव्यों के सम्पादन में तटस्थता तथा निष्पक्षता को प्रोत्साहित करने हेतु एक निश्चित कार्यकाल की मांग की गई थी। परन्तु इस मांग को व्यावहारिक रूप से क्रियान्वित नहीं किया जा रहा है।

सुझाव

- **सरकारिया आयोग** की रिपोर्ट और *रामेश्वर प्रसाद बनाम भारत संघ, 2005* के वाद में संवैधानिक खंडपीठ के निर्णय में कहा गया कि:
    - विधानसभा में सर्वाधिक समर्थन प्राप्त दल या दलों के गठबंधन को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए।
    - यदि कोई चुनाव-पूर्व गठबंधन उपस्थित है, तो उसे एक राजनीतिक दल माना जाएगा तथा इस गठबंधन को बहुमत प्राप्त होने की स्थिति में गठबंधन के नेता को राज्यपाल द्वारा सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया जाएगा।
    - चुनाव में किसी दल या चुनाव-पूर्व गठबंधन को स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं होने की स्थिति में राज्यपाल को निम्नलिखित प्राथमिकताओं के आधार पर मुख्यमंत्री का चयन करना चाहिए:
        - सर्वाधिक सीटें प्राप्त करने वाले विभिन्न दलों का चुनाव-पूर्व गठबंधन।
        - निर्दलीय सदस्यों के समर्थन से सरकार बनाने का दावा पेश करने वाला सबसे बड़ा दल।
        - चुनाव-पश्चात् का गठबंधन जिसके सभी दलों की सरकार में हिस्सेदारी हो।
        - चुनाव-पश्चात् का गठबंधन जिसमें कुछ दल सरकार बनाएं और शेष बाहर से समर्थन दें।
- **एम.एम.पुंछी आयोग** द्वारा वर्णित किया गया है कि त्रिशंकु विधानसभा के मामले में राज्यपाल को **"संवैधानिक परम्पराओं"** का पालन करना चाहिए।
- हालाँकि ***एस आर बोम्मई वाद*** मूलतः त्रिशंकु विधानसभा से संबंधित न होकर राज्यपाल के विवेकाधिकार से संबंधित था, तथापि इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण निर्णय दिए गए। इसके अनुसार सदन में बहुमत सिद्ध करने (फ्लोर टेस्ट) हेतु 48 घंटों का समय (हालांकि इसे 15 दिनों तक बढ़ाया जा सकता है) दिया जाना चाहिए ताकि विधायिका द्वारा इस सन्दर्भ में निर्णय लिया जाए तथा राज्यपाल की विवेकाधिकार शक्तियाँ केवल एक उत्प्रेरक के रूप में कार्य करें।
- एक संभावित समाधान यह होगा कि पेशेवर राजनीतिज्ञों को मनोनीत नहीं किया जाए तथा जीवन के अन्य क्षेत्रों में प्रख्यात व्यक्तियों का चयन किया जाना चाहिए। सरकारिया तथा एम.एम.पुंछी दोनों आयोगों द्वारा इस ओर संकेत किया गया था।
- उच्चतम न्यायालय द्वारा राज्यपाल की रिपोर्ट में दुराशय से कृत दावों की जांच की जाती है। उच्चतम न्यायालय के इस क्षेत्राधिकार को सरकार बनाने के लिए निमंत्रण प्रक्रिया में राज्यपाल के ऐसे दावों को कवर करने हेतु विस्तारित किया जा सकता है।
- सरकार के गठन को शासित करने वाले नियम संविधान में स्पष्ट रूप से निर्दिष्ट किए जाने चाहिए, क्योंकि राज्यपाल को केंद्र सरकार की इच्छानुसार राजनीतिक प्रक्रिया को संचालित करने हेतु पर्याप्त विवेकाधीन शक्तियाँ प्राप्त हैं।
- राज्यपाल को अपने पद की शपथ के अनुसार कार्य करना चाहिए और यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उसके द्वारा मुख्यमंत्री पद हेतु आमंत्रित व्यक्ति राज्य में एक उत्तरदायी और पर्याप्त रूप से स्थायी सरकार बनाने में सक्षम हो। भारतीय संविधान के शिल्पी डॉ बी.आर. अम्बेडकर ने अपने भाषण में कहा था कि राज्यपाल को अपने विवेकाधिकार का उपयोग "दल के प्रतिनिधि" के रूप में नहीं बल्कि "सम्पूर्ण राज्य की जनता के प्रतिनिधि" के रूप में करना चाहिए।

VISION IAS

1.2. विशेष दर्जा प्राप्त राज्य

(States With Special Status)

1.2.1. विशेष श्रेणी राज्य का दर्जा

(Special Category Status - SCS)

- हाल ही में, आंध्र प्रदेश के सांसदों द्वारा राज्य के लिए विशेष श्रेणी के दर्जे की मांग की गयी। केंद्र ने इस मांग को अस्वीकार कर दिया है।
- यह मांग आंध्र प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम के आधार पर की गयी। इस अधिनियम में यह प्रावधान किया गया था कि "केंद्र सरकार राज्य के पिछड़े क्षेत्रों को उचित अनुदान प्रदान कर सकती है और यह भी सुनिश्चित कर सकती है कि पिछड़े क्षेत्रों को विशेष विकास पैकेज के रूप में पर्याप्त लाभ और प्रोत्साहन प्रदान किए जाएं "।
- यद्यपि केंद्र द्वारा राज्य को विशेष श्रेणी राज्य के समान वित्तीय अनुदान प्रदान करने पर सहमति प्रदान की गयी है, लेकिन विशेष श्रेणी का दर्जा प्रदान करने की मांग को अस्वीकार कर दिया गया है। केंद्र द्वारा यह तर्क दिया गया कि 14वें वित्त आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों के आधार पर आंध्र प्रदेश को विशेष श्रेणी का दर्जा प्रदान नहीं किया जा सकता है।
- **मार्च 2018 में** केंद्र सरकार ने यह प्रतिबद्धता व्यक्त की थी कि वह आंध्रप्रदेश को बाह्य एजेंसियों जैसे अन्य साधनों के माध्यम से निधियों का 90% प्रदान करेगी जो विशेष श्रेणी राज्यों के समतुल्य होगा। यह व्यवस्था नाबार्ड (NABARD) के माध्यम से निधियों का हस्तांतरण करने के राज्य सरकार के सुझावों को स्वीकार करते हुए की गयी थी।
- 2015 में प्रधानमंत्री ने **बिहार** के लिए 1.25 लाख करोड़ रूपए के इसी प्रकार के एक **विशेष पैकेज** की घोषणा की थी।

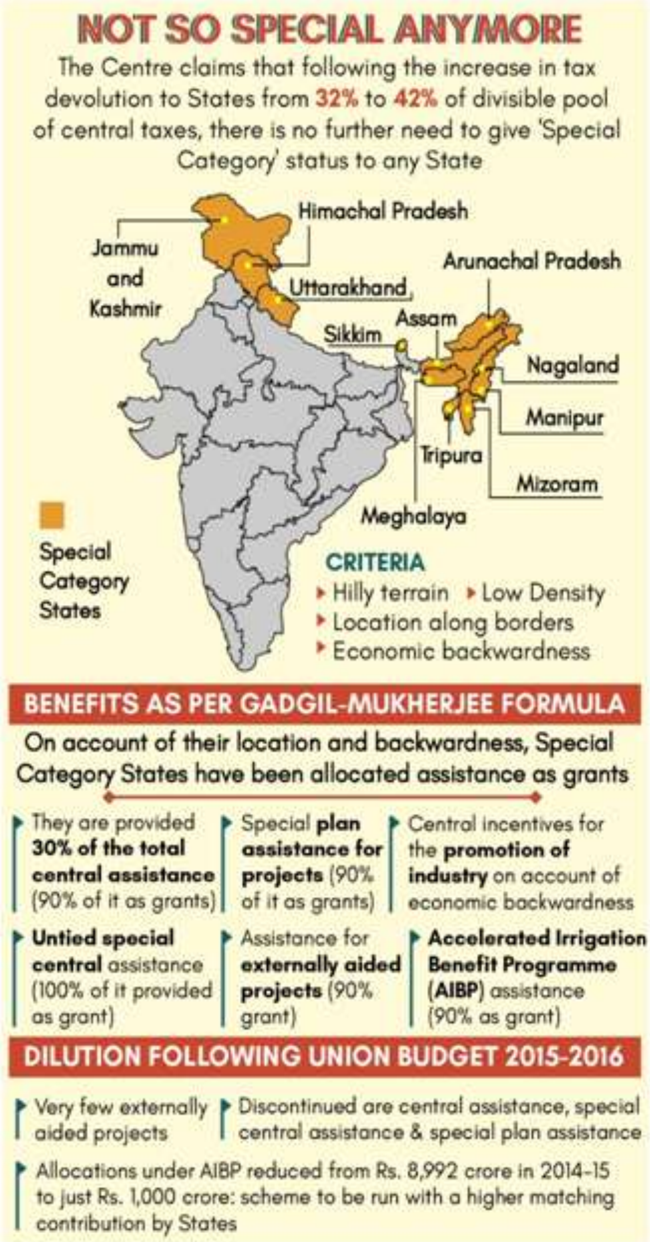

SCS क्या है?

- संविधान में किसी राज्य को SCS का दर्जा प्रदान करने से संबंधित कोई प्रावधान सम्मिलित नहीं किया गया है। परन्तु देश के कुछ भागों की आर्थिक स्थिति अन्य राज्यों की तुलना में अत्यंत पिछड़ी हुई थी, अत: पूर्ववर्ती योजना आयोग व राष्ट्रीय विकास परिषद (NDC) द्वारा SCS राज्यों को केंद्रीय योजनागत सहायता प्रदान की गई।
- विशेष श्रेणी राज्य की अवधारणा पहली बार 1969 में गाडगिल फ़ॉर्मूले के आधार पर 5वें वित्त आयोग द्वारा लागू की गयी थी। समकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप इस फॉर्मूले को कई बार संशोधित भी किया गया।
- 1991 में गाडगिल-मुखर्जी फॉर्मूला अपनाया गया। इसे 14वें वित्त आयोग तक प्रयोग में लाया गया।
- विशेष दर्ज़ा प्रदान करने के पीछे मुख्य तर्क यह था कि कुछ राज्यों के पास उनकी अंतर्निहित विशेषताओं के कारण संसाधन आधार संकुचित है तथा वे विकास के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं जुटा सकते।

SCS मांगों के समक्ष व्याप्त चुनौतियाँ

- **14वें वित्त आयोग की अनुशंसाएं:** वर्ष 2015 में 14वें वित्त आयोग की अनुशंसाओं के स्वीकृत होने के पश्चात् इसने प्रभावी रूप से विशेष श्रेणी के दर्जे को समाप्त कर दिया हैं।

- **दर्जा प्रदान करने पर अनेक राज्यों से इस प्रकार की मांगों में वृद्धि:** चुनावों के दौरान विशेष श्रेणी का दर्जा देने हेतु लोकलुभावन वादे ऐसी मांगों में वृद्धि करते हैं। आंध्रप्रदेश के अतिरिक्त ओडिशा, बिहार, छत्तीसगढ़ तथा राजस्थान द्वारा भी पूर्व में विशेष श्रेणी राज्य के दर्जे (SCS) की मांग उठाई गई है।
- **स्वेच्छाचारी मानदंड:** SCS योजना आयोग की अनुशंसाओं पर वर्तमान में निष्क्रिय राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा प्रदान किया जाता था। ये अनुशंसाएं योजना आयोग द्वारा विकसित मानदंडों पर आधारित होती थीं। इन मानदंडों के स्वेच्छाचारी होने के कारण इनकी आलोचना की जाती थी। उदाहरण के लिए, झारखण्ड और छत्तीसगढ़ (2001 में उनके गठन के पश्चात्) के लिए यह दर्जा केवल इस आधार पर अस्वीकृत कर दिया था कि वे अंतर्राष्ट्रीय सीमा साझा नहीं करते हैं।
- **स्थिति में कोई सुस्पष्ट परिवर्तन नहीं:** SCS राज्यों द्वारा प्राप्त की गई प्रति व्यक्ति केन्द्रीय योजना सहायता "सामान्य श्रेणी" के राज्यों को प्राप्त सहायता से चार गुना अधिक होती थी। इसके अतिरिक्त वे उद्योगों को आकर्षित करने हेतु कर प्रोत्साहन भी प्राप्त करते थे जिनमें पूँजी निवेश सब्सिडी, उत्पाद शुल्क और आय कर छूट तथा परिवहन लागत सब्सिडी शामिल होते थे। परन्तु ये प्रोत्साहन इन राज्यों के औद्योगीकरण में व्यापक तौर पर असफल सिद्ध हुए।
- **वित्तीय रूप से अंकेक्षित (audited) डेटा का अभाव** 14वें वित्त आयोग के समक्ष एक प्रमुख चुनौती थी। इसलिए आयोग ने असंसाधित डेटा को एकत्रित किया तथा उसे दोनों राज्यों के मध्य विभाजित कर दिया जिसके परिणामस्वरूप राज्य के गठन के समय पर्याप्त निधि का आवंटन नहीं हुआ।

आगे की राह

- योजना आयोग की समाप्ति के पश्चात् SCS को आवंटित अनुदान में अत्यधिक कटौती की गयी है। वर्तमान में, SCS और अन्य राज्यों को आवंटित अनुदान के मध्य का अंतर अत्यंत कम हो गया है और यह दर्जा राजनीतिक लाभ का प्रतीक मात्र बन गया है।
- हाल ही में कर अंतरण में हुई 42% तक की वृद्धि और राज्यों को प्रदत्त सामान्य केंद्रीय सहायता में कमी के परिणामस्वरूप SCS के तहत प्रदत्त लाभ कम हो गए हैं। लेकिन अभी भी निधि अंतरण की अधिक न्यायसंगत विधियों को विकसित करने की आवश्यकता है।
- रघुराम राजन समिति (2013) द्वारा "अल्प विकसित राज्यों" की श्रेणी के आरम्भ और "SCS" की समाप्ति हेतु प्रस्तुत की गयी सिफारिशों को विभिन्न राज्यों के विकास संबंधी आवश्यकताओं को बेहतर ढंग से समझने के लिए लागू किया जा सकता है।
- इस समिति द्वारा प्रस्तुत "अल्प विकसित राज्यों" की श्रेणी समान रूप से भारित 10 संकेतकों पर आधारित है। इन संकेतकों में मासिक प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय, शिक्षा, स्वास्थ्य, घरेलू सुविधाओं, निर्धनता दर, महिला साक्षरता, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति जनसंख्या का प्रतिशत, शहरीकरण दर, वित्तीय समावेशन और भौतिक कनेक्टिविटी सम्मिलित हैं।

1.2.2. अन्य विशेष प्रावधान

(Other Special Provisions)

भारतीय संविधान का **भाग 21, "अस्थायी, संक्रमणकालीन और विशेष उपबंध"** भारत के विभिन्न राज्यों के लिए विशेष उपबंधों को सम्मिलित करता है:

विशेष दर्जा (special status) और विशेष श्रेणी दर्जा (special category status: SCS) के मध्य अंतर

- विशेष दर्जा संसद के दोनों सदनों के दो-तिहाई बहुमत द्वारा पारित अधिनियम के माध्यम से भारतीय संविधान द्वारा प्रत्याभूत है, जबकि विशेष श्रेणी दर्जा (SCS) सरकार के प्रशासनिक निकाय राष्ट्रीय विकास परिषद् (NDC) द्वारा प्रदान किया जाता रहा है।
- विशेष दर्जा विधायी और राजनीतिक अधिकारों को सशक्त बनाता है जबकि SCS केवल आर्थिक, प्रशासनिक एवं वित्तीय पहलुओं से संबंधित है।
- SCS की अवधारणा पहली बार 1969 में प्रस्तुत की गई थी जब पांचवें वित्त आयोग ने कुछ वंचित राज्यों को अधिमान्य व्यवहार के साथ केन्द्रीय सहायता तथा कर रियायत प्रदान करने की मांग की थी। अनुच्छेद 370 तथा 371 (विशेष उपबंध) संविधान के प्रवर्तन से ही इसके भाग रहे हैं, जबकि परवर्ती उपबंधों के समूह को संविधान में संसद द्वारा संशोधनों के माध्यम से सम्मिलित किया गया था।

अनुच्छेद 370 — जम्मू-कश्मीर राज्य के संबंध में अस्थायी उपबंध।

अनुच्छेद 371 से 371J — 12 राज्यों के लिए विशेष उपबंधों को शामिल करते हैं। ये हैं - असम, महाराष्ट्र, गुजरात, सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, कर्नाटक, नागालैंड, मिजोरम, मणिपुर, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना तथा गोवा।

VISION IAS

371 के तहत विशेष दर्जा प्रदान किए जाने के कारण

- राज्य के पिछड़े क्षेत्रों के लोगों की आकांक्षाओं की पूर्ति करना, अथवा
- राज्य के जनजातीय लोगों के सांस्कृतिक एवं आर्थिक हितों की सुरक्षा करना, अथवा
- राज्य के कुछ भागों में कानून और व्यवस्था की ख़राब स्थिति से निपटने हेतु, अथवा
- राज्य के स्थानीय लोगों के हितों की रक्षा हेतु।

अनुच्छेद 371 से संबंधित कुछ मुद्दे

- **राजनीतिकरण:** इस स्थिति को वोट बैंक आकर्षित करने की एक रणनीति के रूप में भी देखा जाता है, क्योंकि इससे कुछ प्रत्यक्ष लाभ प्रदान किये जा सकते हैं। जैसे कि अनुच्छेद 371J के समावेशन के पश्चात् हैदराबाद-कर्नाटक के 6 सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े जिलों में शिक्षा एवं रोजगार में आरक्षण तथा अवसंरचना विकास हेतु निधि उपलब्ध कराना, हालांकि इस सन्दर्भ में इसने यह भी सुनिश्चित किया है कि एक पृथक राज्य की मांग पुन:प्रकट न हो।
- **स्थानीय लोगों को प्राथमिकता:** अनुच्छेद 371D आंध्रप्रदेश के कुछ जिलों में स्थानीय लोगों को सरकारी नौकरियों में 85% तक आरक्षण प्रदान करने का उपबंध करता है। इसी प्रकार अनुच्छेद 371F के तहत विशेष दर्जा प्राप्त होने के कारण सिक्किम स्थानीय सिक्किम निवासियों हेतु निजी क्षेत्र की नौकरियों में 90% तक आरक्षण प्रदान करने हेतु एक विधेयक प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है।
- **अधिक संसाधनों तक पहुंच का अभाव:** आवश्यक नहीं कि इस अनुच्छेद में जिलों को शामिल करने से उस क्षेत्र में संसाधनों की उपलब्धता सुनिश्चित हो जाए। उदाहरण के लिए - 371J के अंतर्गत शामिल कर्नाटक के जिले अभी भी विभिन्न प्रकार की वंचनाओं से पीड़ित हैं।
- **नागरिकों के मूल अधिकारों को बाधित करना:** नागालैंड के जनजातीय निकायों ने अनुच्छेद 371A का उद्धरण देते हुए नगरपालिका चुनावों में महिलाओं हेतु 33% सीट आरक्षण के निर्णय का विरोध किया है। ज्ञातव्य है कि यह अनुच्छेद उनके जनजातीय रीति-रिवाजों को सुरक्षा प्रदान करता है। इस प्रकार, महिलाओं के राजनीतिक अधिकार बाधित होते हैं।

अनुच्छेद 370 से संबंधित अन्य तथ्य

- 2015 में जम्मू-कश्मीर उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि अनुच्छेद 370 ने संविधान में एक स्थायी स्थान प्राप्त किया है तथा इसकी विशेषता है कि यह संशोधन, निरसन या निराकरण से परे है।
- यह भी कहा गया कि अनुच्छेद 35A राज्य में लागू मौजूदा कानूनों को "सुरक्षा" प्रदान करता है।
- हालांकि उच्चतम न्यायालय ने कहा कि केवल संसद ही अनुच्छेद 370, जो जम्मू-कश्मीर को विशेष स्वायत्त दर्जा प्रदान करता है, को समाप्त करने पर विचार कर सकती है।
- अनुच्छेद 370 के निरसन हेतु भारतीय संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत, संशोधन आवश्यक है। पंरतु अनुच्छेद 370 को समाप्त करने हेतु साथ ही साथ राज्य की "संविधान सभा" की अनुशंसा प्राप्त करना भी अनिवार्य है। इस प्रकार इससे तात्पर्य है कि मौजूदा अनुच्छेद के खंड (1)(d) के तहत "राज्य की सहमति" आवश्यक होगी।

क्या अनुच्छेद 370 को एकतरफ़ा रूप से निरस्त किया जा सकता है?

- अनुच्छेद 370 के खंड 3 के अनुसार, "राष्ट्रपति एक लोक अधिसूचना द्वारा यह घोषणा कर सकेगा कि यह अनुच्छेद प्रवर्तन में नहीं रहेगा, परन्तु राष्ट्रपति द्वारा ऐसी अधिसूचना जारी करने से पूर्व उस राज्य (कश्मीर) की संविधान सभा की अनुशंसा प्राप्त करना आवश्यक होगा।"
- इस प्रकार अनुच्छेद 370 केवल तभी निरस्त किया जा सकता है जब कश्मीर की नई संविधान सभा द्वारा निरसन हेतु अनुशंसा की जाए।
- उल्लेखनीय है कि जनवरी 1957 में राज्य के संविधान निर्माण का कार्य संपन्न होने के पश्चात् राज्य की अंतिम संविधान सभा का विघटन कर दिया गया था। अतः यदि संसद अनुच्छेद 370 को रद्द करने हेतु सहमत होती है, तो एक नई संविधान सभा का गठन करना होगा।
- संविधान सभा में राज्य विधान सभा हेतु निर्वाचित विधायक ही सम्मिलित होंगे। प्रत्यक्ष रूप से कहा जाए तो केंद्र सरकार, जम्मू-कश्मीर की स्वीकृति के बिना अनुच्छेद 370 को निरस्त नहीं कर सकती।

VISION IAS

अनुच्छेद 35A के विषय में

- इसे 1954 में संविधान के अनुच्छेद 370(1)(d) के तहत जारी **राष्ट्रपति के आदेश** द्वारा संविधान में सम्मिलित किया गया था।
- यह जम्मू-कश्मीर के विधान मंडल को राज्य के **"स्थायी निवासियों" तथा उनके विशेष अधिकारों एवं विशेषाधिकारों** को परिभाषित करने की शक्ति प्रदान करता है। साथ ही यह उपबंध भी करता है कि इन विशेष अधिकारों और विशेषाधिकारों को अन्य राज्यों के लोगों के समानता के अधिकार या संविधान के तहत किसी अन्य अधिकार के उल्लंघन के आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती।
- यह जम्मू-कश्मीर के संविधान के कुछ प्रावधानों को संरक्षण प्रदान करता है जैसे कि राज्य के बाहर विवाह करने वाली स्थानीय महिलाओं को सम्पत्ति अधिकारों से वंचित करना। इसके साथ ही साथ उनके बच्चों को भी इन अधिकारों से वंचित कर दिया जाता है।
- यह अनुच्छेद जम्मू-कश्मीर के बाहर के निवासियों को राज्य में निवास करने और सम्पत्ति खरीदने से प्रतिबंधित करता है।
- यह तर्क दिया जाता है कि यह अनुच्छेद 14,19 तथा 21 के तहत प्रदत्त मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है, क्योंकि सरकारी नौकरियों और अचल संपत्तियों की खरीद के सम्बन्ध में यह गैर-निवासियों के विरुद्ध भेदभावपूर्ण व्यवहार का प्रावधान करता है।

1.2.3. पांचवीं अनुसूची (5th Schedule)

हाल ही में, केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में **भारतीय संविधान की अनुसूची-V** के अधीन अनुसूचित क्षेत्रों का विस्तार करने की स्वीकृति प्रदान की गयी है।

अन्य संबंधित तथ्य

- इससे पूर्व राजस्थान में 1981 में किये गए अनुसूचित क्षेत्रों के विस्तार के बाद, 2011 की जनगणना के आधार पर राज्य में पुनर्गठन के कारण 2014 में एक और विस्तार प्रस्तावित किया गया था।
- ये क्षेत्र अब केंद्रीय और राज्य सरकारों की वर्तमान योजनाओं के अंतर्गत **जनजातीय उप-योजना** के एक भाग होंगे।

किसी क्षेत्र को अनुसूचित क्षेत्र घोषित करने हेतु मानदंड

- जनजातीय जनसंख्या की बहुलता;
- क्षेत्र की सघनता और युक्तियुक्त आकार;
- क्षेत्र की अल्प-विकसित प्रकृति
- लोगों के आर्थिक स्तर में सुस्पष्ट असमानता।

इन मानदंडों को **भारतीय संविधान में वर्णित नहीं किया गया है** किन्तु ये पूर्णतया स्थापित हो चुके हैं।

अनुसूचित क्षेत्र वाले राज्य

आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, राजस्थान और तेलंगाना के क्षेत्रों में अनुसूचित क्षेत्र संबंधी प्रावधान लागू हैं।

जनजातीय सलाहकार परिषद्

- इसकी स्थापना राष्ट्रपति के निर्देश द्वारा अनुसूचित क्षेत्र वाले राज्य में या किसी ऐसे राज्यों जहां अनुसूचित जनजाति तो है किन्तु अनुसूचित क्षेत्र नहीं है में की जाती है।
- इसमें 20 सदस्य शामिल होते हैं, जिनमें से तीन-चौथाई उस राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जनजातियों के प्रतिनिधि होने चाहिए।
- राज्यपाल इन परिषदों के सदस्यों की संख्या को विनियमित करने, उनकी नियुक्ति की रीति, इन परिषदों के अध्यक्ष, अधिकारियों और कर्मचारियों की नियुक्ति तथा इसकी बैठकों और सामान्य कार्यवाहियों के संचालन के नियम उपबंधित कर सकता है।

पांचवीं अनुसूची (अनुच्छेद 244)

- पांचवी सूची के उपबंध असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम से भिन्न किसी भी अन्य राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों और अनुसूचित जनजातियों के प्रशासन और नियंत्रण के लिए लागू होंगे।
- यह भारत के उन बड़े हिस्सों में "अनुसूचित क्षेत्रों" का निर्धारण करती है जिनमें "अनुसूचित जनजातियों" के हितों को संरक्षित किया जाना आवश्यक है। अनुसूचित क्षेत्र की **50 प्रतिशत से अधिक आबादी का जनजातीय होना** आवश्यक है।

VISION IAS

- **5वीं अनुसूची के अंतर्गत राज्यपाल की शक्तियां**

राज्यपाल की विभिन्न शक्तियों में शामिल हैं-

- राज्य के किसी अनुसूचित क्षेत्र में **शांति और सुशासन हेतु विनियमन करना**, जैसे- अनुसूचित क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के द्वारा या उनके मध्य भूमि अंतरण को निषिद्ध या प्रतिबंधित करना; उन क्षेत्रों में अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों को किये जाने वाले भूमि आवंटन को विनियमित करना; ऐसे क्षेत्र में अनुसूचित जनजातियों के लोगों को साहूकारों द्वारा धन उधार देने के व्यवसाय को विनियमित करना।
- संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा पारित किए गए किसी भी अधिनियम के अनुसूचित क्षेत्रों में **लागू न होने के संबंध में निर्देश देना।**
- उपर्युक्त वर्णित किसी भी विनियमन के निर्धारण की प्रक्रिया में, राज्यपाल किसी भी **संघ या राज्य कानून को निरस्त या संशोधित कर सकता है।**
- राज्यपाल इस प्रकार के विनियमन राज्य की **जनजातीय सलाहकार परिषद् के परामर्श से ही बना सकता है।**
- **जनजाति सलाहकार परिषद् (Tribes Advisory Council: TAC)**: 5वीं अनुसूची के तहत निर्धारित किया गया है कि यह TAC का कर्त्तव्य होगा कि वह राज्य में जनजातियों के कल्याण और प्रगति से संबंधित विषयों (राज्यपाल द्वारा संदर्भित) पर **राज्यपाल को परामर्श** प्रदान करे।
- **राष्ट्रपति और अनुसूचित क्षेत्र**:
  - राष्ट्रपति को राज्यपाल से परामर्श के बाद किसी भी **अनुसूचित क्षेत्र की सीमाओं में परिवर्तन** करने की शक्ति प्रदान की गयी है।
  - राज्यपाल द्वारा निर्धारित किये गये विनियमन केवल राष्ट्रपति की स्वीकृति के उपरांत ही प्रभावी होते हैं। राज्यपाल के लिए अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राष्ट्रपति के समक्ष **वार्षिक रिपोर्ट** प्रस्तुत करना अनिवार्य है।
- **अनुसूची में संशोधन:** संसद विधि द्वारा इस अनुसूची के किसी भी प्रावधान में परिवर्द्धन, परिवर्तन या निरसन के माध्यम से संशोधन कर सकती है। ऐसा कोई कानून संविधान के अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन नहीं माना जायेगा।
- पांचवीं अनुसूची के उपबंधों का **पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996** के माध्यम से और अधिक कानूनी और प्रशासनिक सुदृढीकरण हुआ है।

5वीं अनुसूची से संबंधित मुद्दे

- यह अनुसूचित क्षेत्रों को शासित करने के लिए प्राधिकार और शक्ति को केंद्रीकृत करने की प्रवृत्ति दर्शाता है जो केंद्र सरकार के लिए राज्यपाल के माध्यम से कल्याण के नाम पर हस्तक्षेप करने का मार्ग प्रशस्त करता है।
- **TAC से संबंधित मुद्दे**
  - स्वायत्त जिला परिषदों (ADCs), जिनमें कुछ सीमा तक विधायी और वित्तीय शक्तियां निहित हैं, के विपरीत किसी भी शक्ति के बिना TACs का सृजन करना।
  - TACs के संघटन के सम्बन्ध में कोई स्पष्टता नहीं है, विशेष रूप से शेष एक-चौथाई सदस्यों के संबंध में।
- **राज्यपाल की भूमिका से संबंधित मुद्दे**
  - प्रायः राज्यपाल का कार्यालय व्यावहारिक रूप से केवल वार्षिक रिपोर्ट-लेखन संस्थान की भूमिका तक ही सीमित हो जाता है।
  - राज्यपाल की विवेकाधीन भूमिका की अस्पष्टता
- कभी-कभी जनजातीय समुदायों के कैबिनेट मंत्रियों को भी सदस्य के रूप में नियुक्त किया जाता है, जिसके कारण हितों में संघर्ष उत्पन्न होता है क्योंकि, राज्य कैबिनेट का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति भी TAC की अध्यक्षता करता है।

पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996

- पंचायतों से संबंधित संविधान के भाग 9 के प्रावधान पांचवीं अनुसूची के क्षेत्रों पर लागू नहीं होते हैं। हालांकि, संसद कुछ अपवादों और संशोधनों के साथ इन प्रावधानों को ऐसे क्षेत्रों तक विस्तृत कर सकती।
- इसके अंतर्गत संसद ने पंचायतों के प्रावधान (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम, 1996 को अधिनियमित किया है, जिसे **पेसा** के नाम से जाना जाता है।
- वर्तमान में दस राज्यों में पांचवीं अनुसूची के क्षेत्र हैं। ये राज्य हैं: आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, छत्तीसगढ़, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा और राजस्थान।

* अधिनियम के अनुसार, प्रत्येक गांव में ग्राम सभा होगी जिसकी निम्नलिखित भूमिका होगी-
    * जनजातीय समुदाय की परंपराओं, रिवाजों और संस्कृति का संरक्षण करना।
    * स्थानीय विवादों का समाधान करना।
    * प्रबंधन और संरक्षण की पारंपरिक प्रणालियों के आधार पर साझा संपत्तियों का प्रबंधन और संरक्षण करना।
    * प्रशासन द्वारा भूमि अधिग्रहण के मामले में जनजातियों को भूमि के पुनर्स्थापन की अनुमति प्रदान करना।
    * जनजातीय लोगों को धन उधार देने पर नियंत्रण और लघु वनोपजों पर स्वामित्व।
    * स्थानीय बाजारों और मेलों पर नियंत्रण के साथ-साथ मदिरा के आसवन, निषेध और निर्माण के नियंत्रण का अधिकार।
    * नीलामी द्वारा गौण खनिजों के दोहन के लिए रियायत, अनुसूचित क्षेत्रों में गौण खनिजों के लिए निष्कर्षण लाइसेंस/खनन पट्टे को अनुमति के लिए संस्तुति देना

PESA, 1996 की सीमाएं एवं इसके अप्रभावी कार्यान्वयन के कारण

* **जनजातियों में जागरूकता और शिक्षा का निम्न स्तर:** जिसके कारण वे अपनी आवाज़ मज़बूत ढंग से नहीं उठा पाते। ग्राम सभा बड़े पैमाने पर ग्राम पंचायतों के अधीनस्थ ही रहती है।
* **शक्तियों का सतही प्रशासनिक और राजकोषीय विकेन्द्रीकरण:** प्रमुख शक्तियां अभी भी राज्य सरकारों में निहित हैं।
* **कर, शुल्क, प्रशुल्क या टोल के आरोपण और संग्रहण की अपर्याप्त शक्तियां:** राज्य वित्त आयोगों की सिफारिशों को या तो आंशिक रूप से स्वीकार किया गया है या उनमें से कुछ विशेष सिफारिशों को ही क्रियान्वित किया गया है।
* **जनजातियों का विस्थापन:** राजनेताओं, नौकरशाहों और निजी कंपनियों के मध्य व्यापक गठजोड़ जिसने अनेकों जनजातियों को उनकी भूमि से विस्थापित कर दिया है।
* **राज्य सरकार द्वारा प्रावधानों की अवहेलना करना:** उदाहरण के लिए, पेसा ग्रामीण क्षेत्रों के लिए है, राज्यों ने पेसा के प्रावधानों के अनुपालन से बचने के लिए और जनजातीय क्षेत्रों में खनन और उद्योगों को स्वीकृति देने के लिए अनुसूचित क्षेत्रों में ग्राम पंचायतों को नगर पंचायतों में परिवर्तित कर दिया है।
* **नियमों के निर्माण हेतु कोई समय सीमा नहीं:** पेसा अधिनियम, नियमों के निर्माण करने की शक्ति को स्पष्ट नहीं करता और ना ही नियम तैयार करने हेतु राज्यों के लिए कोई समय-सीमा निर्धारित करता है।
* **निर्णयों के विरुद्ध अपील के लिए कोई प्रावधान नहीं:** जनजातियों के अधिकारों के नियमित उल्लंघन को रोकने के लिए किसी कार्यशील शिकायत निवारण तंत्र का पूर्ण रूप से अभाव है।

आगे की राह

* पेसा एक शक्तिशाली कानून है जो अनुसूचित क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों पर जनजातीय जनसंख्या के अधिकारों की पहचान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है और इस प्रकार उनके जीवन स्तर में व्यापक बदलाव ला सकता है।
* राज्य सरकारों को जमीनी स्तर पर अधिनियम के वास्तविक कार्यान्वयन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली सरकारी मशीनरी और हितधारकों की क्षमता बढ़ाने के लिए विभिन्न पहलें करनी चाहिए। सिविल सोसाइटी संगठन प्रत्येक स्तर पर हितधारकों के मध्य जागरूकता उत्पन्न करने और राजनीतिक रूप से विभाजित जनजातीय समुदायों को संगठित करने में रणनीतिक भूमिका निभा सकते हैं। इसलिए, इस मुद्दे के विभिन्न पहलुओं का समाधान करने के लिए एक बहुपक्षीय रणनीति समय की मांग है।

1.2.4. छठी अनुसूची

(6th Schedule)

संविधान की छठवीं अनुसूची में चार पूर्वोत्तर राज्यों अर्थात् असम, मेघालय, त्रिपुरा और मिजोरम में जनजातीय क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में विशेष प्रावधान सम्मिलित हैं ताकि उनकी सांस्कृतिक पहचान और रीति-रिवाज़ को अक्षुण्ण बनाए रखा जा सके।

छठवीं और पाँचवीं अनुसूची के मध्य तुलना

हालांकि संविधान की पाँचवीं एवं छठवीं दोनों ही अनुसूचियाँ आदिवासी समुदायों को सशक्त बनाने के लिए निर्मित की गयी हैं, किन्तु इस सन्दर्भ में छठवीं अनुसूची को पाँचवीं अनुसूची से बेहतर माना जाता है, क्योंकि:

* यह अधिक स्वायत्तता प्रदान करती है।
* पाँचवीं अनुसूची में उल्लिखित परिषद, राज्य विधान मंडल द्वारा निर्मित की जाती है जबकि छठवीं अनुसूची में यह स्वयं संविधान द्वारा स्थापित की गयी है।
* पाँचवीं अनुसूची की परिषद के विपरीत इनके पास स्वयं के लिए बजट तैयार करने की वित्तीय शक्ति भी है।
* इसे विस्तृत शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं तथा कई विषयों पर **कानून निर्माण करने की शक्ति** भी प्रदान की गयी है। इसके विपरीत पाँचवीं अनुसूची में जनजातीय सलाहकार परिषद के पास केवल राज्य सरकार को परामर्श देने की शक्ति है और वह भी मात्र उन विषयों पर जिन पर राज्यपाल सलाह माँगे। हालाँकि भूमि हस्तांतरण से संबंधित मामलों में इसे स्वयं निर्णय लेने की शक्ति प्राप्त है।

VISION IAS

- छठवीं अनुसूची की परिषदों को विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा व सड़क योजनाओं के वित्तपोषण के लिए भारत की **समेकित निधि** से भी धन प्राप्त होता है।

कुछ अन्य कदम जिन्हें छठवीं अनुसूची को अधिक सशक्त के लिये उठाये जाने की आवश्यकता है:

- सभी क्षेत्रों में निर्वाचित ग्राम परिषदों का गठन।
- राज्य चुनाव आयोग द्वारा नियमित चुनाव सुनिश्चित करना।
- ग्राम सभा के प्रति ग्राम परिषदों की जवाबदेही सुनिश्चित करना।
- ग्राम सभा को विधिक दर्जा प्रदान करना और इसकी शक्तियों और कार्यों का निर्धारण।
- परिषद में महिलाओं को पर्याप्त प्रतिनिधित्व प्रदान करना।
- विकास कार्यक्रमों की योजना निर्माण, कार्यान्वयन और निगरानी में पारदर्शिता लाना।
- यह सुनिश्चित करना कि किसी भी नृजातीय अल्पसंख्यक समूह को परिषद में प्रतिनिधित्व से वंचित तो नहीं रखा गया है।

छठवीं अनुसूची में सम्मिलित किए जाने के लाभ

छठवीं अनुसूची में शामिल किये जाने से इन क्षेत्रों के लोगों को निम्नलिखित प्रावधानों के माध्यम से स्वशासन के मामले में अधिक स्वायत्तता प्राप्त होती है:

- राज्य की कार्यपालिका शक्ति के अंतर्गत स्वायत्त जिलों का निर्माण किया जाना। इनमें उस क्षेत्र में निवास करने वाली विभिन्न जनजातियों के निवास के आधार पर कई स्वायत्त क्षेत्र शामिल होते हैं।
- प्रत्येक स्वायत्त जिले में एक जिला परिषद होती है तथा प्रत्येक स्वायत्त क्षेत्र में एक अलग क्षेत्रीय परिषद होती है। ये दोनों ही अपने क्षेत्राधिकार के तहत आने वाले क्षेत्रों में प्रशासन संबंधी उत्तरदायित्व संभालते हैं।
- भूमि, वन, नहर के जल, स्थानांतरण कृषि ,ग्राम प्रशासन, संपत्ति के उत्तराधिकार, विवाह और तलाक, सामाजिक रीति-रिवाज जैसे कुछ विशिष्ट मामलों पर कानून बनाने के लिए विधायन शक्ति।
- **न्यायिक शक्ति -** परिषदें जनजातियों से संबंधित मुकदमों एवं मामलों के निपटारे के लिए ग्राम परिषदों या न्यायालयों का गठन कर सकती हैं। ऐसे मामलों के संबंध में सम्बंधित उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार राज्यपाल द्वारा अभिनिर्धारित किया जाता है।
- **विनियामक शक्ति** - जिला परिषद जिले में प्राथमिक विद्यालयों, सड़कों, दवाखानों, बाजारों, घाटों, मत्स्य पालन केन्द्रों आदि की स्थापना, निर्माण तथा प्रबंधन कर सकती है। यह गैर-आदिवासियों द्वारा धन उधार देने और व्यापार गतिविधियों के नियंत्रण के लिए नियम भी बना सकती है। हालाँकि ऐसे नियमों के संदर्भ में राज्यपाल द्वारा स्वीकृति प्रदान किया जाना आवश्यक है ।
- **कर राजस्व संग्रहण** - जिला और क्षेत्रीय परिषदों को भू-राजस्व का आकलन करने और एकत्र करने के साथ ही कुछ निर्दिष्ट कर लगाने का भी अधिकार है।
- **स्वायत्त क्षेत्रों के संबंध में संसद या राज्य विधानमंडल की विधायन शक्ति पर सीमाएं** - संसद या राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित अधिनियम स्वायत्त जिलों और स्वायत्त क्षेत्रों पर लागू नहीं होते हैं अथवा निर्दिष्ट संशोधनों और अपवादों के साथ लागू होते हैं।

हालांकि छठवीं अनुसूची में शामिल करने का अर्थ सभी समस्याओं से मुक्ति नहीं है। इसमें शामिल क्षेत्र भी कुछ समस्याओं से ग्रस्त हैं, जैसे-

शक्तियों और प्रशासन का विकेंद्रीकरण नहीं - छठवीं अनुसूची के कई क्षेत्रों में विकेंद्रीकरण संबंधी प्रावधान लागू नहीं हो पाए हैं। उदाहरण के लिए, बोडो प्रादेशिक क्षेत्र के जिलों में, केवल एक ही जिला परिषद है जहाँ कुछ लोगों को ही चुना जाता है तथा उनकी भी शक्तियों पर कोई स्पष्ट निर्बन्धन नहीं है। अतः ऐसी इकाइयों का निर्माण किया जाना चाहिए जिनमें सभी स्तरों से संबंधित लोगों का प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके।

विकास का अभाव - यद्यपि छठवीं अनुसूची लोगों को अधिक लाभ देने के लिए और त्वरित विकास के लिए अधिनियमित की गयी थी किन्तु स्थानीय (जनता के) स्तर पर पंचायत या परिषद का गठन नहीं हो पाया है। इस कारण से उनके पास विभिन्न योजनाओं जैसे-मनरेगा आदि के कार्यान्वयन के लिए गैर-अनुसूचित क्षेत्रों (वे क्षेत्र जो छठवीं अनुसूची में नहीं हैं) के समान शक्ति और धन उपलब्ध नहीं हो पा रहा है।

भ्रष्टाचार और अवैध गतिविधियाँ - स्वायत्त परिषदों के कुछ सदस्य उग्रवादी गुटों को आर्थिक मदद पहुँचाते हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर कछार स्वायत्त परिषद। द्रष्टव्य है कि ऐसे समूहों की NIA और CBI द्वारा निगरानी की जा रही है।

परिषदों पर राज्य की विधायन शक्ति - परिषदों द्वारा बनाए गए कानूनों के लिए राज्यपाल की सहमति आवश्यक है। इस प्रक्रिया में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गयी है, अतः ऐसे विधायनों में कई वर्षों का विलम्ब हो जाता है। इसके अतिरिक्त छठवीं अनुसूची के पैरा 12 (A) में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जिला परिषदों और राज्य विधानमंडल के बीच किसी मुद्दे पर टकराव की स्थिति में राज्य विधानमंडल को प्राथमिकता दी जाएगी ।

VISION IAS

समन्वय के बिना कार्य का अतिव्यापन - व्यापक स्तर पर एक्टिविटी मैपिंग के अभाव के कारण परिषद और राज्य के कार्यों और क्षेत्राधिकारों में अतिव्यापन हो जाता है। उदाहरण के लिए - जल संसाधनों को विषाक्त होने से बचाने और प्रदूषित जल के शोधन व पुनः प्राप्ति के लिए परिषद तथा राज्य के जल संसाधन विभाग के बीच कोई समन्वयकारी व्यवस्था विद्यमान नहीं है।

राज्य वित्त आयोग से सम्बद्धता का अभाव - इनके समकक्ष PRIs की तुलना में इन्हें कम अनुदान प्रदान किया जाता है क्योंकि इन्हें राज्य वित्त आयोगों के तहत कवर नहीं किया गया है। इस प्रकार उन क्षेत्रों के PRIs के वित्तपोषण में अधिक उदारता दिखाई जाती है जो छठवीं अनुसूची से बाहर हैं। अतः इन परिषदों का वित्तपोषण अनुच्छेद 275 (वर्तमान में आय का प्रमुख स्रोत) के अंतर्गत अनुदान के रूप में सहायता के स्थान पर संविधान के अनुच्छेद 280 के तहत प्रत्यक्ष वित्तपोषण द्वारा किया जाना चाहिए।

राज्यपाल की विवेकाधीन शक्तियों के विषय में मतभेद - इन क्षेत्रों के प्रशासन के संबंध में राज्यपालों की विवेकाधीन शक्तियों को लेकर अस्पष्टता व्याप्त है। ऐसे में इन विषयों से सम्बंधित मामलों में मंत्रिपरिषद के साथ राज्यपाल के परामर्श की आवश्यकता को लेकर भी मतभेद है।

1.3. अंतर-राज्यीय जल विवाद

(Inter-State Water Disputes)

सम्पूर्ण भारत में लगभग बीस प्रमुख नदी बेसिन हैं और इनमें से कई बेसिन एक से अधिक राज्यों में विस्तृत हैं। इसके कारण जल के उपयोग और वितरण के संबंध में प्रायः विवाद होते हैं।

अन्तर्राज्यीय जल विवादों हेतु संवैधानिक और विधायी प्रावधान

- अनुच्छेद 262
    - अनुच्छेद 262(1) के अनुसार संसद विधि द्वारा किसी अन्तर्राज्यीय नदी या नदी-घाटी के अथवा उसमें जल के प्रयोग, वितरण अथवा नियंत्रण के संदर्भ में किसी विवाद या परिवाद के न्यायनिर्णयन के लिए उपबंध कर सकेगी।
    - अनुच्छेद 262(2) के अनुसार संसद विधि द्वारा उपबंध कर सकेगी कि उच्चतम न्यायालय या कोई उच्च न्यायालय ऐसे किसी विवाद या परिवाद के संबंध में अधिकारिता का प्रयोग नहीं करेगा।
- अनुच्छेद 262 के अंतर्गत दो अधिनियम पारित किए गए:
    - **नदी बोर्ड अधिनियम, 1956:** इसे इस घोषणा के साथ अधिनियमित किया गया था कि केंद्र को सार्वजनिक हित में अंतर्राज्यीय नदियों और नदी घाटियों के विनियमन और विकास पर नियंत्रण रखना चाहिए। हालांकि, अभी तक एक भी नदी बोर्ड का गठन नहीं किया गया है।
    - **अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956 (IRWD Act)** इस प्रकार के विवादों का निपटान करने के लिए केंद्र को न्यायाधिकरण के गठन की शक्ति प्रदान करता है। यह ऐसे विवादों को उच्चतम न्यायालय के अधिकार क्षेत्र से बाहर रखता है।
- **सातवीं अनुसूची**
    - **राज्य सूची की प्रविष्टि 17:** जल से सम्बंधित विषय अर्थात् जलापूर्ति, सिंचाई और नहरें, अपवाह एवं तटबंध, जल भंडार व जल विद्युत संघ सूची की प्रविष्टि 56 के अधीन हैं।
    - **संघ सूची की प्रविष्टि 56:** अंतर्राज्यीय नदियों और नदी घाटियों का विनियमन और विकास।

भारत के प्रमुख नदी जल विवाद

- **कावेरी जल विवाद:** कावेरी जल न्यायाधिकरण की स्थापना 1990 में की गई थी और इसका अंतिम आदेश 2007 में आया था। वर्तमान विवाद उच्चतम न्यायालय के आदेश के साथ आरम्भ हुआ था जिसमें कर्नाटक सरकार को तमिलनाडु के लिए 10 दिनों तक 15,000 क्यूसेक जल छोड़ने का निर्देश दिया गया था। उच्चतम न्यायालय के निर्देश के बाद 1 जून को केंद्रीय जल संसाधन मंत्रालय ने कावेरी जल प्रबंधन योजना, 2018 को अधिसूचित किया।
- **महानदी जल विवाद:** हाल ही में, जल संसाधन मंत्रालय ने जनवरी 2018 में उच्चतम न्यायालय के निर्देश के अनुसार महानदी जल के साझाकरण पर ओडिशा और छत्तीसगढ़ के मध्य विवाद का समाधान करने के लिए एक न्यायाधिकरण की स्थापना को अधिसूचित किया।
- **अन्य प्रमुख विवाद:** गोवा, कर्नाटक और महाराष्ट्र के बीच महादायी नदी विवाद; महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश के बीच कृष्णा नदी विवाद।

उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय का महत्त्व

- उच्चतम न्यायालय के अनुसार नदी तट पर स्थित विभिन्न राज्यों के मध्य समानता के सिद्धांत का अर्थ यह नहीं है कि उनके मध्य जल का समान वितरण हो; यह केवल जल के न्यायसंगत तथा उचित उपयोग एवं "पेयजल की आवश्यकता" को उच्च प्राथमिकता प्रदान करने पर बल देता है।

VISION IAS

- उच्चतम न्यायालय के निर्णय से दो सिद्धांत निर्धारित हुए हैं, जो अंतर्राज्यीय नदी जल विवादों पर निरंतर एवं विस्तृत प्रभाव डाल सकते हैं:-
    - **भूजल-** राज्य में भूजल की उपलब्धता के कारण, तमिलनाडु को आवंटित जल की मात्रा को घटाकर कुछ कम किया गया था।
    - **वैध लचीलापन-** अनेक वर्षों के दौरान बंगलुरु शहर में हुए विकास के परिणामस्वरूप नागरिक सुविधाओं की मांग में भी वृद्धि हुई है। यह मालप्रभा बेसिन से हुबली-धारवाड़ क्षेत्र में जल की कमी को संबोधित करने के लिए नदी जल के बँटवारे के संबंध में **महादायी जल विवाद ट्रिब्यूनल** में कर्नाटक द्वारा प्रस्तुत तर्क के समान है।
- यह **1966 के हेलसिंकी नियमों** को संदर्भित करता है, जो राज्य के बेसिन के भूगोल और जल विज्ञान, जलवायु, जल का पिछला उपयोग, आर्थिक और सामाजिक आवश्यकताओं, आश्रित आबादी और संसाधनों की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक बेसिन राज्य द्वारा जल के उचित उपयोग को मान्यता प्रदान करते हैं।
- कावेरी विवाद के संदर्भ में यह **कैम्पियन नियमों** को भी संदर्भित करता है। इन नियमों का मानना है कि बेसिन राज्य अपने संबंधित क्षेत्रों में न्यायसंगत और उचित तरीके से अंतरराष्ट्रीय जल निकासी बेसिन के जल का प्रबंधन करेंगे।
- **समतापूर्ण विभाजन (Equitable Apportionment)** के सिद्धांत को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर **हेलसिंकी नियमों, कैंपियन (campione) नियमों तथा बर्लिन नियमों द्वारा** मान्यता प्रदान की गयी है और इसे 1987 से लेकर 2002 तक की राष्ट्रीय जल नीतियों में भी शामिल किया गया है। इसके साथ ही, इसे अंतर्राज्यीय नदी जल विभाजन के मुद्दों से निपटने हेतु मार्गदर्शी कारक के रूप में भी स्वीकार किया गया है।
- कावेरी जैसी अंतर्राज्यीय नदी एक **राष्ट्रीय परिसंपत्ति** है तथा कोई भी राज्य इसके जल पर अपने एकमात्र स्वामित्व का दावा नहीं कर सकता और न ही अन्य राज्यों को उनके न्यायोचित हिस्से से वंचित कर सकता है।

कावेरी जल प्रबंधन योजना, 2018

इस योजना के तहत, केंद्र ने कावेरी जल प्रबंधन प्राधिकरण (CWMA) और कावेरी जल विनियमन समिति (CWRC) की स्थापना की।

CWMA के कार्य

- **नदी जल के भंडारण की निगरानी, नदी जल का बँटवारा करना, जलाशयों के संचालन का अधीक्षण करना** और कावेरी जल विनियमन समिति की सहायता से कावेरी के **जल को छोड़ने को विनियमित और नियंत्रित करना।**
- बिलिगुंडुलू गेज में अन्तर्राज्यीय संपर्क बिंदु पर **कर्नाटक द्वारा जल की निकासी को विनियमित करना।**
- प्रत्येक जल वर्ष के प्रारंभ में (1 जून को) **कुल अवशेष भंडारण का** निर्धारण करना।
- सूक्ष्म सिंचाई (ड्रिप एवं स्प्रिंकलर) को बढ़ावा, फसल प्रतिरूप में परिवर्तन, उन्नत कृषि पद्धति, प्रणाली की कमियों में सुधार और कमांड एरिया विकास को प्रोत्साहन देकर **जल उपयोग दक्षता में सुधार हेतु उपयुक्त उपायों का सुझाव देना।**
- किसी भी पक्षकार राज्य द्वारा अनुपालन न करने पर **उचित कार्रवाई करना।** CWMA **अधिनिर्णय के कार्यान्वयन के लिए केंद्र सरकार की सहायता भी ले सकता है।**

CWMA का महत्व

- पूर्व की अंतरिम व्यवस्थाओं के विपरीत, यह जल संसाधन मंत्रालय के अंतर्गत **एक स्थायी निकाय** है और इसके निर्णय सभी पक्षकार राज्यों पर **अंतिम और बाध्यकारी** होंगे।
- The share of each state will be determined on the basis of the flows so assumed together with **the available carry-over storage in the reservoirs.**
- प्रत्येक राज्य का हिस्सा जल प्रवाह के आधार पर निर्धारित किया जाएगा जिसे कि **जलाशय में अग्रेषित किये जाने योग्य उपलब्ध जल भंडार के रूप में माना जाता है।**

कावेरी जल विनियमन समिति (CWRC)

- CWRC एक तकनीकी शाखा के रूप में कार्य करेगी तथा इसके निम्नलिखित कार्य होंगे:
    - जल स्तर, प्रवाह, भंडार और जल की आवधिक निकासी से संबंधित डेटा एकत्र करना।
    - दक्षिण-पश्चिमी मानसून, उत्तर-पूर्वी मानसून तथा ग्रीष्म काल के लिए जल विवरण की मौसमी/वार्षिक रिपोर्ट तैयार करना और इसे CWMA को सौंपना।

VISION IAS

चिंताएं

- **अंतर-राज्य नदियों संबंधी विषयों में केंद्र की भूमिका पर संघीय सर्वसम्मति को बढ़ावा देना-** राज्यों को केंद्र को आवश्यक कार्यात्मक छूट प्रदान करने के लिए सहमत होना चाहिए। वस्तुतः संविधान की प्रविष्टि 56 के तहत CWMA की शक्तियां और कार्य केंद्र सरकार के पक्ष में हैं।
- इस योजना की सफलता के लिए **राजनीतिक इच्छाशक्ति और नौकरशाही की इच्छाशक्ति** अत्यंत आवश्यक हैं।
- **कर्नाटक द्वारा व्यक्त की गई चिंताएं:**
  (a) इस "योजना" पर संसद में विचार विमर्श किया जाना चाहिए,
  (b) प्राधिकरण उगाई जाने वाली फसलों के विषय में हस्तक्षेप कर सकता है और किसानों को आधुनिक कृषि पद्धतियों को अपनाने में अत्यधिक समय लग सकता है, और
  (c) उत्तर-पूर्वी मानसून के कारण तमिलनाडु के बाढ़ से ग्रसित होने की स्थिति में छोड़ा गया जल व्यर्थ चला जाएगा।

नदी विवादों के बढ़ने के कारण

- **जनसांख्यिकीय कारक-** नदी बेसिन में बढ़ती जनसंख्या के कारण नदी जल की मांग में वृद्धि हुई है।
- कृषि प्रतिरूप में परिवर्तन क्योंकि किसान अब बाजरा और रागी जैसी जल दक्ष फसलों को छोड़कर धान और गन्ने की कृषि कर रहे हैं।
- **जलवायु और भौगोलिक कारक:** 2011 में हुए एक अध्ययन में व्यक्त पूर्वानुमान के अनुसार जलवायु परिवर्तन के कारण 2080 तक कावेरी उप-बेसिन के जल में 50 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है।
- **राजनीतिक कारक-** जल और राजनीति के मध्य बढ़ती घनिष्टता के साथ क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियाँ सुदृढ़ और प्रबल हुईं हैं और इन्होंने विवादों को वोट बैंक राजनीति के मैदानों में परिवर्तित कर दिया है। प्रायः राजनीति के कारण ही संवैधानिक और अभिशासनिक संकट की स्थितियां उत्पन्न होती हैं, चाहे 1991 में न्यायाधिकरण के आदेश को अस्वीकृत करने वाला कर्नाटक सरकार का अध्यादेश हो या वर्ष 2004 में हरियाणा के साथ जल बँटवारे के समझौतों को रद्द करने का पंजाब का एकपक्षीय निर्णय।
- वर्षा की बढ़ती परिवर्तनशीलता और निरंतर सूखों के साथ-साथ **जल संसाधनों का असमान वितरण।**
- **राज्यों के विभाजन के कारण विवाद:** 2014 में तेलंगाना के अस्तित्व में आने के पश्चात् गोदावरी नदी जल और 'पोलावरम परियोजना' विवाद का मुख्य कारण बन गए।
- **नदियों के ऊपरी तटीय राज्य द्वारा संचालित गतिविधियाँ:** उदाहरण के लिए, आंध्र प्रदेश द्वारा वंशधारा नदी पर एक बाढ़ जल के प्रवाह वाली नहर का निर्माण आरम्भ करने और छत्तीसगढ़ द्वारा महानदी पर बैराज को विकसित करने के परिणामस्वरूप ओडिशा के साथ विवाद हुआ। इसी प्रकार कर्नाटक ने मालप्रभा नदी के साथ महादायी नदी को जोड़ने का प्रस्ताव किया जिसके परिणामस्वरूप गोवा के साथ विवाद हुआ।

अंतरराज्यीय जल विवादों से संबंधित मुद्दे

- **जल विवाद के समाधान से संबंधित मुद्दे**
  - **ऐतिहासिक :** कावेरी जल के साझाकरण का विवाद लगभग एक शताब्दी पुराना है। यह सर्वप्रथम मैसूर (वर्तमान कर्नाटक) और मद्रास प्रेसिडेंसी (वर्तमान तमिलनाडु) की रियासत के मध्य उभरा था। तब से दो जल साझाकरण समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए थे परंतु अंतिम समझौता 974 में व्यपगत हो गया था। वर्ष 1990 में केंद्र सरकार ने विवाद के समाधान हेतु कावेरी जल विवाद अधिकरण (CWDT) का गठन किया गया जिसने अपनी अंतिम अनुशंसाएं वर्ष 2007 में दीं।
  - संविधान **अनुच्छेद 262** के तहत अन्तर्राज्यीय नदी विवादों पर उच्चतम न्यायालय या अन्य किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को रोकता है। हालांकि, उच्चतम न्यायालय **विशेष अनुमति याचिका** (स्पेशल लीव पेटीशन) (अनुच्छेद 136 के अंतर्गत) शक्ति का उपयोग कर याचिकाओं को स्वीकार करती है जिसके परिणामस्वरुप कानूनी विवाद लंबित बना रहता है।
  - गठबंधन की राजनीति और मजबूत क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियों के समय में विवाद के समाधान के लिए केंद्र सरकार द्वारा मध्यस्थता करना कठिन हो जाता है।
  - राज्यों द्वारा **न्यायाधिकरण के अधिनिर्णयों का गैर-अनुपालन** विवाद के समाधान में कमजोर कड़ी है जो स्थायी न्यायाधिकरण के बने रहने पर भी जारी रह सकता है।

वर्तमान अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद अधिनियम, 1956 से संबंधित मुद्दे

  - प्रत्येक अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद के लिए एक **पृथक न्यायाधिकरण** स्थापित किया जाएगा।
  - ऐसे विवादों के **निपटारे को सुनिश्चित करने में अत्यधिक विलंब**। कावेरी और रावी जैसे न्यायाधिकरण क्रमशः 26 और 30 वर्ष तक बिना किसी अधिनिर्णय के अस्तित्व में रहे। अधिनिर्णयन के लिए कोई समय सीमा तय नहीं है। वस्तुतः, न्यायाधिकरण के गठन के चरण में भी विलंब होता है।
  - न्यायाधिकरण के अधिनिर्णय को क्रियान्वित करने हेतु **पर्याप्त मशीनरी के लिए कोई प्रावधान नहीं** हैं।

VISION IAS

- अंतिम निर्णय का मुद्दा: न्यायाधिकरण द्वारा दिए गए अधिनिर्णय के किसी पक्ष के विरुद्ध होने की स्थिति में वह पक्ष शीघ्र ही उच्चतम न्यायालय में निवारण की मांग करता है। आठ में से केवल तीन न्यायाधिकरणों द्वारा दिए गए अधिनिर्णय राज्यों द्वारा स्वीकार किये गए हैं।
- जल पर नियंत्रण एक अधिकार माना जाता है जिसे उत्साहपूर्वक संरक्षित किया जाना चाहिए। समझौते को एक दुर्बलता माना जाता है जो राजनीतिक रूप से घातक सिद्ध हो सकता है।
- अधिनियम उन सिद्धांतों का कोई संकेत नहीं देता है जिन्हें न्यायाधिकरण द्वारा जल विवादों का अधिनिर्णय करते समय लागू किया जाना चाहिए।
- न्यायाधिकरण के अध्यक्ष या सदस्यों के लिए कोई आयु सीमा निर्धारित नहीं है।

अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद (संशोधन) अधिनियम, 2017 से संबंधित मुद्दे

- आवश्यकता पड़ने पर स्थायी न्यायाधिकरण की पीठों का गठन किया जाना प्रस्तावित है। इस प्रकार यह स्पष्ट नहीं है कि ये अस्थायी पीठें वर्तमान प्रणाली से किस प्रकार पृथक होंगी।
- उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि वह ISWDA के तहत स्थापित जल न्यायाधिकरण के विरुद्ध अपील सुन सकता है, इस प्रकार न्यायिक कार्यवाही में और भी विलंब हो सकता है।
- न्यायाधिकरण के निर्णय को लागू करने के लिए संस्थागत तंत्र अभी भी अस्पष्ट है।

सरकार द्वारा उठाए गए कदम

अंतर्राज्यीय नदी जल विवाद (संशोधन) अधिनियम, 2017 लोकसभा में प्रस्तुत किया गया था। यह अंतर्राज्यीय नदी जल विवादों के न्याय निर्णय की प्रक्रिया को सुव्यवस्थित करने और वर्तमान कानूनी एवं संस्थागत प्रणाली को सुदृढ़ बनाने का प्रस्ताव रखता है। इसके मुख्य प्रावधानों में सम्मिलित हैं:

- केन्द्र सरकार द्वारा **विवाद समाधान समिति** (Dispute Redressal Committee; DRC) के गठन का प्रावधान है जिसका कार्य ट्रिब्यूनल में किसी भी मामले को भेजने से पूर्व सद्भावनापूर्ण ढंग से समाधान का प्रयास करना होगा। इसके लिए निर्धारित अवधि 1 वर्ष होगी जिसे 6 माह तक के लिए आगे बढ़ाया जा सकता है।
- **एकल ट्रिब्यूनलः** अधिनियम वर्तमान में स्थापित विभिन्न ट्रिब्यूनलों के स्थान पर एक सिंगल स्टैंडिग ट्रिब्यूनल (जिसकी अनेक बेंच हों) का प्रस्ताव करता है।
- **ट्रिब्यूनल की संरचना-** इसमें एक अध्यक्ष एक उपाध्यक्ष एवं अधिकतम 6 सदस्य होंगे। अध्यक्ष का कार्यकाल 5 वर्ष या 70 वर्ष की आयु (दोनों में जो भी पहले समाप्त हो) होगा। ट्रिब्यूनल के उपाध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों का कार्यकाल, जलविवाद की समाप्ति के साथ ही खत्म हो जाएगा।
- **समय-सीमाः** ट्रिब्यूनल को किसी विवाद का समाधान साढे चार वर्षों में करना होगा।
- **अंतिम निर्णय:** ट्रिब्यूनल का निर्णय अंतिम एवं बाध्यकारी होगा।
- **डेटा संग्रहः** केंद्र सरकार के द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर डेटा संग्रह एवं डेटा बैंक के रख-रखाव हेतु एक एजेंसी को नियुक्त एवं प्राधिकृत करने का प्रावधान है।
- **तकनीकी सहायताः** यह न्यायाधिकरण को तकनीकी सहायता प्रदान करने के लिए आकलनकर्ताओं की नियुक्ति हेतु प्रावधान करता है। उन्हें केन्द्रीय जल अभियांत्रिकी सेवा में सेवारत विशेषज्ञों (जो मुख्य इंजीनियर या उससे ऊपर के पद पर हों) में से नियुक्त किया जायेगा।

सुझाव एवं आगे की राह

- **अंतरराज्यीय परिषद (ISC)-** यह विचार-विमर्श के द्वारा विवादों के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।
- कार्यान्वियन के लिये संघ सूची की प्रविष्टि 56 में वर्णित रिवर बोर्ड एक्ट, 1956 एक शक्तिशाली कानून है जिसमें संशोधन करने की आवश्यकता है। इस एक्ट के अंतर्गत अंतरराज्यीय नदियों एवं इनके बेसिनों के विनियमन एवं विकास हेतु 'रिवर बेसिन आर्गेनाईजेशन' (RBOs) को स्थापित किया जा सकता है।
- **मध्यस्थता हेतु कदम बढ़ानाः** मध्यस्थता एक लचीली एवं अनौपचारिक प्रक्रिया है तथा इसमें मध्यस्थों का बहुविषयक दृष्टिकोण देखने को मिलता है। दक्षिण एशिया के संदर्भ में, सिंधु बेसिन की नदियों से जुड़े विवाद का सफलतापूर्वक समाधान करने में विश्व बैंक ने भारत एवं पाकिस्तान के मध्य अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- **आपूर्ति पक्ष प्रबंधनः** बहुत से विशेषज्ञों का मानना है कि जल आपूर्ति को बढ़ाकर इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। इस प्रकार, दीर्घकालिक उपायों जैसे- जल संरक्षण एवं जल उपयोग को तर्कसंगत बनाना इत्यादि के द्वारा जल संसाधनों का अधिकतम उपयोग संभव है।
- **नदियों को राष्ट्रीय संपति घोषित करनाः** इसके माध्यम से राज्यों की उस प्रवृत्ति पर अंकुश लगाना संभव हो सकेगा जिसके अंतर्गत वे नदी जल को अपना अधिकार मानते हैं।
- **जल को समवर्ती सूची में सम्मिलित करनाः** यह सिफारिश **मिहिर शाह रिपोर्ट** पर आधारित है जिसमें जल प्रबंधन हेतु केंद्रीय जल प्राधिकरण की अनुशंसा की गयी है। यह जल संसाधन पर संसदीय स्थायी समिति के द्वारा भी समर्थित है।

VISION IAS

- **अंतरराज्यीय जल से संबंधित मुद्दों के लिए संस्थागत मॉडल-** देश में अंतरराज्यीय नदी जल अधिनिर्णयों को लागू करने हेतु संस्थागत मॉडल का अभाव विद्यमान है। इस कारण जलाभाव के वर्षों में जल-बँटवारे की चुनौतियां वर्तमान में भी बनी हुई हैं। अतः एक स्थायी तंत्र की आवश्यकता है जिसके द्वारा न्यायपालिका की सहायता के बिना राज्यों के मध्य उत्पन्न जल विवाद को हल किया जा सके।
- संस्थागत तंत्र के अलावा, राज्यों में जल विवाद के मानवीय पहलू के प्रति उत्तरदायित्व की भावना भी जागृत करना आवश्यक है।
- **चार 'R' को अपनाना-** जल प्रबंधन के लिए 4Rs (रिड्यूस, रियूज, रिसाइकिल, रिकवर) की अवधारणा का प्रयोग करने की आवश्यकता है जो SDGs के लक्ष्य 6 (जल और स्वच्छता तक पहुंच सुनिश्चित करना) को हासिल करने के अनुरूप हो।
- **राष्ट्रीय जल नीति का पालन करना-** इसके अतिरिक्त, राष्ट्रीय जल नीति के तहत जल के उचित उपयोग और जल स्रोतों के संरक्षण हेतु किये गए प्रावधानों का पालन किया जाना चाहिए। बेंगलुरू जैसे शहरों के शहरी जल प्रबंधन में आर्द्रभूमियों का संरक्षण करना शामिल होना चाहिए, जो उचित मलजल उपचार के साथ भूजल की भरपाई करती हैं।
- **अन्य उपाय-** जल विवादों का राजनीतिकरण नहीं किया जाना चाहिए और इन्हें क्षेत्रीय गौरव से संबंधित भावनात्मक मुद्दों से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, फसल पद्धतियों के वैज्ञानिक प्रबंधन की आवश्यकता है जिससे जल दक्ष फसलों और किस्मों को बढ़ावा देने वाले नीतिगत उपायों को आगे बढ़ाया जा सके।
- **नदियों को जोड़ना-** यह बेसिन क्षेत्रों में नदी जल के पर्याप्त वितरण में सहायक हो सकता है।

1.4. दिल्ली के लिए पूर्ण राज्य का दर्जा

(Statehood for Delhi)

सुर्ख़ियों में क्यों?

सत्तारूढ़ आम आदमी पार्टी (AAP) ने जन अभियान के माध्यम से दिल्ली के लिए पूर्ण राज्य के दर्जे की अपनी मांग को पुनः उठाने का निर्णय लिया है।

पृष्ठभूमि

- 1992 तक, एक संक्षिप्त अंतराल को छोड़कर, दिल्ली भारत सरकार के पूर्ण नियंत्रण में एक संघ राज्यक्षेत्र था।
- 1990 के दशक में दिल्ली को एक 'राज्य' की भांति 'मुख्यमंत्री' और एक लोकप्रिय निर्वाचित एकसदनीय विधायिका प्राप्त हुई। हालांकि यह 'राज्य' अपनी शक्तियों में अपूर्ण बना हुआ है।
- यह तात्विक रूप में एक संघ राज्यक्षेत्र और संरचनात्मक रूप में राज्य के रूप में बना रहा। उप राज्यपाल को इसके मुख्य कार्यकारी के रूप नियुक्त किया गया।
- इस प्रकार प्रशासन में मुख्यमंत्री और उनके मंत्रिमंडल ने बाद में स्थान ग्रहण किया जबकि उप राज्यपाल और नगर निगम पहले से विद्यमान थे। इससे दोनों के मध्य टकराव हुआ।
- वर्तमान में यहाँ केंद्र, राज्य के विभिन्न विभाग, अनेक अर्द्ध-सरकारी/स्वायत्त निकाय आदि और पांच ULBs (शहरी स्थानीय निकाय) शहर के शासन में हिस्सेदार हैं।
- अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि देश में किसी अन्य शहर या राज्य की तुलना में दिल्ली में अधिक सरकार और कम अभिशासन है।

पूर्ण राज्य का दर्जा क्यों दिया जाना चाहिए?

- 1991 में जब संविधान के 69वें संशोधन के द्वारा दिल्ली की विधानसभा का गठन किया गया था तब शहर की जनसंख्या काफी कम थी। वर्तमान में दिल्ली में लगभग 2 करोड़ लोग निवास करते हैं।
- किसी भी लोकतंत्र में 2 करोड़ लोगों का प्रतिनिधित्व एक सीमित शक्तियों वाली सरकार के द्वारा नहीं किया जाता है।
- जब संघ राज्यक्षेत्रों का पहली बार गठन हुआ था तो इसका उद्देश्य भारतीय राज्यक्षेत्र में शामिल नये क्षेत्रों को शुरुआत में एक नम्य एवं संक्रमणकालीन व्यवस्था प्रदान करना था। समय के साथ, गोवा, मणिपुर, हिमाचल प्रदेश और त्रिपुरा को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान कर दिया गया है।
- वर्तमान में दिल्ली को पूर्ण राज्य बनाने के द्वितीय और अंतिम चरण में प्रवेश की आवश्यकता है।
- **संयुक्त राष्ट्र** की एक रिपोर्ट में अनुमान लगाया गया है कि दिल्ली का नगरीय संकुल 2028 तक इसे विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या वाला नगर बना देगा।
- इस प्रकार एक विशाल जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करने वाली निर्वाचित सरकार को कानून एवं व्यवस्था तथा भूमि प्रबंधन संबंधी मामलों में भी अधिकार प्रदान किए जाने चाहिए।

पूर्ण राज्य का दर्जा क्यों नहीं दिया जाना चाहिए?

- पूर्ण राज्य के दर्जे का समर्थन राष्ट्रीय आवश्यकता नहीं, बल्कि दिल्ली की स्थानीय राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं द्वारा प्रेरित एक मांग है।
- दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी है। इसे आवश्यक रूप से सम्पूर्ण देश के हितों के सन्दर्भ में देखा जाना चाहिए।
- दिल्ली में महत्वपूर्ण प्रतिष्ठान जैसे राष्ट्रपति भवन, संसद और विदेशी दूतावास आदि स्थित हैं। इन सभी अवसंरचनाओं को विशेष सुरक्षा कवर तथा रिसर्च एंड एनालिसिस विंग (RAW) और इंटेलिजेंस ब्यूरो (IB) जैसी केंद्र प्रशासित एजेंसियों के साथ घनिष्ठ समन्वय की आवश्यकता होती है।
- ये प्रतिष्ठान पूर्ण रूप से केंद्र सरकार की ज़िम्मेदारी हैं, न कि किसी विशिष्ट राज्य की।
- कुछ क्षेत्र भारत सरकार के स्वयं के नियंत्रण में होने चाहिए। उसका किसी राज्य सरकार के किरायेदार की तरह रहना संभवतः व्यावहारिक नहीं होगा।
- विभिन्न क्षेत्रीय दलों ने दिल्ली को पूर्ण राज्य का दर्जा देने पर असहमति व्यक्त की है। उनके अनुसार भारत की राष्ट्रीय राजधानी देश के प्रत्येक नागरिक से संबंधित है, न कि केवल उनसे जो शहर में निवास करते हैं।
- पूर्ण राज्य का दर्जा दिल्ली को राष्ट्रीय राजधानी के रूप में प्राप्त होने वाले कई लाभों से वंचित कर देगा।
  - उदाहरण के लिए, पूरी पुलिस व्यवस्था के भार का निर्वहन (जिसमें एक विशाल स्टाफ का समन्वय भी शामिल है) केंद्र सरकार द्वारा किया जाता है।

दिल्ली-केंद्र सरकार के शक्ति संघर्ष पर उच्चतम न्यायालय का हालिया निर्णय

- NCT दिल्ली बनाम भारतीय संघ वाद में उच्चतम न्यायालय के निर्णय ने अगस्त 2016 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय को पलट दिया। दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय में कहा गया था कि चूँकि दिल्ली एक केंद्र शासित प्रदेश है, इसलिए सभी शक्तियाँ निर्वाचित दिल्ली सरकार के बजाय केंद्र सरकार में निहित हैं।
- केंद्र सरकार और दिल्ली सरकार के मध्य शक्तियों के निर्धारण पर विवाद का समाधान करने हेतु उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण सिद्धांत निर्धारित किए:
  - दिल्ली सरकार के पास भूमि, पुलिस और लोक व्यवस्था को छोड़कर सभी क्षेत्रों में निर्णय लेने शक्ति है और उपर्युक्त तीन क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में **उप राज्यपाल सरकार की सहायता और परामर्श को मानने हेतु बाध्य हैं।**
  - इस नियम का एकमात्र अपवाद **अनुच्छेद 239-AA** का परन्तुक था, जो किसी मुद्दे पर मंत्रिपरिषद से मतभिन्नता की स्थिति में **उप राज्यपाल को उस मुद्दे को राष्ट्रपति को विनिर्दिष्ट करने की अनुमति प्रदान करता था**। ऐसे मामलों में उप राज्यपाल राष्ट्रपति के निर्णय को मानने हेतु बाध्य होता है।
  - दिल्ली का उप राज्यपाल स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर सकता है और उसे मंत्रिपरिषद की सहायता और परामर्श के अनुसार कार्य करना चाहिए। चूंकि राष्ट्रीय राजधानी को विशेष दर्जा प्राप्त है और यह पूर्ण राज्य नहीं है; इसलिए उप राज्यपाल की भूमिका एक राज्यपाल से भिन्न है।
  - न तो निर्वाचित राज्य सरकार को सर्वोच्चता का अनुभव करना चाहिए और न ही उप राज्यपाल को। उन्हें समझना चाहिए कि वे संवैधानिक दायित्वों का निर्वहन कर रहे हैं और हमारे संविधान में पूर्णता या अराजकता के लिए कोई स्थान नहीं है।

आगे की राह

- राष्ट्रीय राजधानी में क्षेत्राधिकार का अतिव्यापन अंतर्निहित है और संवैधानिक संस्थाओं द्वारा इस वास्तविकता को स्वीकार किया जाना चाहिए।
- विभिन्न घटकों के मध्य निष्पक्ष शक्ति-साझाकरण की व्यवस्था को यथोचित सुदृढ़ता और अधिक स्वायत्तता प्रदान करनी चाहिए।
  - एक शुरुआत के लिए दिल्ली को मौजूदा संवैधानिक उपबंधों (अर्थात् संविधान के 69 वें संशोधन, अनुच्छेद 239) और कार्यसंचालन के नियमों में तत्काल संशोधन की मांग करनी चाहिए।
- अतिव्यापन और प्रायः विवादास्पद क्षेत्राधिकारों को देखते हुए, विश्व भर के अनेक राष्ट्रीय राजधानियों द्वारा अपनाए गए किसी **विश्वसनीय और संस्थागत विवाद-समाधान तंत्र** को अपनाया जाना अत्यावश्यक है।
  - विवादों को राष्ट्रपति को विनिर्दिष्ट करने की मौजूदा प्रणाली एक विफल मॉडल है। इसमें विश्वसनीयता की कमी है और यह सदैव राष्ट्रीय सरकार के पक्ष में समाधान करती है।

VISION IAS

- स्थानीय नगर निकायों का संचालन एक सशक्त शहरी सरकार के नियंत्रण में होना चाहिए।
  - एक अधिकार प्राप्त महापौर (मेयर) की व्यवस्था की जानी चाहिए जो नगरीय निकाय के सभी कार्यों का निष्पादन करे और इन कार्यों का विस्तार उन सभी विषयों तक हो जिन्हें भारत सरकार द्वारा संचालित नहीं किया जाता है।
- प्रशासन में पैरास्टैटल्स (अर्द्ध-सरकारी/स्वायत्त निकाय आदि) के कार्यों को (जिन्हें संविधान द्वारा मान्यता प्रदान नहीं की गयी है) ULBs को हस्तांतरित करने की आवश्यकता है। ULBs को हस्तांतरित ऐसा कोई भी विषय/कार्य जिसका परिचालन कठिन है, उप राज्यपाल के संरक्षण के अधीन किया जा सकता है।
- अभिशासन की व्यवस्था इस प्रकार पुनर्गठित की जानी चाहिए कि किन्हीं विशिष्ट कार्यों के संबंध में जवाबदेहिता पूर्ण रूप से किसी एक संगठन/व्यक्ति की ही हो।

1.5 राजकोषीय संघवाद

(Fiscal Federalism)

सुर्खियों में क्यों ?

हाल ही में, केंद्रीय मंत्रिमंडल ने एन.के. सिंह की अध्यक्षता में 15वें वित्त आयोग (FC) की स्थापना को स्वीकृति प्रदान की है।

केंद्र-राज्य राजकोषीय संबंधों से संबंधित संवैधानिक प्रावधान:

- **अनुच्छेद 246:** कराधान शक्तियों का विभाजन (अब GST के तहत संशोधित)।
- **अनुच्छेद 268:** (संघ द्वारा उदगृहीत, किन्तु राज्यों द्वारा संगृहीत और विनियोजित किए जाने वाले शुल्क)
- **अनुच्छेद 269:** (वस्तुओं के विक्रय पर कर और वस्तुओं के परेषण पर कर)।
- **अनुच्छेद 271:** अधिभार से संबंधित।
- **अनुच्छेद 275 (1) और अनुच्छेद 282:** राज्यों को अनुदान।
- **अनुच्छेद 280:** वित्त आयोग के गठन का अधिदेश।
- **अनुच्छेद 292 और 293:** क्रमशः संघ और राज्यों द्वारा उधार लेने की शक्तियों की परिभाषा।

राजकोषीय संघवाद का महत्व

- राजकोषीय संघवाद सरकार के विभिन्न स्तरों, अर्थात् केंद्र, राज्यों और स्थानीय निकायों के मध्य कराधान और सार्वजनिक व्यय के संबंध में उत्तरदायित्वों का विभाजन करता है। वित्तीय स्वतंत्रता और पर्याप्तता सरकार के संघीय स्वरूप के सफल संचालन का आधार होती है।
- यह सरकारी संगठनों को सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करने में बड़े पैमाने की लागत दक्षता प्राप्त करने में सहायता करता है। सार्वजनिक सेवाओं की पूर्ति जन सामान्य की प्राथमिकताओं से सर्वाधिक निकटता से सम्बंधित होती है।
- यह एक एकीकृत साझा बाजार का सृजन करता है। जो वृहद आर्थिक गतिविधि को बढ़ावा देता है।
- वित्त आयोग के गठन का उल्लेख संविधान (अनुच्छेद 280) में केंद्र और राज्यों के साथ-साथ राज्यों के मध्य राजकोषीय असंतुलन से निपटने के लिए उत्तरदायी एक प्रमुख संस्था के रूप में किया गया है।

भारत में वित्त आयोग और संघवाद

- संविधान में वित्त आयोग का उल्लेख भारत में **राजकोषीय संघवाद** के संतुलक के रूप में किया गया है।
- भारतीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था में उप-राष्ट्रीय सरकारों के बढ़ते महत्व के कारण राज्यों को अधिक संसाधन प्रदान करके प्रत्येक अनुवर्ती वित्त आयोग को राजनीतिक संतुलन का कार्य करना पड़ता है।
- यह सुनिश्चित करने की भी आवश्यकता है कि रक्षा जैसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सार्वजनिक विषयों की जिम्मेदारी रखने वाला केंद्र भी वित्तीय रूप से विवशता का अनुभव न करे ।
- उत्तरोत्तर वित्त आयोगों ने कर राजस्व में राज्यों के अनुपात में वृद्धि की है। यह प्रत्यक्ष करों के बढ़ते महत्व के साथ-साथ स्थानीय सार्वजनिक कल्याण के कार्यों में राज्य सरकारों के व्यय में वृद्धि को देखते हुए एक आवश्यक परिवर्तन है।
- के.सी. नियोगी के नेतृत्व में गठित प्रथम वित्त आयोग ने अनुशंसा की थी कि राज्यों को केंद्र द्वारा संगृहीत कुल करों का दसवां हिस्सा प्रदान किया जाएगा। वह हिस्सा निरंतर बढ़ रहा है। वाई वी रेड्डी की अध्यक्षता में गठित 14 वें वित्त आयोग ने अनुशंसा की है कि राज्यों का हिस्सा 42% होना चाहिए।
- संघवाद का विकास केवल तभी संभव है जब इसे एक सशक्त केंद्रीय एजेंसी का साथ मिले, जो राजनीतिक अर्थव्यवस्था के एक नए संतुलन के लिए नियमों को विश्वसनीय रूप से लागू करती हो।

VISION IAS

वित्त आयोग के बारे में

- संविधान का **अनुच्छेद 280 एक अर्द्ध न्यायिक निकाय** के रूप में वित्त आयोग का प्रावधान करता है।
- इसमें एक अध्यक्ष और चार अन्य सदस्य शामिल होते हैं, जिनकी नियुक्ति **राष्ट्रपति** द्वारा प्रत्येक 5 वर्ष में या यदि वह आवश्यक समझे तो इससे पूर्व की जाती है।
- वित्त आयोग निम्नलिखित विषयों पर राष्ट्रपति को अनुशंसा करता है-
  - संघ एवं राज्यों के मध्य **करों के शुद्ध आगमों का वितरण** और राज्यों के बीच ऐसे आगमों से संबंधित अंशों का आवंटन।
  - केंद्र द्वारा राज्यों के राजस्व में सहायता अनुदान (भारत की संचित निधि में से) को शासित करने वाले सिद्धांत।
  - राज्य वित्त आयोग द्वारा की गई अनुशंसाओं के आधार पर स्थानीय शासन के संसाधनों की अनुपूर्ति के लिए **राज्य की संचित निधि के संवर्धन हेतु उपाय**।
  - राष्ट्रपति द्वारा इसे निर्दिष्ट कोई अन्य विषय।
- वित्त आयोग की अनुशंसाएं केवल सलाहकारी प्रकृति की होती हैं।
- **संविधान** वित्त आयोग को केंद्र और राज्यों के बीच **करों के ऊर्ध्वाधर विभाजन** और राज्यों के बीच करों के **क्षैतिज विभाजन** के मूल कार्यक्षेत्र से परे जाने की **शक्ति भी** प्रदान करता है।
- संविधान वित्त आयोग को सुदृढ़ **वित्तीय स्थिति के हित में व्यापक अनुशंसा करने की शक्ति** भी प्रदान करता है।

भारत में राजकोषीय संघवाद से संबंधित मुद्दे

भारत में राज्यों में उनके वित्तीय उत्तरदायित्वों की पूर्ति हेतु पर्याप्त वित्तीय शक्तियां निहित नहीं हैं (अधिकतम व्यय उत्तरदायित्व के साथ सीमित कर आधार), जो निम्नलिखित का कारण बनती हैं :

- **ऊर्ध्वाधर राजकोषीय असंतुलन:** केंद्र और राज्यों के व्यय और राजस्व के विभिन्न घटकों में निरंतर असमानता बनी हुई है। राजस्व व्यय या मूलभूत आवश्यकता के 55.6% (औसत) भाग की तुलना में राज्य की राजस्व क्षमता की भागीदारी 37.5% (औसत) अनुमानित की गयी है।
- **क्षैतिज राजकोषीय असंतुलन:** समय के साथ राज्यों की राजकोषीय स्थिति में गिरावट आई है और अपनी राजस्व आवश्यकताओं को पूरा करने के संदर्भ में भी राज्यों के मध्य अत्यधिक असमानता विद्यमान है। यह अंतर 37.6% (बिहार) और 82.6% (हरियाणा) जितने विशाल दायरे के बीच हो सकता है।
- **उदारीकरण के पश्चात् असंतुलन:** अवसंरचना के विकास के लिए राज्यों के मध्य असमान क्षमता के कारण बाजार आधारित सुधार अधिक असमानता उत्पन्न करते हैं। सुधार के बाद की अवधि में निर्धन राज्यों के समक्ष प्रमुख चुनौती विदेशी पूंजीगत निवेश को आकर्षित करने के लिए प्रतिस्पर्धी अवसंरचना निवेश का अनुसरण करना हो गयी है।
- **राज्यों का वित्तीय ह्रास:** राज्यों का प्रति व्यक्ति राजस्व घाटा, राजकोषीय घाटा और प्राथमिक घाटा क्रमश: 27.05%, 11.53% और 61.85% की दर पर बढ़ रहा है, जो राज्यों के वित्तीय ह्रास का संकेत है। यह निम्नलिखित के माध्यम से प्रतिबिंबित होता है:
  - राज्यों पर ऋण का बोझ बढ़ना
  - सामाजिक और आर्थिक सेवा में विस्तार के लिए अवसरों का अभाव
  - पूंजी निवेश के लिए अवसर की कमी
  - राजस्व हस्तांतरण की प्रक्रिया अप्रभावी होना
- राज्यों की राजकोषीय स्वायत्तता की रक्षा के लिए संविधान में अभिकल्पित संस्थानों ने ऊर्ध्वाधर असंतुलन को सुधारने में सहायता नहीं की है।
- भारतीय संविधान में पहले से शामिल एकात्मक तत्वों ने केंद्र में राजकोषीय शक्तियों के संकेन्द्रण और केंद्र द्वारा उनके हस्तांतरण पर राज्यों की निर्भरता के कारण समय के साथ अधिक सुदृढ़ता प्राप्त की है।
- वित्त आयोग के विचारार्थ विषय केंद्र सरकार द्वारा एकपक्षीय रूप से निर्धारित किया जाता है, जिसके परिणामस्वरूप राज्य सरकारों द्वारा विभिन्न मुद्दे उठाए जाते रहे हैं।

15वें वित्त आयोग के विचारार्थ विषयों (terms of reference:ToR) से संबंधित मुद्दे

- केन्द्रीय कर राजस्व के आवंटन हेतु **जनसंख्या की गणना के लिए** 1971 की जनगणना के स्थान पर **2011 की जनगणना आंकड़ों का उपयोग करना**। यह उन राज्यों को दंडित करने के समान प्रतीत होता है जिन्होंने परिवार नियोजन और जनसंख्या नियंत्रण पर ध्यान केंद्रित किया है।

VISION IAS

- **बढ़े हुए कर हस्तांतरण पर पुनः विचार:** ToR के अनुसार "14वें वित्त आयोग की सिफारिशों के अनुसार राज्यों को उल्लेखनीय रूप बढ़े हुए कर हस्तांतरण का केंद्र सरकार की वित्तीय स्थिति पर प्रभाव" राजस्व साझा करने के सन्दर्भ में केंद्र सरकार की असहजता को प्रदर्शित करता है।
- **लोकप्रिय उपायों पर व्यय में कमी या नियंत्रण:** यह ToR सहकारी संघवाद की भावना के विरुद्ध जाता हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि यह राज्यों द्वारा व्यय हेतु चुने गए विकल्पों पर प्रश्नचिह्न लगाता है।
- **ईज ऑफ डूइंग बिजनेस के प्रोत्साहन हेतु विकल्पों की खोज:** इस सूचकांक में कई समस्याएं हैं विशेषकर, यह हमेशा अधिक विनियमों के बजाय कम विनियमों को बेहतर स्कोर प्रदान करता है। यह अच्छे या बुरे सभी विनियमों को समाप्त करने के लिए राज्यों के बीच स्पर्धा को बढ़ावा दे सकता है, जो कि भारत के समग्र हित में नहीं है।
- **राजस्व घाटा अनुदान का प्रावधान:** इसे विभिन्न राज्यों के सभी नागरिकों को तुलनीय सार्वजनिक सेवाएं और कराधान व्यवस्था प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया था। ToR आयोग को यह परीक्षण करने की अनुमति देता है कि सभी को राजस्व घाटा अनुदान प्रदान किया जाए या नहीं।
- **राज्यों द्वारा उधार को कम करना:** ToR राज्यों के उधार को सकल राज्य घरेलू उत्पाद (GSDP) के मौजूदा 3% से कम करके 1.7% करना चाहता है। यह राज्यों के पूंजीगत व्यय को अत्यंत कम कर देगा।

आगे की राह

- केंद्र को वास्तविक संघीय स्वरूप में अपने समन्वयकारी, सुधारात्मक और नेतृत्व संबंधी कार्यों का निर्वहन करना होगा।
- राज्यों को उत्तरदायित्व के साथ-साथ अधिकारों में भी उचित हिस्सा मिलना चाहिए।
- सम्प्रेषण और समाशोधन की एक सतत प्रणाली उपलब्ध होनी चाहिए।
- 14वें वित्त आयोग ने सुझाव दिया था कि केंद्र से राज्यों को वित्त आयोग की सिफारिशों के बाहर का कोई भी हस्तांतरण, एक नई संस्थागत व्यवस्था (आदर्श रूप से अंतर्राज्यीय परिषद के तत्वावधान में) के माध्यम से होना चाहिए। इस व्यवस्था में केंद्र, राज्य और क्षेत्र विशेषज्ञों को सम्मिलित होना चाहिए।
- FRBM मानदंडों के प्रवर्तन को और अधिक कठोर बनाया जाना चाहिए।
- ToR को संघ द्वारा टॉप-डाउन प्रक्रिया के बजाय एक संयुक्त प्रक्रिया बनाया जा सकता है।

1.6. छोटे राज्यों की मांग

(Demand for Smaller States)

छोटे राज्यों की मांग भारत में एक जटिल मुद्दा है। प्रथम राज्य पुनर्गठन आयोग ने राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956 के तहत भाषायी सीमांकन के अनुरूप राज्यों का सर्वाधिक व्यापक स्तर पर पुनर्गठन किया। समान भाषा/समुदाय के आधार पर राज्यों को विभाजित करने का यह विचार समय की मांग थी। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 3 प्रभावित राज्यों के विधानमंडल से परामर्श के पश्चात राष्ट्रपति की सिफारिश पर संसद में प्रस्तुत विधेयक के माध्यम से एक नए राज्य के गठन की शक्ति प्रदान करता है।

भारत बड़े राज्यों से छोटे राज्यों के निर्माण और संघ शासित प्रदेशों को पूर्ण राज्य का दर्जा प्रदान करने की अन्य कई स्वतंत्र प्रक्रियाओं से गुजरा है जिससे राज्यों की संख्या 1956 में 14 से बढ़कर वर्तमान में 29 तक पहुंच गई है। इसके अतिरिक्त अन्य विभिन्न क्षेत्रों जैसे कि पश्चिम बंगाल में गोरखालैंड, असम में बोडोलैंड, गुजरात में सौराष्ट्र, महाराष्ट्र में विदर्भ, राजस्थान में मरु प्रदेश और नागालैंड में नागालीम पृथक राज्यों की मांग जारी है।

मांग के कारण:

- **ऐतिहासिक:** उदाहरण के लिए, तमिलनाडु के विभाजन की मांग इस तथ्य पर आधारित थी कि अतीत में तमिल भाषी क्षेत्र में कांचीपुरम और तंजौर/मदुरै के समीपवर्ती राज्य सम्मिलित थे।
- **प्रशासनिक:** नई मांगों में से अधिकांश राज्यों के भीतर असमान विकास का परिणाम हैं। एक धारणा यह है कि 'बड़े राज्यों का छोटे खण्डों में विभाजन करके, राज्य के शक्ति केंद्रों को जन सामान्य के समीप लाकर प्रशासन में सुधार किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, महाराष्ट्र के वृहद आकार के कारण विदर्भ क्षेत्र का विकासात्मक पिछड़ापन। उत्तराखंड के अलग होने के बावजूद भी उत्तर प्रदेश जनसंख्या के मामले में ब्राजील, जापान या बांग्लादेश से बड़ा है।

VISION IAS

- **आर्थिक:** प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध होने के बावजूद उनके लाभों से वंचित होने की भावना अलग राज्य की मांग का एक प्रमुख आधार है।
- **सामाजिक-सांस्कृतिक**: भाषायी विभाजन के पश्चात भी, राज्यों में व्यापक विविधता व्याप्त है जो प्रायः कुछ नृजातीय समूहों में 'सांस्कृतिक रूप से पराधीनत और उत्पीड़ित' होने की भावना उत्पन्न करती है। अतः नृजातीय पहचान को संरक्षित करने हेतु एक नए राज्य की मांग की जाती है। उदाहरण के तौर पर, पश्चिम बंगाल से अलग गोरखालैंड, उत्तर पूर्व में नागालीम, उत्तर प्रदेश से भोजपुरी भाषी पूर्वांचल क्षेत्र की मांग आदि।
- **राजनीतिक**: अधिक राजनीतिक प्रभुत्व की प्राप्ति हेतु जाट बाहुल्य वाले पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हरित प्रदेश की मांग की जा रही है। वर्तमान में यह राजनीतिक प्रभुत्व यादवों के पास है।

छोटे राज्यों के गठन के पक्ष में तर्क:

- **शक्ति का विकेंद्रीकरण**: छोटी प्रशासनिक इकाइयां दूरस्थ प्रांतीय सरकारों और सुदूरवर्ती राजधानियों के प्रशासन को लोगों के समीप लाएंगी। यह प्रशासनिक दक्षता में वृद्धि के साथ आधुनिकीकरण की गति में तीव्रता लाने, पिछड़े क्षेत्रों के लोगों की राजनीतिक आकांक्षाओं को पूरा करने और राज्यों को स्थानीय वास्तविकताओं के आधार पर अलग नीति बनाने में सहायता करेगा।
- यह नृजातीय समूहों के मध्य पहचान की संकट की समस्या का समाधान करता है और उन्हें अपनी भाषा एवं संस्कृति को विकसित करने में सक्षम बनाता है। इससे उन्हें **'आंतरिक उपनिवेशवाद की भावनाओं'** से छुटकारा पाने में सहायता मिलती है।
- यह वर्तमान में बड़े आकार वाले राज्यों जैसे उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश और महाराष्ट्र एवं छोटे राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा और हिमाचल प्रदेश के प्रतिनिधित्व को अधिक समानुपातिक बनाकर संघ को अधिक संतुलित बनाता है।
- **सार्वजनिक संसाधनों का बेहतर प्रबंधन, कार्यान्वयन और आवंटन:** अपेक्षाकृत समरूप छोटा राज्य सुगम सम्पर्क की सुविधा प्रदान करता है जो वंचित सामाजिक समूहों को संगठित होने और अपनी आवाज उठाने में सक्षम बनाता है।
- **बाल्कनाइजेशन (विखंडन) का और अधिक भय नहीं**: पूर्व में बाल्कनाइजेशन के भय से अलग राज्यों की मांगों का विरोध किया गया था। हालांकि, स्वतंत्रता के 70 वर्षों के पश्चात अब इस तरह का भय नहीं है।

छोटे राज्यों के गठन के विरुद्ध तर्क:

- छोटे राज्यों की मांग उन पिछड़े क्षेत्रों के तीव्र आर्थिक विकास की गारंटी प्रदान नहीं करती, जिनके पास आवश्यक सामग्री और मानव संसाधन नहीं हैं। इसके अतिरिक्त, संभव है कि कुछ छोटे राज्य आर्थिक व्यवहार्यता न प्राप्त कर सकें।
- छोटे राज्यों के गठन के परिणामस्वरुप सत्ता संरचना में प्रभावशाली समुदाय/जाति/जनजाति का प्रभुत्व स्थापित होने की भी सम्भावना होती है। इस प्रकार के राज्यों में उग्र क्षेत्रवाद की भावना का भी विकास हो सकता है। यह आगे चलकर भूमि-पुत्र (sons-of-the-soil) अवधारणा का रूप ले सकता है। इससे प्रवासियों के लिए भय का माहौल उत्पन्न होगा।
- राज्य विधानमंडल के छोटे आकार के कारण सत्तारूढ़ दल या सत्तारूढ़ गठबंधन का बहुमत कमजोर बना रहेगा जिससे राज्य में कुछ नकारात्मक राजनीतिक परिस्थितियां उत्पन्न हो सकती हैं। झारखंड इसका एक उपयुक्त उदाहरण है जहाँ यह देखा गया कि एक स्वतंत्र विधायक भी मुख्यमंत्री बनने के लिए विधायकों की संख्या में जोड़-तोड़ कर सकता है।
- इन राज्यों में मुख्यमंत्री के पास शक्तियों के केंद्रीकरण का जोखिम अत्यधिक होता है और ऐसे में मुख्यमंत्री सचिवालय अधिकार सम्पन्न होगा। इससे राज्य पूर्णतः मुख्यमंत्री का प्रभावक्षेत्र बन सकता है।
- इससे अंतर्राज्यीय जल, शक्ति और सीमा विवादों में वृद्धि हो सकती है, जैसा कि आंध्र प्रदेश और तेलंगाना के मामले में देखा गया है।
- इससे उनके सीमित वित्तीय संसाधनों पर दबाव उत्पन्न होगा क्योंकि नई राजधानियों के निर्माण और मुख्यमंत्रियों, मंत्रियों और प्रशासकों की बढ़ती संख्या को बनाए रखने के लिए भारी धनराशि की आवश्यकता होगी।
- छोटे राज्यों के पिछले अनुभवों से ज्ञात होता है कि केवल राज्य का छोटा आकार बेहतर विकास के लिए कोई गारंटी प्रदान नहीं करता है। उदाहरण के लिए मानव विकास सूचकांक में उत्तराखंड निरंतर निचले स्थान पर रहा है, छत्तीसगढ़ में जनजातियों का सबसे बड़ा विस्थापन देखा गया है और झारखंड भ्रष्टाचार एवं भ्रष्ट प्रशासन से ग्रस्त है।

सुझाव और आगे की राह

- **बेहतर अभिशासन**: बेहतर लोक सेवा प्रदायगी के लिए दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुंचने और लोगों के मध्य विस्थापन एवं असंतोष की समस्याओं का समाधान करने हेतु प्रौद्योगिकी का प्रयोग करना।

VISION IAS

- छोटे जिले सरकार और प्रशासन को जनसामान्य के समीप लाते हैं। प्रशासन को अधिक दक्ष और विकास हेतु जवाबदेह बनाने के लिए जिला कलेक्टर तथा जिला परिषद के कार्यालय को अधिक अधिकार प्रदान किए जा सकते हैं।
- **प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्वशासन का सुदृढीकरण**: स्थानीय स्वशासन को अधिक शक्तियां प्रदान करना स्थानीय विकास हेतु अधिक कार्यक्षम, सशक्त और लाभप्रद होगा। प्रिंसिपल ऑफ़ सब्सिडैरिटी (उच्चतर स्तरों को उन कार्यों से मुक्त रखना जो निम्नतर स्तर पर दक्षतापूर्ण ढंग से सम्पादित किये जा सकते हैं) के आधार पर शक्तियों को विकेन्द्रीकृत किया जाना चाहिए।
- **राजनीतिक स्थिरता** नीतिगत मामलों की निरंतरता पर अधिक निर्भर करती है, न कि राज्यों के विशाल आकार पर। एक दक्ष और तत्पर प्रशासक एक बड़े राज्य को भी अधिक संतोषजनक ढंग से प्रबंधित कर सकता है।
- इस विषय पर विचार करने हेतु द्वितीय राज्य पुनर्गठन आयोग का निर्माण किया जाना चाहिए। अधिक उद्देश्यपूर्ण एवं वैज्ञानिक आधारों पर राज्यों का गठन इस मुद्दे का एक सकारात्मक समाधान हो सकता है।

2. संवैधानिक उपबंधों से संबंधित मुद्दे

(Issues Related to Constitutional Provisions)

संविधानवाद शब्द का अर्थ है कि राजनेताओं और सरकारी निकायों की शक्ति सीमित है और इन सीमाओं को स्थापित प्रक्रियाओं के माध्यम से आरोपित किया जा सकता है। राजनीतिक या कानूनी सिद्धांत के एक निकाय के रूप में यह सरकार को संदर्भित करता है जो संपूर्ण समुदाय के कल्याण के साथ ही साथ व्यक्तिगत अधिकारों के संरक्षण के प्रति भी समर्पित होती है।

संविधानवाद **बुनियादी मानवाधिकारों की गारंटी प्रदान करता है**, इसके बावजूद भी यदि विधि सर्वोच्च नहीं है तो नागरिक इन अधिकारों का लाभ नहीं उठा पाएंगे। अतः संविधानवाद लोकतंत्र को बनाए रखता है जो बुनियादी मानवाधिकारों की गारंटी प्रदान करता है।

भारत में एक **संविधानिक लोकतंत्र** है जहां नागरिकों और सरकार दोनों की शक्तियों, अधिकारों और दायित्वों को परिभाषित किया गया है। हालांकि, इसके अंगीकरण के बाद से संविधान को विभिन्न मुद्दों का सामना करना पड़ा है। वर्तमान में सुर्ख़ियों में रहे विभिन्न मुद्दे निम्नलिखित हैं -

2.1 हेट स्पीच

(Hate Speech)

सुर्ख़ियों में क्यों?

केंद्र सरकार द्वारा गठित **टी.के. विश्वनाथन समिति** ने हेट स्पीच (द्वेषपूर्ण भाषण) के सन्दर्भ में कठोर प्रावधान बनाने की अनुशंसा की है।

परिचय

जहाँ हेट स्पीच को प्रायः कट्टर द्वेषपूर्ण भाषण के रूप में ख़ारिज कर दिया जाता है, वहीं यह एक कहीं अधिक गंभीर परिणाम के **चेतावनी संकेत** के रूप में भी कार्य कर सकती है। अत्यधिक द्वेषपूर्ण हेट स्पीच प्रायः **सामूहिक हिंसा** का कारण बनती है। टेक्स्ट मैसेज और इंटरनेट की बढ़ती प्रभावशाली भूमिका ने इस समस्या को और भी बढ़ा दिया है।

इन सबके बावजूद हेट स्पीच को प्रतिबंधित करने और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकार को प्रोत्साहित करने के मध्य **एक संतुलन स्थापित करना चाहिए**।

पृष्ठभूमि

- उच्चतम न्यायालय ने हेट स्पीच के मुद्दे पर गहन विचार-विमर्श की आवश्यकता का अनुभव किया। इस सन्दर्भ में विधि आयोग ने हेट स्पीच पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।
- विश्वनाथन समिति का गठन हेट स्पीच तथा हिंसा को बढ़ावा देने वाले साइबर अपराधों से बेहतर ढंग से निपटने हेतु एक कानूनी तंत्र की स्थापना करने के लिए किया गया है। समिति को हेट स्पीच पर विधि आयोग की रिपोर्ट की जांच करने का कार्य भी सौंपा गया था।

हेट स्पीच

- उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि "हेट स्पीच व्यक्तियों को, किसी समूह विशेष की सदस्यता के आधार पर हाशिए पर पहुँचाने का प्रयास है। हेट स्पीच उस समूह के सदस्यों को बहुसंख्यकों के समक्ष अमान्यता प्रदान करके समाज के अंदर उनकी सामाजिक स्थिति एवं स्वीकृति को कम कर देती है। इस प्रकार प्रारम्भ में यह किसी विशिष्ट समूह के सदस्यों का उत्पीड़न करती है, परन्तु यही कालांतर में उन सुभेद्य समूहों पर व्यापक हमलों के लिए आधार तैयार करती है।
- विधि आयोग की 267वीं रिपोर्ट के अनुसार, "हेट स्पीच से आशय सामान्यतः मूलवंश, नृजातीयता, लिंग, यौन उन्मुखता (sexual orientation) तथा धार्मिक विश्वास के आधार पर परिभाषित किए गए व्यक्तियों के किसी समूह के विरुद्ध घृणा की भावना को बढ़ावा देने से है। इस प्रकार, हेट स्पीच किसी व्यक्ति को लिखित या मौखिक शब्द, संकेत अथवा उसकी श्रवण सीमा अथवा दृश्य सीमा के अंतर्गत होने वाली दृश्य प्रस्तुति के माध्यम से भयभीत करने या चेतावनी देने अथवा हिंसा के लिए उकसाने से सम्बंधित है।
- मानवाधिकार परिषद की 'विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार के प्रचार और संरक्षण पर विशेष प्रतिवेदक की रिपोर्ट' (Report of the Special Rapporteur on the promotion and protection of the right to freedom of opinion and expression) में व्यक्त किया गया है कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को निम्नलिखित आधारों पर प्रतिबंधित किया जा सकता है:
  - चाइल्ड पोर्नोग्राफी (बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा हेतु)।
  - हेट स्पीच (प्रभावित समुदायों के अधिकारों की रक्षा हेतु)।
  - मानहानि (अनुचित हमलों के विरुद्ध दूसरों के अधिकारों और प्रतिष्ठा की रक्षा हेतु)।
  - जनसंहार करने के लिए निर्देश देना और जन उत्तेजना फैलाना (दूसरों के अधिकारों की रक्षा हेतु)।

VISION IAS

- भेदभाव, शत्रुता या हिंसा को बढ़ावा देने वाली राष्ट्रीय, नस्लीय या धार्मिक घृणा का समर्थन करना (दूसरों के अधिकारों की रक्षा हेतु, जैसे कि जीवन का अधिकार)

भारत में इससे संबंधित कानून

- **संविधान का अनुच्छेद 19** भारत के सभी नागरिकों को वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की गारंटी प्रदान करता है। हालांकि, यह अधिकार भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार अथवा नैतिकता या न्यायालय की अवमानना, मानहानि या किसी अपराध के लिए उकसाने के आधार पर युक्तियुक्त प्रतिबंधों के अधीन है।

भारतीय दंड संहिता (IPC) में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को प्रतिबंधित करने हेतु निम्नलिखित प्रावधान किये गए हैं:

- **धारा 153 (a):** यदि कोई व्यक्ति धर्म, मूलवंश, जन्म स्थान, निवास स्थान, भाषा आदि के आधार पर विभिन्न समूहों के बीच शब्दों, संकेतों या अन्य माध्यमों से वैमनस्य को बढ़ावा देता है, तो उसे तीन वर्ष के कारावास या अर्थ दंड अथवा दोनों से दण्डित किया जायेगा।
- **धारा 295 (a):** यदि कोई भी व्यक्ति भारत के किसी भी वर्ग के नागरिकों की धार्मिक भावनाओं को आहत करने के लिए जानबूझकर और दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य से शब्दों, दृश्य प्रतिरूपण या अन्य माध्यमों से उस वर्ग के धर्म या धार्मिक विश्वासों का अपमान करता है तो उसे दंडित किया जाएगा।

इन परिवर्तनों की आवश्यकता क्यों है?

- जहां ऐसे भाषण के कारण **गरिमा** को ठेस पहुँचती है, वहीं यह "अव्यक्त आश्वासन" भी कमजोर होता है कि किसी लोकतंत्र में नागरिकों, विशेषकर अल्पसंख्यक या सुभेद्य समूहों के नागरिकों को बहुसंख्यकों के समान स्तर पर ही रखा जाता है।
- साथ ही सुदृढ़ साइबर कानूनी ढ़ांचे के अभाव में, बड़े पैमाने पर महिलाओं को अनेक प्रकार की अभद्रता एवं अन्य अपमानों तथा हेट स्पीच का निशाना बनाया जा रहा है।

समिति द्वारा किए गए अवलोकन

- समिति का मत है कि मूलभूत प्रावधानों को IT अधिनियम की अपेक्षा IPC में सम्मिलित करना अधिक प्रभावी है, क्योंकि IT अधिनियम मुख्यतः ई-कॉमर्स विनियमन से संबंधित है।
- **IT अधिनियम की धारा 78** मुख्य रूप से 'क्षमता निर्माण से संबंधित' है। अतः अधिकारियों को संवेदनशील बनाने तथा उन्हें इलेक्ट्रॉनिक विशेषज्ञता, कंप्यूटर-फॉरेंसिक और डिजिटल फॉरेंसिक से सम्बंधित सहायता प्रदान करने के लिए इसकी पुनर्समीक्षा की आवश्यकता है।
- इसने प्रत्येक राज्य में **स्टेट साइबर क्राइम कोऑर्डिनेटर** (धारा 25B) और एक **डिस्ट्रिक्ट साइबर क्राइम सेल** (धारा 25C) की स्थापना करने के लिए CrPC में संशोधन करने की अनुशंसा की है।
- हेट स्पीच का आशय "किसी भी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के विरुद्ध अत्यधिक अपमानजनक, निन्दात्मक या भड़काऊ भाषण" से होना चाहिए जो "चोट पहुँचाने के भय या चेतावनी देने के उद्देश्य" से किया गया हो।
- समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि **जांच एजेंसियों द्वारा प्रावधानों के दुरुपयोग को प्रतिबंधित करने और सोशल मीडिया के अबोध उपयोगकर्ताओं की रक्षा के लिए दिशा-निर्देशों** की आवश्यकता है।
- कई अनुशंसाएँ विधि आयोग की रिपोर्ट से ली गयीं, जो इस प्रकार हैं:
  - धर्म, जाति, समुदाय, लिंग, यौन उन्मुखता, जनजाति, भाषा, जन्म स्थान आदि के आधार पर ऑनलाइन अभिव्यक्तियों के माध्यम से घृणा को प्रोत्साहित करने पर प्रतिबंध लगाने के लिए **धारा 153C** को अंतःस्थापित किया जाना चाहिए।
  - विधि आयोग द्वारा पहचान के आधार पर चेतावनी, भय, हिंसा के लिए उकसाने आदि को प्रतिबंधित करने के लिए **धारा 505A** को अंतःस्थापित करने का प्रस्ताव दिया गया था।
  - यह स्पष्ट किया गया कि **अभिप्राय की आवश्यकता (need for intent)** को स्थापित किया जाना चाहिए।

समिति की अनुशंसाओं से संबंधित चिंताएँ-

- विधि आयोग किसी भाषण को **हेट स्पीच** घोषित करने के लिए भाषण के लेखक की स्थिति, भाषण से पीड़ित लोगों की स्थिति तथा भाषण के संभावित प्रभावों की पहचान करता है। हालांकि, **समिति की रिपोर्ट में इन चिंताओं को स्पष्ट रूप से परिलक्षित नहीं किया गया है।**

VISION IAS

- इसके अलावा, रिपोर्ट के द्वारा **अत्यंत व्यापक शब्दों** जैसे- अत्यधिक अपमानजनक, अभद्रता, अपमान, उत्तेजक, झूठी एवं अत्यंत आक्रामक सूचना इत्यादि का प्रयोग किया गया है जो हमें पुनः धारा 66A में विद्यमान अस्पष्टता की स्थिति में ले जाती है।

विधि आयोग ने दण्ड की अनुशंसा की है:

- **वैमनस्य भड़काने से रोकना:** यदि कोई व्यक्ति
  - भय उत्पन्न करने के उद्देश्य से किसी व्यक्ति को सुनाई देने या दिखाई देने वाले धमकी भरे शब्दों या संकेतों का प्रयोग करता है, या
  - हिंसा को भड़काने वाले शब्दों या संकेतों के माध्यम से वैमनस्य का समर्थन करता है तो उसे 2 वर्ष के कारावास सहित दण्ड दिया जाएगा। हालांकि, वैमनस्य को भड़काने का आधार धर्म, जाति, समुदाय, लिंग, लिंग पहचान, यौन-उन्मुखता, जन्म स्थान, निवास स्थान, अक्षमता इत्यादि होना चाहिए। यह एक संज्ञेय और गैर-जमानती अपराध होगा।
- **कुछ मामलों में भय, चेतावनी या हिंसा को भड़काने के कारण:** यदि कोई व्यक्ति कुछ आधारों (जैसे- धर्म, जाति, समुदाय, लिंग, लैंगिक पहचान) पर धमकी भरे अथवा अपमानजनक शब्दों या संकेतों का प्रयोग-
  - किसी व्यक्ति की दृश्य या श्रृव्य परिधि के भीतर भय उत्पन्न करने के उद्देश्य से, या
  - हिंसा भड़काने के उद्देश्य से करता है।

  तो ऐसा करने वाला व्यक्ति दण्ड का भागी होगा। ऐसे मामलों में एक वर्ष तक कारावास और/या 5,000 रुपये तक का जुर्माना देय होगा। यह एक गैर-संज्ञेय और जमानती अपराध होगा।

निष्कर्ष

उस संदर्भ की जाँच करना महत्वपूर्ण है जिसमें भाषण दिया गया है ताकि इसके पीछे की प्रेरणा और संभावित प्रभाव को सही ढंग से निर्धारित किया जा सके। भाषण के खतरे को उस संदर्भ के आधार पर ही अनुमानित किया जाना चाहिए जिसमें वह दिया गया या प्रसारित किया गया है। अनुवाद में भाषण का मूल संदेश नष्ट हो सकता है।

2014 में **प्रवासी भलाई संगठन बनाम भारत संघ वाद** में उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि हेट स्पीच को समता के अधिकार के दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए देखना चाहिए। हालांकि हेट स्पीच का विनियमन करते समय कुछ दोषों का निवारण करना आवश्यक है ताकि देश को एक प्रक्रियात्मक लोकतंत्र से वास्तविक लोकतंत्र में परिवर्तित किया जा सके।

2.2. निष्क्रिय इच्छा-मृत्यु

(Passive Euthanasia)

इच्छामृत्यु (Euthanasia) क्या है?

इच्छामृत्यु को **असिस्टेड सुसाइड** (दूसरे की सहायता से आत्महत्या) या अनौपचारिक भाषा में **दया मृत्यु (mercy killing)** भी कहा जाता है। इसका अर्थ दुसाध्य (सतत, अविरल) कष्ट से मुक्ति दिलाने हेतु किसी के जीवन को समाप्त करने के अभिप्राय से जान-बूझकर किया गया प्रयास है।

न्यायालय के निर्णय से संबंधित अन्य तथ्य

- हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने पैसिव यूथेनेशिया या निष्क्रिय इच्छामृत्यु पर अपना निर्णय दिया है।
- खंडपीठ ने इस निर्णय को बरकरार रखा कि जीवन तथा गरिमा संबंधी मौलिक अधिकार में उपचार से मना करने तथा गरिमा के साथ मरने का अधिकार भी सम्मिलित है, क्योंकि "अर्थपूर्ण अस्तित्व" संबंधी मौलिक अधिकार में किसी व्यक्ति के बिना कष्ट के मरने का निर्णय संबंधी अधिकार सम्मिलित है।
- इस निर्णय में लिविंग विल की जांच करने के संबंध में विशिष्ट दिशा-निर्देश भी जारी किए गए हैं। इसके आधार पर यह अभिप्रमाणित किया जाना चाहिए कि, कब तथा किस प्रकार इसे अमल में लाया जाना है।
- इस दिशा-निर्देश में एक ऐसी स्थिति को भी सम्मिलित किया गया है जहां कोई लिविंग विल न हो, तो ऐसी दशा में निष्क्रिय इच्छामृत्यु संबंधी अनुनय किस प्रकार किया जाए।
- न तो उक्त व्यक्ति को कोई तर्क या कारण देने की आवश्यकता है, न ही उसे इस बात के लिए किसी अधिकारी को उत्तर देने की आवश्यकता है कि क्यों उसे अग्रिम निर्देश ज़ारी करना चाहिए।
- किन्तु खंडपीठ ने अपने निर्णय में कहा गया कि **सक्रिय इच्छामृत्यु गैर-क़ानूनी** है।

इच्छामृत्यु (Euthanasia) क्या है?

इच्छामृत्यु को **असिस्टेड सुसाइड** (दूसरे की सहायता से आत्महत्या) या अनौपचारिक भाषा में **दया मृत्यु (mercy killing)** भी कहा जाता है। इसका अर्थ दुसाध्य (सतत, अविरल) कष्ट से मुक्ति दिलाने हेतु किसी के जीवन को समाप्त करने के अभिप्राय से जान-बूझकर किया गया प्रयास है।

सक्रिय इच्छामृत्यु (active euthanasia) में एक व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से तथा जान-बूझकर रोगी को मृत्यु प्रदान करता है, जबकि **निष्क्रिय इच्छामृत्यु** (passive euthanasia) में वे सीधे रोगी की जान नहीं लेते, वे केवल उन्हें मृत्यु की ओर जाने देते हैं। भारत में इस बात पर चर्चा चल रही है कि क्या मृत्यु का अधिकार **अनुच्छेद 21** के अंतर्गत जीने के अधिकार का ही एक भाग है या नहीं।

पृष्ठभूमि

- 2002 में, 196वें भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट में निष्क्रिय इच्छामृत्यु का समर्थन किया गया था। तथापि, इसके अंतर्गत इच्छामृत्यु पर कोई क़ानून न बनाने का निर्णय लिया गया।
- 2011 में *अरुणा शॉनबाग* वाद में, जो कि इस दिशा में एक मील का पत्थर था, सर्वोच्च न्यायालय ने परसिस्टेंट वेजिटेटिव स्टेट (PVS) (स्थायी रूप से निष्क्रिय अवस्था) में पड़े रोगियों की जीवन रक्षक प्रणाली को हटा कर निष्क्रिय इच्छामृत्यु को क़ानूनी मान्यता प्रदान करने का निर्णय लिया। न्यायालय के अनुसार, रोगी का निर्णय अवश्य ही सूविज्ञ निर्णय होना चाहिए।
- बाद में, अपनी 241वीं रिपोर्ट में विधि आयोग ने कुछ वर्ग के लोगों यथा ऐसे अचेत लोगों की जो अपनी चेतन अवस्था से वापस नहीं लौट सकते, परसिस्टेंट वेजिटेटिव स्टेट में हैं या विक्षिप्त या रुग्ण मस्तिष्क के हैं या जो निर्णय ले पाने संबंधी मानसिक क्षमता से वंचित हैं, उनकी जीवन रक्षक प्रणाली को हटाने के निर्णय का समर्थन किया।
- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए ये दिशा-निर्देश तथा इच्छामृत्यु के संबंध में इस देश के क़ानून के अनुसार सक्रिय इच्छामृत्यु अब भी भारत में वैध नहीं है।
- हाल ही में, केंद्र सरकार ने लिविंग विल (चिकित्सकों को जीवन रक्षक संबंधी चिकित्सकीय उपकरणों को हटाने के संबंध में अग्रिम रूप से लिखित निर्देश) की अवधारणा को वैधानिक रूप दिए जाने का विरोध किया।

संबंधित तथ्य

- **लिविंग विल** एक ऐसी अवधारणा है जिसके अंतर्गत कोई रोगी जब परसिस्टेंट वेजिटेटिव स्टेट (स्थायी रूप से निष्क्रिय अवस्था) में हो तथा उसके जीवित बचने की कोई वास्तविक संभावना न हो, तब वह अपनी सहमति से जीवन रक्षक प्रणाली को हटाए जाने की अनुमति प्रदान कर सकता है।
- एक लिखित दस्तावेज होता है जिसमें कोई मरीज पहले से यह निर्देश देता है कि मरणासन्न स्थिति में पहुंचने पर उसे किस प्रकार का उपचार दिया जाए या, अधिकांशतः, चिकित्सीय उपचार हेतु निर्देश देता है।
- जब कोई व्यक्ति चिकित्सा ज़ारी रखने या उसे बंद रखने संबंधी सहमति देने की स्थिति में न हो तो चिकित्सकीय आचार-नीति के दो आधारभूत सिद्धांत महत्वपूर्ण हो जाते हैं:
  - लिविंग विल के रूप में व्यक्त उसकी इच्छाओं या उसके बदले निर्णय ले रहे उसके प्रतिनिधि की इच्छाओं का सम्मान किया जाना चाहिए।
  - उपकारिता (Beneficence) जिसका आशय किसी व्यक्तिगत विश्वास, उद्देश्यों तथा अन्य धारणाओं से प्रभावित हुए बिना रोगी के सर्वाधिक हित में आचरण करना।

'मरणासन्न रोगियों का चिकित्सकीय उपचार मसौदा विधेयक' के प्रावधान

- **एक सक्षम रोगी के अधिकार:** प्रत्येक सक्षम रोगी (16 वर्ष से ऊपर के नाबालिगों सहित) को असाध्य रोग के मामले में चिकित्सकीय उपचार को रोकने, वापस लेने या जारी रखने सम्बन्धी निर्णय लेने का अधिकार होगा। यदि चिकित्सक संतुष्ट है कि रोगी एक सुविज्ञ निर्णय लेने में समर्थ है तो चिकित्सक उसके अनुरोध पर कार्य करेगा। 16 वर्ष से ऊपर के नाबालिगों के मामले में माता-पिता और प्रमुख पति/पत्नी की सहमति भी आवश्यक होगी।
- निर्णय पर आगे बढ़ने से पहले चिकित्सक के लिए उपचार वापस लेने की आवश्यकता (या अन्यथा) होने पर पति/पत्नी या माता-पिता सहित संबंधित व्यक्तियों को सूचित करना अनिवार्य होगा।
- **चिकित्सक और सक्षम रोगी का संरक्षण:** यदि असाध्य रोग से पीड़ित कोई रोगी चिकित्सा उपचार को अस्वीकार कर देता है तो वह भारतीय दंड संहिता,1860 के अंतर्गत किसी भी अपराध के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। जहां चिकित्सक रोगी की इच्छा के आधार पर चिकित्सा उपचार को रोकता है, तो तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी अन्य बात के होते

VISION IAS

हुए भी उसकी कार्रवाई को विधिसम्मत माना जाएगा।

- **अक्षम रोगी के लिए प्रक्रिया:** एक अक्षम रोगी (अस्वस्थ मस्तिष्क का व्यक्ति आदि) के मामले में निकटतम रिश्तेदार, चिकित्सक इत्यादि चिकित्सा उपचार को वापस लेने या रोकने की अनुमति प्राप्त करने हेतु उच्च न्यायालय में आवेदन कर सकते हैं। न्यायालय विशेषज्ञों के पैनल की रिपोर्ट (जिसमें विशेषज्ञ चिकित्सकीय राय प्रदान की गयी हो) और पति/पत्नी, माता-पिता इत्यादि की इच्छाओं पर विचार करने के पश्चात् अनुमति प्रदान कर सकता है या अनुमति देने से माना कर सकता है (या कुछ शर्तों के साथ अनुमति दे सकता है)।

निष्क्रिय इच्छामृत्यु के पक्ष में तर्क

- कुछ लोगों का विश्वास है कि प्रत्येक रोगी को उसी प्रकार मरने का समय चुनने का अधिकार है जिस प्रकार उन्हें संविधान द्वारा जीवन का अधिकार प्रदान किया गया है।
- प्रस्तावक ऐसा मानते हैं कि सरकार द्वारा क़ानून बना कर इच्छामृत्यु को सुरक्षित तरीके से नियंत्रित किया जा सकता है। निष्क्रिय इच्छामृत्यु पहले से ही विश्व के बहुत सारे देशों में अमल में लाई जा रही है।
- विश्व में बड़े पैमाने पर प्रयुक्त हो रहे पैलिएटिव सिडेशन (palliative sedation) के मामले में प्रयुक्त विभिन्न सिडेटिव से किसी व्यक्ति के जीवन काल के कम होने का ख़तरा रहता है। इसलिए, यह भी तर्क दिया जा सकता है कि पैलिएटिव सिडेशन वस्तुतः इच्छामृत्यु का ही एक प्रकार है।

निष्क्रिय इच्छामृत्यु के विपक्ष में तर्क

- वैकल्पिक उपचार, जैसे- रोग के लक्षण कम करने हेतु देखभाल तथा मरणासन्न रोगियों के लिए अस्पताल उपलब्ध हैं। हमें लक्षणों को समाप्त करने के लिए रोगी को समाप्त करने की आवश्यकता नहीं है। लगभग सभी व्यथाओं का शमन संभव है।
- मारे जाने का कोई अधिकार नहीं होता। चिकित्सकों को रोगी के जीवन-मरण संबंधी अधिकार दे कर स्वैच्छिक इच्छामृत्यु का द्वार खोलने से अनैच्छिक इच्छामृत्यु के द्वार भी खुल जाएंगे।
- रोगी को जीवन समाप्त करने का अधिकार है, ऐसी पूर्वधारणा के कारण चिकित्सकों पर रोगियों को मारने का कर्तव्य भी आरोपित हो जाएगा। इससे चिकित्सकों की स्वायत्तता में कमी आएगी। इसके अतिरिक्त, कुछ लोगों के लिए विशेषतः जो सुभेद्य तथा अन्य लोगों पर निर्भर हैं, मरने का अधिकार अन्य लोगों के द्वारा मृत्यु का निर्णय लेने संबंधी कर्तव्य में बदल जाएगा।
- केंद्र ने **लिविंग विल** की अवधारणा का भी विरोध किया है। केंद्र के अनुसार ऐसे प्रावधान का **दुरुपयोग किया जा सकता** है।

आगे की राह/निष्क्रिय इच्छा मृत्यु के क्रियान्वयन में विचारणीय मापदंड

इच्छा मृत्यु एक महत्वपूर्ण मुद्दा है क्योंकि यह मरने के अधिकार और किसी व्यक्ति के गरिमापूर्ण जीवन जीने के अधिकार से संबंधित है। वर्तमान में इच्छा मृत्यु पर ऐसे कानून और नियमों का अभाव है जो इसे नियंत्रित करने के साथ ही यह सुनिश्चित कर सकें कि इसका दुरुपयोग नहीं होगा। इस सन्दर्भ में ऐसे कई विचार हैं जिन पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है, जैसे-

- इच्छा मृत्यु की मांग करने वाले व्यक्ति की **मानसिक स्वास्थ्य की स्थिति का आकलन** करना आवश्यक है क्योंकि ऐसे रोगियों के लिए इच्छा मृत्यु के चयन का मुख्य कारण अवसाद, निराशा, दर्द और देखभाल की कमी होता है। यदि रोगी की अच्छी देखभाल की जाती है तो वह इच्छा मृत्यु के अपने निर्णय को बदल सकता है और प्राकृतिक मृत्यु प्राप्त कर सकता है।
- **डॉ एम. आर. राजगोपाल** की अध्यक्षता में गठित एक समिति ने इस विषय पर सरकार के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमें उन मानदण्डों तथा न्यूनतम दशाओं को सूचीबद्ध किया है जिनके पूरा होने पर ही 'निष्क्रिय इच्छा मृत्यु' और 'लिविंग विल' क्रियान्वित की जा सकती है। रिपोर्ट की महत्वपूर्ण सिफारिशें निम्नलिखित हैं-
    - इस रिपोर्ट में यह कहा गया है कि 'निष्क्रिय इच्छा मृत्यु' शब्द का उपयोग 'भ्रामक' है क्योंकि इस शब्द में किसी व्यक्ति की हत्या करने के प्रयोजन का बोध होता है। इसके स्थान पर 'निरर्थक उपचार रोकने या वापस लेने' जैसी शब्दावली का प्रयोग करना अधिक तार्किक है।
    - 'लिविंग विल' की प्रक्रिया को संचालित करने के लिए जिला स्तर पर चिकित्सकों का एक पैनल गठित किया जा सकता है। रिपोर्ट में सरकार से यह निवेदन किया गया है कि वह संबंधित जिला चिकित्सा अधिकारियों को अग्रिम रूप से पैनल गठित करने हेतु निर्देश दे ताकि आवश्यकता पड़ने पर प्रक्रिया के लिए चिकित्सक ढूँढने में अनावश्यक समय व्यर्थ न हो।

2.3. धर्म परिवर्तन का अधिकार

(Right to Convert)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किसी व्यक्ति के 'धर्म के चयन संबंधी अधिकार' (Right to choose a religion) के विषय में निर्णय दिया गया।

VISION IAS

"धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार" से सम्बंधित संवैधानिक प्रावधान:

अनुच्छेद 25: लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य तथा इस भाग के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए, सभी व्यक्तियों को अंतःकरण की स्वतंत्रता का और धर्म के अबाध रूप से मानने, आचरण करने और प्रचार करने का समान अधिकार होगा।

अनुच्छेद 26: लोक व्यवस्था, सदाचार और स्वास्थ्य के अधीन रहते हुए, प्रत्येक धार्मिक संप्रदाय या उसके किसी अनुभाग को धार्मिक और परोपकारी प्रयोजनों के लिए संस्थानों की स्थापना और पोषण का, अपने धर्म विषयक कार्यों का प्रबंध करने का तथा ऐसी संपत्ति का विधि के अनुसार प्रशासन करने का अधिकार होगा।

अनुच्छेद 27: इस अनुच्छेद में वर्णित किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को ऐसे करों का संदाय करने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा जिनके आगम किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक सम्प्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय करने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से विनियोजित किए जाते हैं।

अनुच्छेद 28: इस अनुच्छेद के तहत यह अनिवार्य है कि राज्य द्वारा वित्त पोषित शैक्षणिक संस्थानों में कोई धार्मिक निर्देश नहीं दिया जाएगा।

अन्य संबंधित तथ्य

- निम्नलिखित अवलोकन 26 वर्षीय होम्योपैथी छात्रा **हादिया** के वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के भाग हैं। इस मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नलिखित निर्णय दिया:
  - **चयन का अधिकार (Right to choice):** धार्मिक आस्था की स्वतंत्रता किसी भी व्यक्ति की स्वायत्तता के लिए आवश्यक है। आस्था का चयन व्यक्ति का बुनियादी विषय है जिसके अभाव में धर्म के चयन का अधिकार आधारहीन हो जाता है।
  - **स्वतंत्रता (Liberty):** विश्वास और आस्था सम्बन्धी विषय (जिसमें किसी भी धर्म में विश्वास करना सम्मलित है) संवैधानिक स्वतंत्रता की मूल भावना में निहित हैं और यह संविधान विश्वास करने वालों के साथ-साथ अनीश्वरवादियों (agnostics) के लिए भी उपलब्ध है।
  - **पहचान (Identity):** पहनावा एवं भोजन, सोच एवं विचारधारा, प्रेम एवं जीवनसाथी चुनना आदि पहचान के केन्द्रीय पहलू हैं। जीवनसाथी के चयन में समाज की कोई भूमिका नहीं होती है।
  - **संवैधानिक संरक्षण (Constitutional Protection):** संविधान प्रत्येक व्यक्ति की जीवन शैली या विश्वास (जिसका पालन वह करना चाहता है) को बनाए रखने की क्षमता को सुरक्षा प्रदान करता है।
- सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि धर्म के चयन और अपनी पसंद के अनुसार विवाह करने का अधिकार सार्थक अस्तित्व के मूलभूत भाग हैं। राज्य और "पितृसत्तात्मक सर्वोच्चता" व्यक्ति के इस निर्णय में हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं।
- यह सर्वोच्च न्यायालय के "प्रचार (propagate)" शब्द के संदर्भ में किए गए पूर्व निर्वचन में परिवर्तन करता है। पूर्व निर्वचन के अनुसार इसका अर्थ है "अपने धार्मिक सिद्धांतों का विस्तार करने हेतु किसी भी व्यक्ति को अपने धर्म को प्रसारित करने या प्रचार करने का अधिकार प्राप्त है", परन्तु किसी अन्य व्यक्ति को अपने धर्म को परिवर्तित करने का अधिकार इसमें शामिल नहीं है।

भारत में धर्मांतरण का मुद्दा

- **भारतीय संविधान के भाग 3 (अनुच्छेद 25 से 28)** में भारत में विशिष्ट सीमाओं से युक्त धर्म की स्वतंत्रता (भारतीय नागरिकों तथा भारत में निवास करने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए) का वर्णन किया गया है। यद्यपि **धर्म को भारतीय संविधान में कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया है** तथापि न्यायिक व्याख्याओं के माध्यम से इसका समय-समय पर विस्तार किया गया है।
- हालांकि भारत में धार्मिक मामलों में राज्य का सीमित और अनुमेय हस्तक्षेप है। तथापि विभिन्न राज्य सरकारों (उत्तराखंड, झारखंड, मध्यप्रदेश, ओडिशा इत्यादि) ने **धर्मांतरण रोधी कानूनों को क्रियान्वित किया** है जिनका उद्देश्य बलपूर्वक या प्रलोभन के माध्यम से किये जाने वाले धर्मांतरण को रोकना है। ऐसे कानून अत्यधिक आलोचना का विषय रहे हैं और इन पर धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार के उल्लंघन का आरोप लगाया गया है।
- संविधान में धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार से संबंधित प्रावधानों में धर्मांतरण के अधिकार का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया जिसके कारण यह मुद्दा जटिल हो गया है। विभिन्न मामलों में न्यायालय के निर्णयों ने धर्म की स्वतंत्रता और व्यक्ति के चयन के अधिकार के आलोक में देश में धर्मांतरण के विषय पर एक महत्वपूर्ण समझ विकसित की है।

निष्कर्ष

यह समझना महत्वपूर्ण है कि यदि किसी व्यक्ति को किसी दबाव या प्रलोभन के बिना अपना धर्म परिवर्तित करने की अनुमति नहीं दी जाती है तो धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार निरर्थक हो जाएगा। सभी प्रमुख अंतरराष्ट्रीय उपकरण इस बात का स्पष्ट रूप से उल्लेख करते हैं कि धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार में धर्मांतरण का अधिकार अन्तर्निहित है। यहां तक कि संयुक्त राज्य अमेरिका में धर्मांतरण के लिए प्रलोभन देना भी विधिसम्मत है और इस प्रकार के प्रलोभन पर प्रतिबंध लगाने हेतु पारित किसी भी अध्यादेश या आदेश को न्यायालय द्वारा रद्द कर दिया गया है। भारतीय संविधान धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार की गारंटी प्रदान करता है परंतु यह स्पष्ट रूप से धर्मांतरण

VISION IAS

के अधिकार का उल्लेख नहीं करता है। धर्मान्तरण एक मूल अधिकार नहीं हो सकता है (जैसा कि स्टैनिसलॉस वाद में कहा गया है) परंतु धोखाधड़ी, जबरन और प्रलोभन जैसे तत्व नहीं होने पर निश्चित रूप से किसी भी व्यक्ति को धर्म-परिवर्तन का अधिकार है।

2.4. प्रोन्नति में आरक्षण

(Reservation in Promotion)

सुर्ख़ियों में क्यों?

सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत **अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के कर्मचारियों को "विधि के अनुरूप" प्रोन्नति में आरक्षण** प्रदान करने की अनुमति प्रदान की है।

पृष्ठभूमि

- सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्देश सरकार द्वारा की गई इस शिकायत के प्रत्युत्तर में आया कि विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित अलग-अलग आदेशों के कारण प्रोन्नति में "गतिरोध" की स्थिति है।
- सर्वोच्च न्यायालय का यह निर्णय सरकार को विभिन्न विभागों में **बड़ी संख्या में रिक्तियों पर नियुक्ति** करने की अनुमति प्रदान करेगा।
- **'विधि के अनुरूप'** वाक्यांश, **एम नागराज वाद (2006) में निर्धारित दिशा-निर्देशों की ओर संकेत करता** है। ये दिशा-निर्देश वर्तमान में लागू हैं क्योंकि वर्तमान व्यवस्था में प्रोन्नति में आरक्षण से संबंधित कोई **विशिष्ट कानून** प्रचलित नहीं है।
- सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह भी कहा गया कि **नागराज वाद में दिए गए निर्णय** की जांच करने हेतु सात न्यायाधीशों की एक संवैधानिक पीठ का गठन किया जाना चाहिए।
- नागराज वाद में दिए गए निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस मुद्दे के संबंध में पूर्व के संवैधानिक संशोधन को यथावत रखते हुए राज्य पर कुछ प्रतिबंध आरोपित किए हैं। इनके अनुसार:
  - राज्य को उस वर्ग के पिछड़ेपन और लोक नियोजन में उस वर्ग के अपर्याप्त प्रतिनिधित्व को प्रदर्शित करने संबंधी मात्रात्मक आंकड़ों को एकत्र करना चाहिए।
  - यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रोन्नति प्रदान करने से प्रशासन की दक्षता कम न हो।
  - 50% की उच्चतम सीमा का उल्लंघन न किया जाए या क्रीमी लेयर को समाप्त न किया जाए अथवा आरक्षण का अनिश्चित काल तक विस्तार नहीं किया जाना चाहिए।

संबंधित वाद और संशोधन

- अनुच्छेद 15 (4) राज्य को सामाजिक और शैक्षिक रूप से पिछड़े हुए नागरिकों के वर्गों या अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की उन्नति के लिए विशेष उपबंध करने की अनुमति प्रदान करता है।
- इंदिरा साहनी वाद (1992) में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि आरक्षण नीति का प्रोन्नति तक विस्तार नहीं किया जा सकता है।
- हालांकि, **77वें संविधान संशोधन** द्वारा अनुच्छेद 16 में **खंड 4A को** अंतःस्थापित किया गया और प्रोन्नति में आरक्षण के प्रावधान को पुनर्स्थापित कर दिया।
- 1990 के दशक में न्यायालय ने निर्णय दिया था कि जल्द प्रोन्नत हुए किसी SC/ST उम्मीदवार का कोई पूर्व समकक्ष यदि बाद में प्रोन्नत होता है तो उसकी वरिष्ठता पुनः उस SC/ST उम्मीदवार के समकक्ष हो जाएगी।
- हालांकि, **85वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001** द्वारा प्रोन्नत SC/ST व्यक्तियों को "परिणामी वरिष्ठता" प्रदान करने का प्रावधान पुनः लागू कर दिया गया था।

प्रोन्नति में आरक्षण के पक्ष में तर्क:

- **अवसर की समता हेतु-** संविधान के साथ-साथ सर्वोच्च न्यायालय ने भी बार-बार अवसर की समता की प्राप्ति के समग्र उद्देश्य से वंचित वर्गों को एक समान अवसर प्रदान करने वाली किसी भी सकारात्मक कार्रवाई के पक्ष में निर्णय दिया है।
- यद्यपि विभिन्न स्तरों पर SCs/STs के प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई है, तथापि **पूर्वाग्रहों के कारण वरिष्ठ पदों पर SCs/STs का प्रतिनिधित्व अत्यंत कम है**। वर्षों से संस्थाएं **अपने भीतर समानता और आंतरिक लोकतंत्र को बढ़ावा देने में विफल रही हैं। 2017 में सरकार में सचिव स्तर के पदों पर SC/ST वर्गों से संबंधित केवल चार अधिकारी थे।**
- सरकार की **समग्र कार्यक्षमता को मापना कठिन है** और अधिकारियों द्वारा की जाने वाली 'आउटपुट संबंधी रिपोर्टिंग' सामाजिक पूर्वाग्रह से रहित नहीं है। उदाहरण के लिए, **महाराष्ट्र में** एक सरकारी कर्मचारी को प्रोन्नति से इसलिए वंचित कर दिया गया क्योंकि उसका **'चरित्र और सत्यनिष्ठा उत्तम दर्जे के नहीं थे'।**

VISION IAS

प्रोन्नति में आरक्षण के विपक्ष में तर्क:

- संविधान के **अनुच्छेद 16(4), 16(4A) और 16(4B)** के अंतर्गत किए गए प्रावधान केवल सक्षमकारी प्रावधान हैं, **मूल अधिकार नहीं**। सर्वोच्च न्यायालय ने एक वाद में निर्णय दिया था कि एम्स के सुपर स्पेशलिटी ब्लॉक में फ़ैकल्टी के पदों के लिए नियुक्ति में **प्रोन्नति में कोई आरक्षण प्रदान नहीं** किया जाएगा।
- **नियोजन और पद प्राप्त करने से सामाजिक भेदभाव की समाप्ति सुनिश्चित नहीं होती है।** अतः, इसे पिछड़ेपन की गणना करने के लिए एकमात्र मापदंड के रूप में प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।
- प्रोन्नति में आरक्षण **प्रशासन की दक्षता को हानि पहुंचा सकता है।**

अभी तक **प्रोन्नति प्रक्रिया में अस्पष्टता और अनिश्चितता विद्यमान है।** अतः एक **नये व्यापक कानून** को अधिनियमित किए जाने की आवश्यकता है।

2.5. खाप पंचायतें

(Khap Panchayats)

खाप पंचायतें क्या हैं?

- **खाप पंचायतें**, जिन्हें भारतीय कंगारू कोर्ट भी कहा जाता है, पारंपरिक सामाजिक संस्थाएं हैं। सामान्यतः ये **पुरुष प्रधान** संस्थाएँ होती हैं, जो ग्रामीण समुदायों या खाप से संबंधित विवाद के समाधान में संलग्न रहती हैं।
- वास्तव में ये **गैर-कानूनी संगठन** नहीं हैं, बल्कि प्राचीन सामाजिक संस्थाएं हैं। ये **नातेदारी की भावना या सांस्कृतिक सापेक्षवाद** पर आधारित होती हैं, जिससे इन्हें सुदृढ़ता प्राप्त होती है।
- ये **विधिक रूप से निर्वाचित ग्राम पंचायतों** से औपचारिक रूप से भिन्न होती हैं। इसके संगठन एवं नेता **अनिर्वाचित होते हैं और** इन्हें सामाजिक प्रभुत्व के आधार पर **चयनित** किया जाता है। ये लगभग सम्पूर्ण देश में विद्यमान हैं परन्तु राजस्थान, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अधिक प्रचलित हैं।

खाप क्या है?

यह जाति और भौगोलिक स्थिति के आधार पर संगठित **गांवों का समूह** होता है। खाप के गठन को उच्च जातियों द्वारा अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा को सुदृढ़ बनाने हेतु 14वीं शताब्दी में आरम्भ किया गया था। इसका मुख्य नियम यह होता है कि एक ही खाप के सभी लड़के और लड़कियां भाई- बहन की तरह माने जाएँगे।

इनके प्रभुत्व और लोकप्रियता का कारण:

सामाजिक कारण

- इनके द्वारा गांव में तीव्रता से बहुतायत में सामाजिक और कानूनी विवादों का समाधान किया जाता है। इनमें **छोटे झगड़ों से लेकर बड़े विवाद** तक शामिल होते हैं। गांव के लोग इन जाति आधारित पंचायतों पर विश्वास करते हैं क्योंकि सामान्यत: इनके द्वारा किसी मामले पर एक ही बैठक में निर्णय कर दिया जाता है, जबकि न्यायालयों में ऐसे मामले कई वर्षों तक चलते रहते हैं।
- अनेक मामलों में, विशेष रूप से अनेक भूमि विवादों में, **दस्तावेजी साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते हैं** इसलिए लोग न्यायालयों की तुलना में इन पंचायतों को अधिक वरीयता देते हैं।
- इन पंचायतों द्वारा प्रायः **महिला गर्भपात, मद्यपान, दहेज संबंधी समस्याओं का समाधान और शिक्षा को बढ़ावा देने जैसे सामाजिक मुद्दों** पर सकारात्मक निर्णय दिए गए हैं।

राजनीतिक कारण

- **लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित पंचायती राज संस्थानों की अंतर्निहित कमियों** और सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के समाधान में इनकी विफलता के कारण खाप पंचायतें शक्तिशाली बन गयी हैं।
- राजनेताओं की पूर्ण उदासीनता और वोट बैंक की राजनीति खाप पंचायतों को दंड से मुक्ति के साथ अपना प्रभुत्व स्थापित करने की अनुमति देती है। सरकार ने उनकी शक्ति को नियंत्रित करने के लिए कुछ विशेष कदम नहीं उठाया है।

खाप पंचायतों से संबंधित विवादास्पद मुद्दे

- **कंगारू कोर्ट -** खाप पंचायतें **संविधानेत्तर प्राधिकरणों के** रूप में कार्य करती हैं। वे बिना किसी दस्तावेजी साक्ष्यों के **मनमाने तरीके** से न्याय प्रदान करती हैं और उनके निर्णयों को न्यायालय में कोई विधिक मान्यता प्राप्त नहीं होती है।
- **प्रतिगामी और अप्रचलित -** उनके निर्णय प्राचीन रीति-रिवाजों और परम्पराओं पर आधारित होते हैं, जो प्रायः आधुनिक सामाजिक समस्याओं के लिए प्रतिगामी उपाय प्रतीत होते हैं।
- **व्यक्तिगत अधिकारों के विरुद्ध-** उनके निर्णय प्राय: मानवाधिकारों, मूल अधिकारों जैसे जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार, निजता का अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अबाध संचरण और संघ बनाने का अधिकार और शारीरिक पवित्रता (bodily integrity) के अधिकारों का उल्लंघन करते हैं।

VISION IAS

- **आपराधिक गतिविधियों को बढ़ावा देना- इन्होंने ऑनर किलिंग, जबरन विवाह, बाल विवाह, कन्या भ्रूण हत्या तथा व्यक्तियों एवं परिवारों के जाति-बहिष्कार** को बढ़ावा दिया है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार, 2014 और 2016 के मध्य भारत में ऑनर किलिंग से संबंधित **291 मामले** थे।
- **पितृसत्तात्मक संस्था -** खाप पंचायतों का दृष्टिकोण अत्यधिक पितृसत्तात्मक होता है। इस दृष्टिकोण का ही परिणाम है कि इनके द्वारा गांव की महिलाओं पर विशेष ड्रेस कोड, आवागमन, रोजगार विकल्प इत्यादि सहित दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों पर विभिन्न प्रतिबंधों को आरोपित किया जाता है। उदाहरण के लिए, उत्तर प्रदेश में कुछ खापों ने महिलाओं के पुरुषों के साथ संपर्कों को प्रतिबंधित करने के लिए सार्वजनिक रूप से **मोबाइल फोन के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाने का आदेश** दिया था।
    - **प्रेम विवाह को** खाप पंचायतों द्वारा उनके अधीन क्षेत्रों में कलंक माना जाता है, जो महिलाओं के **इच्छानुसार जीवन साथी के चयन के अधिकार** को सीमित करता है।

उच्चतम न्यायालय के हालिया निर्णय

- न्यायालय ने निर्णय दिया है कि खाप पंचायत या संगठनों द्वारा अंतरजातीय विवाह करने वाले वयस्क पुरुष और महिला के विरुद्ध किया गया कोई भी हमला "पूर्णतः गैर-कानूनी" है।
- खाप पंचायतों द्वारा किए जाने वाले इस प्रकार के हस्तक्षेप को रोकने के लिए **दिशा-निर्देशों का एक समुच्चय** भी निर्धारित किया गया।

अन्य न्यायिक निर्णय

- **लक्ष्मी कहवाहा बनाम राजस्थान राज्य वाद** में राजस्थान उच्च न्यायालय ने कहा कि जाति पंचायतों के पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। यह **किसी भी व्यक्ति पर जुर्माने का आरोपण या सामाजिक बहिष्कार** नहीं कर सकती है।
- **अरुमुगम सेवई बनाम तमिलनाडु राज्य वाद** में, उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि खाप **गैर-कानूनी हैं और उन्हें पूर्णतः समाप्त** किया जाना चाहिए।

उच्चतम न्यायालय के दिशा-निर्देश

- राज्य सरकारों द्वारा उन **जिलों, उपखंडों और/या गांवों की पहचान** करना, जहां **विगत पांच वर्षों** में ऑनर किलिंग की घटनाएं या खाप पंचायतों की सभा की सूचना प्राप्त हुई हो।
- अंतरजातीय या अंतरधार्मिक विवाह करने वाले युगल और उन क्षेत्रों में उनके परिवार के सदस्यों को भी **पूर्ण पुलिस सुरक्षा प्रदान** की जानी चाहिए और यदि आवश्यक हो तो उनकी सुरक्षा और खतरे को ध्यान में रखते हुए उन्हें उसी जिले के भीतर या अन्य कहीं एक सुरक्षित घर में स्थानांतरित किया जाना चाहिए।
- पुलिस द्वारा खाप पंचायत की बैठक की **वीडियो रिकॉर्डिंग** सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- दिशानिर्देशों का उल्लंघन करने या कानून के विपरीत किसी भी आदेश को पारित करने की स्थिति में इस प्रकार की **पंचायतों के प्रत्येक प्रतिभागी पर आपराधिक अभियोजन।**
- निर्देशों का अनुपालन करने में पुलिस या जिले के अन्य अधिकारी/अधिकारियों द्वारा विफल होने पर **दंड का प्रावधान** किया जाना चाहिए।
- राज्य और केंद्र सरकार को इस प्रकार की **हिंसा को रोकने के लिए सामाजिक पहलों के कार्यान्वयन और जागरूकता के प्रसार लिए कानून प्रवर्तन एजेंसियों को संवेदनशील बनाने** हेतु कार्य करना चाहिए।
- राज्य सरकारों को अंतरजातीय विवाह करने वाली दंपत्ति के उत्पीड़न और धमकी की याचिका/शिकायतें प्राप्त करने और उन्हें आवश्यक सहायता/सलाह एवं सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रत्येक जिले में **24 घंटे की हेल्पलाइन के साथ विशेष प्रकोष्ठों (special cells)** की स्थापना करनी चाहिए।
- युगलों की ऑनर किलिंग या हिंसा से संबंधित मामलों के लिए **फास्ट ट्रैक कोर्ट** स्थापित किए जाने चाहिए। मामले की सुनवाई अपराध को संज्ञान में लिए जाने की तारीख से **छह माह के भीतर** की जानी चाहिए।

आगे की राह

- अंतरधार्मिक या अंतरजातीय संबंधों में बाधा उत्पन्न करने वाली खापें इस तथ्य की पुष्टि करती हैं कि सामाजिक परिवेश अभी भी मध्यकालीन युग के प्रभाव में है। इस प्रकार की धारणाओं को केवल सामाजिक अभिवृत्ति में परिवर्तन के द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है।
- यह लोगों को संविधान तथा खाप निर्णय के प्रतिकूल प्रभावों के बारे में जागरूक बना कर किया जा सकता है। इसके लिए सभी प्रकार के मीडिया माध्यमों को संगठित कर उनका उपयोग **शैक्षणिक और जागरूकता अभियानों** के प्रसार के लिए किया जाना चाहिए।
- **कुछ विधायी उपाय किए जा सकते हैं-**
    - ऑनर किलिंग से निपटने के लिए **फास्ट ट्रैक कोर्ट** का गठन किया जाना;
    - विवाह के पंजीकरण की अवधि को कम करने के लिए **विशेष विवाह अधिनियम में संशोधन**;
    - अंतरजातीय विवाह करने वाले **युगल को पर्याप्त सुरक्षा** प्रदान करना।

VISION IAS

- "बेटी बचाओ बेटी पढाओ" जैसी **सरकारी पहलों** को समाज में लैंगिक समानता को बढ़ावा देने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जो इस प्रकार के स्व-नियुक्त न्यायालयों के प्रभाव को कम करेगा।

सरकार द्वारा उठाए गए कदम

- **'सम्मान एवं परंपरा के नाम पर अपराध निवारण विधेयक, 2010**
  - यह विधेयक राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा प्रस्तावित किया गया था;
  - अंतर जातीय या अंतरधार्मिक विवाह करने वाले युगलों के विरुद्ध अलोकप्रिय और सख्त आदेश पारित करने वाली ग्राम पंचायत की कोई भी सभा गैर-कानूनी होगी। यह युगलों को सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करता है।

विधि आयोग द्वारा खाप पंचायतों पर, विशेष रूप से ऑनर किलिंग पर रोक लगाने हेतु, 2 विधेयकों के मसौदे तैयार किए गए:

- गैरकानूनी सभाओं पर प्रतिबंध (वैवाहिक गठबंधन की स्वतंत्रता के साथ हस्तक्षेप का निषेध) विधेयक, 2011
- जीवन और स्वतंत्रता का संकट (संरक्षण, अभियोजन और अन्य उपाय) विधेयक , 2011
- ये दोनों विधेयक अभी भी प्रस्तावित हैं और अभी तक कोई ठोस विधायी सुधार नहीं किया गया है।
- " सम्मान एवं परम्परा के नाम पर अपराध निवारण विधेयक एवं वैवाहिक गठबंधन की स्वतंत्रता के साथ हस्तक्षेप का निषेध विधेयक, 2017 को राज्य सभा में निजी विधेयक के रूप में प्रस्तुत किया गया था।

2.6. अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान

(Minority Educational Institutions)

अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान (MEIs) क्या हैं?

इन संस्थानों की स्थापना अल्पसंख्यक समुदायों की **विशिष्ट संस्कृति एवं परंपरा को संरक्षित करने तथा प्रोत्साहन देने** हेतु की जाती है। अल्पसंख्यक समुदायों को **भाषायी अथवा धार्मिक समूहों** में वर्गीकृत किया जा सकता है।

मानदंड क्या हैं?

- NCMEI के द्वारा अनुच्छेद 30 के तहत शैक्षणिक संस्थानों को अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान हेतु कुछ **दिशा-निर्देश** जारी किए गये हैं।
- अल्पसंख्यक दर्जा प्राप्त करने हेतु संस्थान को प्रभावी रूप से दो शर्तों को पूर्ण करना होता है:
  - बोर्ड या ट्रस्ट के अधिकांश सदस्यों को अल्पसंख्यक समुदाय से संबंधित होना चाहिए।
  - इसे स्पष्ट रूप से घोषित करना चाहिए कि इसकी स्थापना अल्पसंख्यक समुदाय के हित के लिए की गई है।
- राज्य प्राधिकरणों ने भी समान मानदंड निर्धारित किए हैं।

संवैधानिक प्रावधान

भारतीय संविधान **मौलिक अधिकार के रूप में** शिक्षण संस्थानों की स्थापना और प्रशासन करने के अल्पसंख्यक वर्गों के अधिकार को मान्यता प्रदान करता है।

- **अनुच्छेद 29** अल्पसंख्यक-वर्गों के हितों के संरक्षण संबंधित है। इसमें यह उपबंध किया गया है कि भारत के राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के निवासी नागरिकों के किसी अनुभाग, जिसकी अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति है, को उसे बनाए रखने का अधिकार होगा।
- **अनुच्छेद 30** धर्म या भाषा के आधार पर सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि के शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन का अधिकार होगा। शिक्षण संस्थाओं को सहायता प्रदान करने में राज्य किसी शिक्षण संस्था के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक-वर्ग के प्रबंधन में है।

हालिया विवाद

- वर्ष 2016 में केंद्र सरकार ने उच्चतम न्यायालय में एक शपथ-पत्र दाखिल करते हुए कहा कि **किसी केंद्रीय विश्वविद्यालय को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान का दर्जा प्रदान नहीं किया जा सकता है।**
- उच्चतम न्यायालय के द्वारा **2006 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय** के विरुद्ध अपील की सुनवाई की जा रही रही थी जिसमें अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय (AMU) को प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थान का दर्जा निरस्त कर दिया गया।
- **कानून मंत्रालय** ने NCMEI के 2011 के उस निर्णय को निरस्त करने की अनुशंसा की है, जिसमें उसने जामिया मिलिया इस्लामिया को भी उसी आधार पर धार्मिक अल्पसंख्यक संस्थान के रूप में घोषित किया था।

शिक्षा संस्थानों को अल्पसंख्यक का दर्जा कौन प्रदान करता है?

- वर्तमान में **राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग (NCMEI)** संपूर्ण भारत में अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थानों के प्रमाणीकरण का विनियमन करता है। हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने भी इसकी शक्तियों को मान्यता दी है। कुछ राज्यों ने

VISION IAS

मान्यता एवं प्रमाणन के लिए **स्वयं के दिशानिर्देश** भी निर्धारित किए हैं।

- यह NCMEI अधिनियम, 2004 के तहत, मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा अधिसूचित **छः धार्मिक समुदायों** [मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, जोरास्ट्रियन (पारसी) तथा जैन] से सम्बद्धता के आधार पर शिक्षा संस्थानों को अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान करता है।
- इसकी स्थापना 2004 में संसद द्वारा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्था आयोग (NCMEI) अधिनियम के माध्यम से की गई। 2006 में NCMEI को किसी भी सक्षम प्राधिकारी के आदेश के विरुद्ध **अपील की शक्ति** भी प्रदान कर दी गई।

NCMEI के कार्य एवं शक्तियाँ

- यह एक **अर्ध-न्यायिक निकाय** है, जिसे **सिविल न्यायालय की शक्तियां प्राप्त** हैं। इसका **नेतृत्व एक अध्यक्ष के द्वारा** किया जाता है। उच्च न्यायालय का न्यायाधीश रह चुके किसी व्यक्ति को इसका अध्यक्ष बनाया जाता है तथा इसके तीन अन्य सदस्यों को केंद्र सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता है।
- आयोग 3 प्रकार के कार्यों अर्थात् **न्यायिक, परामर्शी** और **अनुशंसात्मक** दायित्वों का निर्वहन करता है।
- यह किसी विश्वविद्यालय की अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थान के साथ संबद्धता से सम्बंधित विवादों पर निर्णय करता है।
- इसे अल्पसंख्यक वर्गों के उनकी रुचि की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना एवं प्रशासन के अधिकार के उल्लंघन या उनसे वंचित किए जाने से संबंधित शिकायतों की जांच करने व स्वत: संज्ञान लेने की शक्ति प्राप्त है।
- अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित उनकी रुचि के **संस्थानों के अल्पसंख्यक दर्ज़े तथा चरित्र को प्रोत्साहित एवं संरक्षित करने के उपायों को निर्दिष्ट करता है।**
- यह संस्थानों द्वारा अनुदान की शर्तों का उल्लंघन करने पर उन्हें प्रदत्त अल्पसंख्यक दर्ज़े को निरस्त भी कर सकता है।
- आयोग के अधिकार को भाषायी अल्पसंख्यकों द्वारा स्थापित शिक्षण संस्थानों तक **विस्तारित नहीं** किया जा सकता है।

अल्पसंख्यक दर्ज़े के प्रावधान क्यों बरकरार रखा जाना चाहिए?

- धार्मिक तथा भाषायी अल्पसंख्यकों की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना का अधिकार, अनुच्छेद 30 (1) के तहत एक संवैधानिक अधिकार है।
- अनुच्छेद 26 (a) यह उपबंध करता है कि धार्मिक संप्रदाय **धार्मिक तथा पूर्त प्रयोजनों** के लिए संस्थाओं की स्थापना कर सकते हैं। अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी (AMU) और जामिया मिलिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी (JMIU) मुस्लिम युवाओं को शिक्षा प्रदान करके अल्पसंख्यक समुदाय के अंतर्गत सामाजिक परिवर्तन लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जिसे अनुच्छेद 26 (a) के तहत पूर्त प्रायोजन माना जा सकता है।
- **अनुच्छेद 38** राज्य को समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य असमानता समाप्त करने हेतु निर्देश देता है तथा AMU और JMIU जैसे अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान गुणवत्तायुक्त व औपचारिक शिक्षा प्रदान कर अल्पसंख्यकों के मध्य परिवर्तन लाने की भूमिका का निर्वहन करते हैं।
- 1967 के अज़ीज़ बाशा वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि विश्वविद्यालय अनुच्छेद 30 (1) में उल्लिखित "शैक्षणिक संस्थान" की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं। इस प्रकार, यह सरकार के लिए अनिवार्य हो जाता है कि वह इस प्रकार के अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों को विधि के माध्यम से मान्यता प्रदान करे।
- **केरल एजुकेशन बिल वाद** में उच्चतम न्यायालय ने राज्य की अल्पसंख्यक दर्ज़े को निरस्त करने और अल्पसंख्यकों को ऐसे संस्थानों की स्थापना एवं प्रबंधन के अधिकार से वंचित करने की शक्ति को सीमित कर दिया।

इस दर्ज़े को निरस्त क्यों किया जाना चाहिए?

- एक विश्वविद्यालय को अल्पसंख्यक संस्थान का दर्जा प्रदान नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका गठन केवल संसदीय अधिनियम के माध्यम से ही किया जा सकता है। चूंकि AMU और JMIU को एक अधिनियम के माध्यम से स्थापित किया गया है, इसलिए इन संस्थानों को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों (MEIs) के रूप में मान्यता प्रदान नहीं की जा सकती है।
- राज्यों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से वित्त पोषित विश्वविद्यालयों को अल्पसंख्यक संस्थान का दर्जा प्रदान नहीं किया जा सकता, क्योंकि इससे **अनुच्छेद 27** के साथ टकराव की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। अनुच्छेद 27 अनुसार राज्य द्वारा कर के रूप में एकत्रित धनराशि को किसी विशिष्ट धर्म या धार्मिक संप्रदाय की अभिवृद्धि या पोषण में व्यय **नहीं** किया जा सकता है।
- संसदीय अधिनियम के तहत स्थापित विश्वविद्यालयों को केंद्र सरकार की आरक्षण नीति का पालन करना होता है, परंतु AMU और JMIU **अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ा वर्गों को किसी प्रकार का आरक्षण प्रदान नहीं करते हैं**। ऐसे संस्थानों को प्रदत्त अल्पसंख्यक दर्जा असंवैधानिक तथा अवैध है।
- संविधान के **अनुच्छेद 15** में यह उपबंध किया गया है कि राज्य **धर्म के आधार पर विभेद नहीं करेगा** और संसद या राज्य द्वारा स्थापित किसी भी संस्था को अल्पसंख्यक दर्जा प्रदान करना इसका उल्लंघन होगा।

VISION IAS

- **1967 के अज़ीज़ बाशा वाद** में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि **AMU अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थान नहीं है** क्योंकि यह ब्रिटिश विधायिका द्वारा स्थापित किया गया था, न कि मुस्लिम समुदाय द्वारा।
- अनुच्छेद 30 (1) के तहत प्रदत्त अधिकार **असीमित अधिकार नहीं है** और यह **अनुच्छेद 29 (2)** के विरोधाभास में प्रतीत होता है। अनुच्छेद 29 यह उपबंध करता है कि राज्य द्वारा पोषित या राज्य-निधि से सहायता प्राप्त किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल जाति, भाषा, मूलवंश या धर्म के आधार पर वंचित नही किया जाएगा।"

अन्य संबंधित तथ्य

हाल ही में, मानव संसाधन मंत्रालय ने भाषायी आधार पर किसी शैक्षणिक संस्थान को अल्पसंख्यक दर्ज़ा प्रदान नहीं करने का निर्णय लिया है।

भाषाई अल्पसंख्यक संस्थानों (LMIs) से संबंधित मुद्दे

- संविधान के **अनुच्छेद 350B** के अंतर्गत नियुक्त भाषाई अल्पसंख्यक-वर्गों के लिए राष्ट्रीय आयुक्त (NCLM) को **NCMEI की तुलना में कम शक्ति प्रदान की गई है**।
- यह **केवल भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए उपबंधित रक्षोपायों से संबंधित विषयों का अन्वेषण** कर सकता है और अपने निष्कर्षों के आधार पर संसद को अनुशंसाएं प्रस्तुत कर सकता है।

अल्पसंख्यक दर्ज़े के तहत प्रदत्त विशेषाधिकार

- **अनुच्छेद 30** में यह उपबंध है कि राज्य द्वारा संपत्ति के अनिवार्य अर्जन के मामले में संस्था को उपयुक्त क्षतिपूर्ति प्रदान की जानी चाहिए।
- अनुच्छेद 15 के तहत अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान **आरक्षण नीति के दायरे से बाहर** हैं। हाल ही में, बॉम्बे उच्च न्यायालय ने अल्पसंख्यक शिक्षा संस्थानों के पक्ष में निर्णय देते हुए कहा कि इन्हे पिछड़े वर्गों के छात्रों के लिए सीट आरक्षित करने की आवश्यकता नहीं है।
- **शिक्षा का अधिकार अधिनियम (RTE) 2009** की धारा 12 के तहत आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) से संबंधित बच्चों के लिए 25% आरक्षण अनिवार्य है। यह अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों **पर लागू नहीं होता** है।
- 2002 के TMA पाई बनाम कर्नाटक राज्य वाद में,
  - उच्चतम न्यायालय ने अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों को एक पृथक, उचित, पारदर्शी तथा **योग्यता-आधारित प्रवेश प्रणाली** अपनाने की स्वीकृति प्रदान की।
  - ये अपनी एक पृथक शुल्क संरचना को अपना सकते है, परंतु केपिटेशन फी लेने की अनुमति नहीं दी गयी है।

इस विवाद से सम्बंधित इतिहास

अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

- AMU की स्थापना वर्ष 1875 में मोहम्मडन एंग्लो ओरिएंटल कॉलेज के रूप में हुई थी। 1920 में भारतीय विधायी परिषद के एक अधिनियम द्वारा इसे सांविधिक दर्जा प्रदान किया गया।
- **1967 के अज़ीज़ बाशा वाद** में उच्चतम न्यायालय ने तर्क दिया कि AMU अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान नहीं है क्योंकि इसकी स्थापना ब्रिटिश विधायिका द्वारा की गई थी , न कि मुस्लिम समुदाय द्वारा।
- **1981 में** संसद ने अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी (AMU) अधिनियम में संशोधन द्वारा इसके अल्पसंख्यक दर्जे को पुनः बहाल किया।
- 2006 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने 1981 के संशोधन अधिनियम को इस आधार पर निरस्त कर दिया कि यह संविधान से अधिकारातीत (Ultra Vires) है।
- यह मामला अभी उच्चतम न्यायालय के विचाराधीन है।

VISION IAS

जामिया मिलिया इस्लामिया यूनिवर्सिटी

- इसकी स्थापना वर्ष 1920 में खिलाफत आन्दोलन के दौरान हुई थी तथा इसे 1988 में संसद द्वारा सांविधिक दर्जा प्रदान किया गया था।
- 2011 में सरकार ने इसे अल्पसंख्यक संस्थान का दर्जा प्रदान किया।

अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों (MEIs) द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियाँ:

- अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों को नाममात्र की **स्वायत्तता प्राप्त है** क्योंकि वे सरकार द्वारा धन प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए, भारत का राष्ट्रपति इन विश्वविद्यालयों के किसी भी निर्णय को अमान्य घोषित कर सकता है, जबकि उसे निजी विश्वविद्यालयों के संबंध में ऐसी कोई भी शक्ति प्राप्त नहीं है।
- वास्तविक मुद्दा इन **अल्पसंख्यक संस्थानों में व्याप्त कुप्रशासन** है। कई गैर-सहायता प्राप्त निजी अल्पसंख्यक संस्थान अव्यवस्थित हैं और कुप्रबंधन, भ्रष्टाचार इत्यादि से पीड़ित हैं। उदाहरणार्थ अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटें गैर-अल्पसंख्यक उम्मीदवारों को बेच दी जाती हैं।
- शिक्षा का अधिकार (RTE) अधिनियम के दायित्वों से प्राप्त छूट ने **संस्थानों के मध्य प्रतिफल न देते हुए अधिक लाभ अर्जित करने की प्रवृत्ति** (rent-seeking behaviour) को बढ़ावा दिया है। अल्पसंख्यक समुदायों के गरीब वर्गों के बच्चे ऐसे संस्थानों में प्रवेश लेने में सक्षम नहीं हो पाते हैं जिससे इन संस्थानों की स्थापना का मूल उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है।
- राष्ट्रीय स्तर की प्रवेश परीक्षाओं जैसे **राष्ट्रीय पात्रता व प्रवेश परीक्षा (NEET)** तथा साझा काउंसलिंग ने अब अल्पसंख्यक संस्थानों द्वारा अपने **पसंदीदा छात्रों को प्रवेश देने के अधिकार** को समाप्त कर दिया है।
- कई स्कूलों ने RTE अधिनियम, 2009 के तहत दायित्वों से बचने के लिए जाली (fake) अल्पसंख्यक प्रमाणपत्र की सहायता ली है।

आगे की राह

- **केवल तकनीकी कमियों** के चलते अल्पसंख्यक दर्ज़े को निरस्त नहीं किया जाना चाहिए। आख़िरकार, अल्पसंख्यक इन संस्थाओं के निर्माण में अपने संसाधन, सम्पत्तियों और समय का निवेश तो करते ही हैं, साथ ही में इनमें 50% गैर-अल्पसंख्यक बच्चों को भी शिक्षा प्रदान करते हैं।
- **वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त अस्पष्टताओं तथा अंतरालों** को समाप्त किया जाना चाहिए ताकि अल्पसंख्यक दर्ज़े का उपयोग कल्याण एवं न्यायसंगत शिक्षा की कीमत पर निजी हितों के लिए न किया जा सके।
- ऐसे विश्वविद्यालयों को पाठ्यक्रम निर्धारण तथा संचालन में **अधिक स्वायत्तता** प्रदान की जानी चाहिए।
- न्यायालय ने निरंतर यह कहा है कि **सरकारी सहायता प्राप्त करने का अर्थ अल्पसंख्यक चरित्र का त्याग करना नहीं है**। अतः सरकार अन्य विश्वविद्यालयों के समान ही अल्पसंख्यक संस्थानों को भी वित्त पोषण प्रदान कर सकती है।
- **शिक्षा का अधिकार (RTE) से सभी अल्पसंख्यक संस्थानों को छूट देने** के उच्चतम न्यायालय के निर्णय की समीक्षा की जानी चाहिए।
- **भाषायी अल्पसंख्यकों के लिए पृथक मानदंड विकसित किए जाने चाहिए** क्योंकि NCMEI द्वारा धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए तैयार मानदंडों को भाषाई अल्पसंख्यकों पर अविवेकपूर्ण रूप से लागू नहीं किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, भाषायी अल्पसंख्यक संस्थानों में शिक्षा उन्हीं की भाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए। वर्तमान में **महाराष्ट्र** ही एकमात्र ऐसा राज्य है जहां इस प्रकार के मानदंड की व्यवस्था है।

2.7 राष्ट्रगान संबंधी मुद्दा

(Issue on National Anthem)

सुर्ख़ियों में क्यों?

जनवरी 2018 में, सर्वोच्च न्यायालय ने नवंबर 2016 में दिए गए अपने एक निर्णय को परिवर्तित करते हुए सिनेमाघरों में फिल्म आरंभ होने से पूर्व राष्ट्रगान बजाने को वैकल्पिक बना दिया गया है।

पृष्ठभूमि

- **श्याम नारायण चौकसे बनाम भारत संघ, 2016 मामले** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि सभी सिनेमाघरों में राष्ट्रगान बजाया जाना अनिवार्य है। स्क्रीन पर भारतीय ध्वज की छवि दिखाई जानी चाहिए तथा इस दौरान दिव्यांग जनों को छोड़कर सभी लोगों को खड़े हो जाना चाहिए। साथ ही लोगों के प्रवेश या बाहर जाने को रोकने हेतु दरवाजे बंद होने चाहिए।

VISION IAS

- केरल के एक फिल्म क्लब ने सर्वोच्च न्यायालय के उपर्युक्त निर्णय को चुनौती दी थी, जिसमें तर्क दिया गया था कि सिनेमाघरों को राष्ट्रगान बजाने और लोगों को अपने स्थान पर खड़े होने के लिए बाध्य करना, लोगों के मूल अधिकारों का उल्लंघन करता है तथा "सम्मान के बाहरी दिखावे" और "सम्मान की वास्तविक भावना" के मध्य मिथ्या समानता स्थापित करता है।
- इससे पूर्व **बिजोय एम्मानुएल बनाम केरल राज्य, 1986 के मामले** में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि जब राष्ट्रगान गाया जा रहा हो तब किसी व्यक्ति के द्वारा इसके सम्मान में अपने स्थान पर खड़े होना परन्तु उसके द्वारा इसे गाया नहीं जाना, राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 की धारा 3 का उल्लंघन नहीं माना जाएगा।

राष्ट्रगान के लिए संवैधानिक और वैधानिक प्रावधान

- **संविधान का अनुच्छेद 51A -** भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे।
- **राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971** संविधान, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान के अपमान के मामलों से संबंधित है। यह इन प्रतीकों का अपमान करने के लिए दंड का प्रावधान करता है।
    - अधिनियम की **धारा 3** के अनुसार यदि कोई व्यक्ति जानबूझकर भारत के राष्ट्रगान के **गायन से रोकता है** या गायन कर रही किसी सभा में व्यवधान डालता है तो उसे तीन वर्ष तक के कारावास या जुर्माने या दोनों से दंडित किया जाएगा।
    - इस अधिनियम की कोई भी धारा या भारतीय दंड संहिता, राष्ट्रगान बजाए जाने पर नागरिकों के लिए अपने स्थान पर खड़ा होना अनिवार्य नहीं बनाती है।
- **2015 में जारी गृह मंत्रालय** का एक आदेश राष्ट्रगान के बजाये जाने के संदर्भ में एक विस्तृत दिशानिर्देश प्रदान करता है।

संबंधित तथ्य

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व के उस निर्णय को परिवर्तित कर दिया है जिसमें सिनेमाघरों में फिल्म के आरंभ होने से पूर्व राष्ट्रगान बजाना और दर्शकों का अपने स्थान पर खड़े होना अनिवार्य बना दिया गया था। इस सन्दर्भ में सुझाव देने हेतु नियुक्त समिति की रिपोर्ट के पश्चात् इस मुद्दे पर और स्पष्टता आएगी।

- निर्णय के पश्चात् अब सिनेमाघरों को यह चुनने का अधिकार है कि वे राष्ट्रगान को बजाएँ अथवा नहीं। यदि यह बजाया जाता है तो दर्शकों का अपने स्थान पर खड़ा होना अनिवार्य होगा।
- परन्तु दिव्यांग जनों पर यह लागू नहीं होगा, उन्हें इससे छूट प्राप्त होगी।

विश्लेषण

एक नागरिक के लिए अधिकार और कर्त्तव्य दोनों आवश्यक है अतः संविधान में मूल अधिकारों और मूल कर्तव्यों को शामिल किया गया है।

प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह **संविधान में अंतर्निहित आदर्शों** का पालन करे और राष्ट्र गान एवं राष्ट्र ध्वज का आदर करे। यह नागरिकों की राष्ट्रवादी चेतना को भी बढ़ावा देता है। हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय के हालिया निर्णय की अपनी अन्य विशेषताएं भी हैं-

- **राष्ट्रगान के बजाये जाने को विवेकाधीन बनाता है, लेकिन इसका सम्मान करना अनिवार्य बनाता है।** यह निर्धारित करता है कि जब भी राष्ट्रगान बजाया जाए तब दर्शकों को (रोगी, दिव्यांग जन आदि के साथ-साथ नागरिकों के कुछ छूट-प्राप्त वर्गों को छोड़कर) इसके प्रति सम्मान में खड़े होना अनिवार्य है।
- **यह पूर्व के निर्णय की अस्पष्टता को समाप्त करता है।** पूर्व का निर्णय सिनेमाघरों पर लागू होता था, मनोरंजन के अन्य रूपों जैसे- नृत्य कार्यक्रमों, कॉमेडी शो आदि पर लागू नहीं होता था।
- **केवल सिनेमाघरों में ही बजाये जाने से राष्ट्रगान को महत्व नहीं मिलेगा** क्योंकि राष्ट्रगान में भावनाएं, देश के लिए गर्व और गायन सम्मिलित होते हैं तथा इसका सम्मान करना एक भावनात्मक निर्णय होता है। विशेषकर तब जब कोई व्यक्ति गौरवान्वित, आशान्वित और आनंदित महसूस करता है। इस प्रकार, इसका खेल के क्षेत्र में बजाया जाना तो औचित्यपूर्ण है किन्तु सिनेमाघरों में यह आवश्यक नहीं है।
- **देशभक्ति को कानून के भय से प्रदर्शित नहीं करवाया जाना चाहिए,** क्योंकि मूल्यों को अंतर्निविष्ट किया जाता है न की आरोपित। न्यायालय द्वारा अधिदेशित देशभक्ति में प्रतीकात्मकता अधिक होती है। ऐसे मुद्दे जिन पर प्राथमिकता से ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है वो कर अपवंचन, सड़कों पर गंदगी आदि से सम्बंधित वास्तविक मुद्दे हैं जिनसे देशभक्ति विलुप्त होती दिखाई दे रही है। इसके अतिरिक्त, भारत को देशभक्ति की संस्कृति की आवश्यकता है न कि संस्कृति के देशभक्तिकरण की।

VISION IAS

- **हमारी लोकतांत्रिक परिपक्वता के मूल्य-** एक परिपक्व लोकतंत्र में नागरिकों की देशभक्ति को प्रदर्शित एवं प्रसारित करने के अवसर या तरीके के लिए न्यायिक निर्देशन या किसी विशेष बल की आवश्यकता नहीं होती है।
- **कानून और व्यवस्था संबंधी मुद्दे-** इन दिशानिर्देशों के कारण सिनेमाघरों में यदि कोई राष्ट्रगान के लिए खड़ा नहीं होता है (दिव्यांगजन या विदेशी नागरिक होने के कारण) तो उसके प्रति लोगों द्वारा की जाने वाली हिंसा के कई मामले देखे गए हैं।

आगे की राह

- केंद्र सरकार शीघ्र ही 12 सदस्यीय अंतर-मंत्रालयी समिति की अनुशंसाओं के आधार पर राष्ट्रगान के सम्मानपूर्वक गायन के लिए अवसर, परिस्थितियों और कार्यक्रमों के संदर्भ में नए नियम जारी करेगी। उक्त समिति राष्ट्रीय गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 में किसी भी आवश्यक संशोधन की आवश्यकता की भी जांच करेगी ताकि राष्ट्रगान के सम्मान के अर्थ को स्पष्ट किया जा सके। अगली कार्यवाही तक न्यायालय का वर्तमान आदेश प्रभावी रहेगा।
- केवल एक अच्छा मनुष्य और एक अच्छा नागरिक ही एक सच्चा देशभक्त हो सकता है। इस प्रकार, किसी भी सभ्य समाज का ध्यान अपने देशवासियों को देशभक्त बनने के लिए बाध्य करने के स्थान पर उनके चरित्र निर्माण पर होना चाहिए।

3. संसद/ राज्य विधायिका एवं कार्यपालिका के कार्य

(Functioning of Parliament/State Legislature and Executive)

3.1. संसदीय कार्यवाही से संबंधित मुद्दे

(Issues in Parliamentary functioning)

3.1.1. सचेतक (व्हिप)

(WHIP)

सुर्खियों में क्यों?

हाल ही में, राजनीतिक पार्टियों द्वारा अनेक मुद्दों पर सचेतक जारी किए जाने पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया है।

संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में सचेतक (व्हिप)

- संयुक्त राज्य अमेरिका में, पार्टी के सचेतक (व्हिप) का कार्य, यह पता लगाना होता है कि विधेयक के पक्ष में कितने विधायक हैं और कितने इसके विपक्ष में — एवं जहाँ तक संभव हो, उन्हें इस मुद्दे पर पार्टी की विचारधारा के अनुसार मतदान करने के लिए सहमत करना।
- ब्रिटेन में, कुछ सचेतकों के उल्लंघन को गंभीरतापूर्वक लिया जाता है—कभी-कभी इसके परिणामस्वरूप सदस्य को पार्टी से निष्कासित कर दिया जाता है। इस प्रकार का सदस्य पार्टी द्वारा पुन: स्वीकार किए जाने तक संसद में स्वतंत्र सदस्य के रूप में बना रह सकता है।

सचेतक (व्हिप) क्या है?

- प्रत्येक राजनीतिक पार्टी का अपना सचेतक (व्हिप) होता है, जिसे पार्टी द्वारा सदन के पटल के सहायक नेता के रूप में नियुक्त किया जाता है।
- अपनी पार्टी के सदस्यों की अधिक संख्या में उपस्थिति सुनिश्चित करना एवं किसी विशेष मुद्दे के पक्ष या विपक्ष में उनका समर्थन प्राप्त करना, उसका उत्तरदायित्व होता है।
- वह पार्टी के नेता का निर्णय सदस्यों को एवं पार्टी के सदस्यों की राय पार्टी के नेता तक पहुंचाता है।
- सदस्यों से सचेतक द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करने की अपेक्षा की जाती है। इसके अनुपालन में विफल रहने पर पार्टी की सदस्यता हेतु अयोग्यता या दल-बदल विरोधी कानून के अंतर्गत पार्टी से निष्कासन जैसी अनुशासनात्मक कार्रवाईयाँ की जा सकती हैं।
- भारत में सचेतक के पद का उल्लेख न तो संविधान में, न ही सदन के नियमों में किया गया है और न ही संसदीय कानून में किया गया है।
- यह संसदीय सरकार के कन्वेंशन पर आधारित है। भारत में सचेतक की अवधारणा औपनिवेशिक ब्रिटिश शासन से ली गई थी।
- 1985 से अब तक कुल 19 ऐसे मामले सामने आए हैं जहाँ सचेतक की अवज्ञा करने के कारण सांसदों को अपनी सदस्यता खोनी पड़ी।

समस्या

- **संवैधानिक दर्शन के विरुद्ध:** सचेतक दल को सशक्त बनाकर एवं निर्वाचित प्रतिनिधियों तथा उनके निर्वाचन क्षेत्रों के मध्य संबंध को कमजोर करके निर्वाचित प्रतिनिधि के सिद्धांत का उल्लंघन करता है और साथ ही लोकतांत्रिक भावना को कमजोर करता है।
- यह विभिन्न मुद्दों पर **'बाध्य सर्वसम्मति'** बनाता है क्योंकि दल के सदस्यों के लिए दल के निर्णय का अनुसरण करना अनिवार्य होता है।
- **सहभागितापूर्ण अभिशासन को कमजोर करना:** 90% मुद्दों पर दलों द्वारा सचेतक जारी किए जाते हैं, जिससे दलों के सदस्यों की निजी विचारों या अपने निर्वाचन क्षेत्र के लोगों के विचारों को प्रस्तुत करने की क्षमता सीमित हो जाती है।
- **चर्चाओं की निम्न गुणवत्ता:** सचेतक प्रणाली विचार-विमर्श की प्रक्रिया को हाशिए पर रखकर संसदीय लोकतंत्र का उपहास करती है क्योंकि सचेतक विधि-निर्माताओं को महत्वपूर्ण संवैधानिक मुद्दों पर दल के विचार से असहमत होने की अनुमति नहीं देते हैं।
- दल-बदल कानून के साथ सचेतक प्रणाली ने संसद/राज्य विधान सभाओं के पटल पर सांसद/विधायक केवल गणना तक सीमित कर दिया है और यह उन्हें प्रमुख मुद्दों पर अपने निर्णयों का प्रयोग करने से रोकती है।

VISION IAS

- **दल के आंतरिक लोकतंत्र पर प्रतिबंध:** सदस्यों को अपने व्यक्तिगत विचारों को व्यक्त करने की अनुमति नहीं होती है जिससे दल के अंदर वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रभावित होती है।
- **तानाशाही शक्ति:** राजनीतिक दल, हाई कमान द्वारा स्वैच्छिक और अलोकतांत्रिक पद्धति से प्रस्तावित अनुचित नीतियों, खराब नेताओं और जन विरोधी अधिनियमों का विरोध करने की सांसदों/विधायकों की स्वतंत्रता को बाधित करते हैं।

सचेतक के प्रकार

- एक पंक्ति वाला सचेतक गैर-बाध्यकारी होता है। यह मतदान के लिए सदस्यों को सूचित करता है।
- दो पंक्ति वाला सचेतक मतदान के लिए सदन में उपस्थिति को अनिवार्य बनाता है।
- तीन पंक्ति वाला सचेतक मतदान के दौरान सदन में उपस्थित रहने और दल के विचार के अनुसार मतदान करने के लिए एक स्पष्ट निदेश देता है। इस सचेतक का उल्लंघन करने पर एक सांसद को सदन से निष्कासित किया जा सकता है।

सचेतक का महत्व

- **सरकार की स्थिरता:** ऐसा संभव है कि संसद के सभी सदस्यों के दृष्टिकोण भिन्न हों, चाहे उनकी किसी भी पार्टी से संबद्धता हो (यहाँ तक कि ये दृष्टिकोण संबंधित पार्टी के नेतृत्व के दृष्टिकोण से भी भिन्न हो सकते हैं)। ऐसे मामले में, वह मतदान के समय पार्टी के दृष्टिकोण का उलंघन कर सकता/सकती है।
- महत्वपूर्ण मुद्दों पर व्यापक चर्चा के लिए संसद में **उपस्थिति सुनिश्चित करना।**

आगे की राह

- राजनीतिक रूप से आम सहमति निर्मित करने की आवश्यकता है, ताकि संसद में व्यक्तिगत सदस्य के लिए राजनीतिक और नीतिगत अभिव्यक्ति के अवसरों का विस्तार किया जा सके। यह कार्य कई रूपों में किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, सचेतक जारी किया जाना केवल ऐसे विधेयकों तक सीमित किया जा सकता है जो सरकार के अस्तित्व के लिए खतरा बन सकते हैं, उदाहरण स्वरूप धन विधेयक या अविश्वास प्रस्ताव।
- **विधायी कार्रवाई:** संसद को एक अधिनियम के माध्यम यह सुनिश्चित करने के लिए दल-बदल कानून में संशोधन करना चाहिए कि सचेतक उन सामान्य कानूनों पर लागू नहीं होगा जो सरकार के अस्तित्व के लिए खतरा उत्पन्न नहीं करते हैं।
- दल के भीतर लोकतंत्र (जिसे परिवारवाद और कुलीनतंत्र ने समाप्त कर दिया है) को बढ़ावा देने के लिए राजनीतिक दलों में आंतरिक स्तर पर निर्वाचन के नियमों को स्थापित करना।
- सरकार द्वारा देश में ऐसे मुद्दों पर व्यापक बहस आयोजित की जानी चाहिए। यह दीर्घकाल में लाभदायक जन भागीदारी को प्रोत्साहित करेगी।

3.1.2. दल-बदल विरोधी कानून से संबंधित मुद्दे

(Issues in Anti-Defection Law)

दल-बदल विरोधी कानून क्या है?

- 1985 में 52 वें संविधान संशोधन द्वारा संविधान में दसवीं अनुसूची को अंतःस्थापित किया गया। इस अनुसूची के तहत विधायिका के सदस्यों को दल-बदल के आधार पर अयोग्य घोषित किए जाने की प्रक्रिया को निर्धारित किया गया है। इस कानून के निर्माण का मुख्य उद्देश्य "राजनीतिक दल-बदल की बुराई" का मुकाबला करना था।
- कानून अयोग्यता के लिए निम्नलिखित आधार प्रदान करता है:
    - किसी राजनीतिक दल से संबंधित संसद या राज्य विधानमंडल के सदस्य को दल-बदल का दोषी माना जाता है यदि उसने स्वेच्छा से अपने राजनीतिक दल की सदस्यता त्याग दी हो, या उसने सदन में पार्टी नेतृत्व के निर्देशों के विरुद्ध मतदान किया हो अथवा बिना किसी पूर्व अनुमति के मतदान से विरत रहा हो और ऐसे मतदान या व्यवहार के लिए व्यवहार की तिथि से 15 दिनों के भीतर दल द्वारा उसे माफ़ नहीं किया गया हो।
    - चुनाव के पश्चात कोई स्वतंत्र उम्मीदवार किसी दल में शामिल हो गया हो।
    - एक मनोनीत सदस्य सांसद/विधायक बनने के छह महीने बाद किसी दल में शामिल हो गया हो।
- कानून में कुछ अपवाद भी निर्धारित किये गये हैं:
    - लोक सभा अध्यक्ष या राज्यसभा के सभापति के रूप में निर्वाचित कोई भी व्यक्ति अपने दल से इस्तीफा दे सकता है और यदि वह उस पद को छोड़ देता है तो दल में पुनः शामिल हो सकता है, जैसाकि ब्रिटेन में भी प्रचलित है।
    - यदि किसी दल के कम से कम दो तिहाई विधायक किसी दूसरे दल में विलय के लिए मतदान करते हैं तो एक दल का दूसरे दल में विलय किया जा सकता है।
    - प्रारंभ में इसमें दलों के विभाजन हेतु अनुमति थी किन्तु अब इसे अवैध घोषित कर दिया गया है।

VISION IAS

दल बदल विरोधी कानून का महत्व

- दलों के प्रति निष्ठा में परिवर्तन को रोककर सरकार को स्थिरता प्रदान करता है।
- यह सुनिश्चित करता है कि दल के समर्थन से और दल के घोषणापत्र के आधार पर निर्वाचित उम्मीदवार दल की नीतियों के प्रति वफादार रहे।
- यह दलीय अनुशासन को बढ़ावा देता है।
- यह दल-बदल के कारण लोगों के विश्वास का उल्लंघन होने से रोकता है।

दल-बदल कानून से संबंधित मुद्दे

- **विधायिका के सदस्यों के वाक-स्वतन्त्रता के अधिकार को कम करना :** यह सांसदों को एक विचारशील विधि निर्माता से घटाकर केवल एक विधेयक को पारित करने के लिए आवश्यक संख्या के समान दर्जा प्रदान करता है। हालांकि, **किहोतो होलोहान वाद** में दिए गए निर्णय में, सर्वोच्च न्यायालय ने निर्धारित किया है कि 'यह विधि किसी भी अधिकार या स्वतंत्रता, या संसदीय लोकतंत्र के मूल ढांचे का उल्लंघन नहीं करती है'।
- **लोकसभा अध्यक्ष की भूमिका**: इस कानून के अनुसार लोकसभा अध्यक्ष का निर्णय अंतिम है और इसकी न्यायिक समीक्षा नहीं की जा सकती है। हालांकि, उच्चतम न्यायालय द्वारा इस संबंध में निर्धारित किया गया है कि अंतिम निर्णय उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में अपील के अधीन है।
- **दल से निष्कासित होने के पश्चात की जाने वाली कार्यवाही के संबंध में स्पष्टता का अभाव :** यह अस्पष्ट है कि अपने पुराने राजनीतिक दल द्वारा निष्कासित होने के पश्चात यदि कोई सदस्य किसी अन्य दल में शामिल होता है तो यह स्वेच्छा से सदस्यता त्याग माना जाएगा अथवा नहीं।
- **केवल चुनाव-पूर्व गठबंधन के लिए प्रासंगिकता:** यद्यपि इस तर्क को कि कोई प्रतिनिधि अपने 'दल के कार्यक्रम' के साथ चुनाव जीता है, 'चुनाव-पूर्व गठबंधनों' के लिए भी विस्तारित किया जा सकता है; किन्तु जब गठबंधन चुनाव के पश्चात गठित होता है तो अस्थिरता का मुद्दा फिर भी बना रहता है।
- **निरंकुश निर्णय**: एक सदस्य पार्टी व्हिप के कारण अपने वास्तविक विश्वास या मतदाताओं के हितों को व्यक्त करने में असमर्थ हो सकता है। यह परिस्थिति प्रत्येक विधेयक में हो सकती है, भले ही प्रस्ताव अविश्वास के लिए हो या न हो।
- **उत्तरदायित्व को कम करता है:** संसद सदस्यों को दल बदलने से रोकना, संसद और लोगों के प्रति सरकार के उत्तरदायित्व को कम कर देता है।

दल-बदल से संबंधित विभिन्न आयोगों की अनुशंसाएँ:

चुनाव सुधारों से संबंधित दिनेश गोस्वामी समिति	• अयोग्यता उन मामलों तक ही सीमित होनी चाहिए जहां (a) एक सदस्य स्वैच्छिक रूप से अपने राजनीतिक दल की सदस्यता का त्याग करता है, (b) किसी विश्वास प्रस्ताव अथवा अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान के दौरान कोई सदस्य मतदान से विरत रहता है, या पार्टी व्हिप के निर्देश के विपरीत मतदान करता है। • अयोग्यता का मुद्दा चुनाव आयोग की सलाह पर राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा निर्धारित किया जाना चाहिए।
विधि आयोग (170वीं रिपोर्ट,1999)	• विभाजन और विलय के आधार पर अयोग्यता से छूट प्रदान करने वाले प्रावधानों को समाप्त किया जाना चाहिए । • चुनाव-पूर्व गठित चुनावी मोर्चों को दल-बदल विरोधी कानून के तहत राजनीतिक दलों के रूप में माना जाना चाहिए। • राजनीतिक दलों को व्हिप जारी करने को केवल उन परिस्थितियों तक सीमित रखना चाहिए जब सरकार संकट की स्थिति में हो।
चुनाव आयोग	• दसवीं अनुसूची के तहत राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा चुनाव आयोग की बाध्यकारी सलाह पर निर्णय दिए जाने चाहिए।
संविधान समीक्षा आयोग (2002)	• दल-बदल के दोषियों को शेष अवधि के लिए किसी सार्वजनिक कार्यालय या किसी भी लाभकारी राजनीतिक पद को ग्रहण करने से प्रतिबंधित किया जाना चाहिए। • सरकार गिराने हेतु दल-बदल के दोषी किसी व्यक्ति द्वारा दिए गए मत को अवैध माना जाना चाहिए।

3.1.3. संसदीय सत्र

(Parliamentary Sessions)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- हाल ही में संपन्न बजट सत्र भारतीय संसद के इतिहास में सबसे कम उत्पादक सत्रों में से एक था।

पृष्ठभूमि

- परंपरा के अनुसार, एक वर्ष में संसद के तीन सत्रों का आयोजन किया जाता है: **वर्ष के आरम्भ में आयोजित होने वाला बजट सत्र, तीन सप्ताह का मानसून सत्र (जुलाई-अगस्त) और शीतकालीन सत्र (नवंबर-दिसंबर)।**
- प्रत्येक सत्र के आयोजन की तिथियों को कम से कम 15 दिन पूर्व घोषित किया जाता है ताकि सदस्यों को अपने प्रश्न प्रस्तुत करने और इन पर संसदीय कार्यवाहियों हेतु नोटिस देने का समय मिल सके।
- संविधान में विशिष्ट रूप से ऐसा कोई उपबंध नहीं किया गया है जिसमें बताया गया हो कि संसद की बैठक कब या कितने दिनों में होनी चाहिए। हालांकि, संविधान के **अनुच्छेद 85** में उपबंध है कि **दो संसदीय सत्रों के मध्य छः महीने से अधिक का अंतराल नहीं होना चाहिए।** यही राज्य विधायिकाओं पर भी लागू होता है।
- राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सलाह पर कार्य करते हुए संसद के सत्र को "ऐसे समय और स्थान पर आहूत कर सकता है जिसे वह उचित समझे"। अतः, संसद के सत्र को आहूत करना सरकार पर निर्भर होता है।
- व्यवधानों के कारण होने वाले स्थगनों सहित, विभिन्न कारणों के चलते संसद की बैठकें 120 दिन प्रतिवर्ष से घटकर 65-70 दिन प्रतिवर्ष हो गयी हैं।
- राज्य विधानसभाओं की कार्यप्रणाली भी एक गंभीर स्थिति प्रदर्शित करती है। पिछले पाँच वर्षों में 20 विधानसभाओं के आँकड़े इंगित करते हैं कि उनकी एक वर्ष में औसतन मात्र 29 दिनों के लिए ही बैठकें हुईं।

संसद के व्यापक कार्य

- **विधायी उत्तरदायित्व:** संसद का एक महत्वपूर्ण कार्य यह सुनिश्चित करना है कि कानून और नीतियां लोगों की इच्छाओं और हितों को प्रतिबिम्बित करें।
- **पर्यवेक्षण उत्तरदायित्व:** यह सुनिश्चित करने के लिए कि कार्यपालिका (अर्थात् सरकार) अपने कर्तव्यों का संतोषजनक रूप से निर्वहन कर रही है।
- **प्रतिनिधि उत्तरदायित्व:** अपने निर्वाचन क्षेत्र के लोगों के विचारों और आकांक्षाओं का संसद में प्रतिनिधित्व करना।
- **सार्वजनिक धन से सम्बंधित उत्तरदायित्व:** सरकार द्वारा प्रस्तावित राजस्व और व्यय का अनुमोदन एवं पर्यवेक्षण करना।

संसद सत्र महत्वपूर्ण क्यों है?

- **लोकतांत्रिक चर्चाओं के लिए मंच-** कानून का निर्माण संसदीय सत्रों पर निर्भर होता है। ये सत्र राष्ट्रीय मुद्दों पर लोकतांत्रिक बहस और चर्चाओं हेतु भी उत्तरदायी होते हैं।
- **कार्यपालिका की जवाबदेही-** कार्यपालिका विभिन्न **संसदीय उपायों जैसे अविश्वास प्रस्ताव, स्थगन प्रस्ताव और अभिभाषण पर चर्चा** के माध्यम से विधायिका के प्रति उत्तरदायी होती है।

संसद की भूमिका को प्रभावित करने वाले कारक

- 1985 में दल-बदल कानून पारित हुआ जिसने सांसदों को संसद में अपने कार्य के लिए पहले से तैयारी करने के महत्व को कम कर दिया है क्योंकि इस कानून के पारित होने के बाद उन्हें केवल दल के सचेतक पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है अन्यथा संसद में सदस्यता खोने का खतरा रहता है।
- सांसदों के पास रिसर्च स्टाफ नहीं होता है और ना ही संसद का पुस्तकालय उन्हें पर्याप्त शोध सहायता प्रदान करता है।
- गठबंधन की राजनीति के विकास ने अंतर-दलीय कार्य पद्धति के प्रबंधन को और अधिक कठिन बना दिया है।

संसद का सीधा प्रसारण आरम्भ होने के कारण मुद्दों पर अधिक संवाद करने और चर्चाओं में बढ़-चढ़ कर भाग लेने के लिए सांसदों के समूहों का प्रोत्साहन बढ़ा है। ऐसा इसलिए क्योंकि वे जानते हैं मीडिया में सीधे प्रसारण के अतिरिक्त मुद्दे को व्यापक रूप से कवर किया जाएगा।

ऐसी स्थितियों के परिणाम

- **विधायी कार्यों से समझौता-** अल्पकालीन संसदीय सत्र का प्रत्यक्ष परिणाम विधेयकों और बजट को बिना किसी बहस और चर्चा के शीघ्रता से पारित करने के रूप में होता है। बीते वर्षों के दौरान, बजट पर चर्चाओं में लगने वाला समय 1950 के औसतन 123 घंटे से घटकर पिछले दशक तक 39 घंटे हो गया।

VISION IAS

- **जवाबदेहिता की कमी:** 16 वीं लोकसभा में प्रश्नकाल निर्धारित समय की 77% अवधि हेतु कार्यशील रहा, जबकि राज्यसभा में यह निर्धारित समय की 47% अवधि के लिए कार्यशील रहा है। इस तरह समय का नष्ट होना सरकार को उसकी कार्रवाइयों के प्रति जबावदेह ठहराने का अवसर गँवाने की ओर संकेत करता है।
- **असहमति व्यक्त करने के अवसरों का अभाव-** विधानसभाओं के पीठासीन अधिकारियों के सम्मेलन (2001) ने यह निष्कर्ष निकाला कि सांसदों को पर्याप्त समय उपलब्ध न होने के कारण वे अपने मुद्दों को संसद के पटल पर प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं जो उनके असंतोष का एक कारण बनता है। सांसदों द्वारा संसद में व्यवधान उत्पन्न करने का यह एक प्रमुख कारण है।
- **वैधता में कमी-** संसद की बैठकों की संख्या में कमी से विधि निर्माण करने वाली उच्चतम संस्था के रूप में इसकी छवि प्रभावित होती है और इससे नागरिकों के समक्ष प्रतिनिधियों के सम्मान में भी आती है।
- **नियंत्रण और संतुलन:** 2012-2016 के मध्य लोकसभा में 30% समय और राज्यसभा में 35% समय गतिरोध में ही व्यतीत हो गया। सत्रों का इस प्रकार बाधित होना कार्यशील लोकतंत्र के लिए आवश्यक नियंत्रण और संतुलन व्यवस्था की नाज़ुक प्रणाली को कमजोर करता है।
- **शक्ति के पृथक्करण को कमजोर करना:** एक गैर-कार्यात्मक विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका के लिए शक्तियों के उल्लंघन का मार्ग प्रशस्त करती है।
- **वित्तीय लागत**: सरकार के अनुमानों के अनुसार संसद की प्रत्येक मिनट की कार्यवाही पर 2.5 लाख रुपये का खर्च आता है और 2017 के शीतकालीन सत्र में संसद के दोनों सदनों में 49 घंटे व्यर्थ होने के कारण 73.5 करोड़ रुपये की हानि हुई थी। एक सांसद के लिए राजकोषीय लागत प्रति वर्ष 35 लाख रूपये से अधिक है जो देश की प्रति व्यक्ति आय से लगभग 40 गुना है।
- **सरकार की जवाबदेहिता में कमी :** उदाहरण के लिए, बजट सत्र में बिना किसी विचार-विमर्श के बजट को पारित किया गया। राज्यसभा ने 419 सूचीबद्ध तारांकित प्रश्नों में से केवल 5 प्रश्नों को उठाया।

संसदीय दक्षता में सुधार के उपाय

- सत्र की तिथियों के एकमात्र निर्धारक के रूप में सरकार की शक्तियों को कम किया जाना चाहिए। संसद सत्र आहूत करने की सरकार की शक्ति, कार्यपालिका के विधायिका के प्रति उत्तरदायी होने के सिद्धांत की विरोधाभासी है।
- संसद के पास बैठक की अधिक तिथियाँ और उन तिथियों की स्पष्ट योजना होनी चाहिए। संविधान समीक्षा पर गठित राष्ट्रीय आयोग ने लोकसभा और राज्य सभा हेतु बैठकों की न्यूनतम संख्या क्रमशः 120 और 100 निर्धारित की हैं।
- बैठकों का कैलेंडर प्रत्येक वर्ष के आरम्भ में घोषित किया जा सकता है। इससे सदस्यों को सम्पूर्ण वर्ष के लिए बेहतर तरीके से योजना बनाने में सहायता मिलेगी। इससे सरकार के लिए सत्र को स्थगित करने का अवसर नहीं मिल पाएगा, विशेष तौर पर यदि सरकार किसी उभरते हुए मुद्दे की संसद द्वारा जांच को टालने के मंतव्य से ऐसा करना चाहती है।
- **शैडो कैबिनेट:** इस प्रणाली के अंतर्गत विपक्षी सांसद एक निश्चित पोर्टफोलियो की ट्रैकिंग करते हैं, इसके निष्पादन की जांच करने के अतिरिक्त वैकल्पिक योजनाओं का सुझाव देते हैं। यह मंत्रालयों की विस्तृत ट्रैकिंग और जांच के लिए अनुमति प्रदान करती है और सांसदों को रचनात्मक निर्णय लेने में सहायता करती है।
- **ई-याचिका प्रणाली को प्रोत्साहित करना:** इस प्रणाली के अंतर्गत यदि 10,000 लोग किसी मुद्दे पर ई-याचिका पर हस्ताक्षर करते हैं, तो प्रधानमंत्री या संबंधित मंत्री को इसका जवाब देना पड़ता है। जब ऐसी याचिका पर एक लाख से अधिक लोगों द्वारा हस्ताक्षर किए जाते हैं तो इस पर संसद में बहस करनी पड़ती है।
- **उत्तरदायी विपक्ष:** सदस्यों को प्रश्न पूछने चाहिए, उचित आपत्ति दर्ज करनी चाहिए और वैकल्पिक कार्रवाई का सुझाव देना चाहिए परंतु उन्हें ऐसा पर्याप्त रूप से विचार करके और ठोस तर्क के माध्यम से करना चाहिए।
- चुनावों के सार्वजनिक वित्त पोषण के माध्यम से चुनावी सुधार को राजनीतिक दलों के लिए वित्त पोषण के स्रोतों के प्रकटीकरण को अनिवार्य बनाए जाने संबंधी राजनीतिक सुधारों के साथ जोड़कर करना चाहिए।
- एक अव्यवस्थित संसदीय कैलेंडर को ठीक करने, अधूरे विधायी कार्यों को पूर्ण करने और संस्था में जनता के विश्वास की पुनर्प्राप्ति में सहायता करने के लिए अवसर प्रदान करने हेतु विशेष सत्र आहूत किया जा सकता है।

राज्य विधान-मंडल की कार्य पद्धति से संबंधित मुद्दे

- राज्य विधानमंडल की कार्य पद्धति का हालिया अध्ययन विधान सभा की बैठकों की अपेक्षाकृत कम संख्या की ओर संकेत करता है, जैसे- गुजरात, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश और दिल्ली विधानसभाओं की वर्ष 2017 में क्रमशः केवल 33, 40, 17 और 21 बैठकें ही हुईं, क्योंकि बैठकों की न्यूनतम संख्या पर किसी भी प्रकार की संवैधानिक सीमा नहीं है।
- संसदीय कार्यवाही के विपरीत राज्य विधानसभाओं में विधायी विचार-विमर्श करना कठिन होता है जिसके परिणामस्वरूप राज्य स्तर पर सामान्य नीति निर्माण में नागरिकों की कम भागीदारी होती है।

VISION IAS

इन मुद्दों के समाधान हेतु कदम

- **राज्य विधानसभाओं की सम्पूर्ण कार्यवाही का सीधा प्रसारण:** राज्य विधानसभा की कार्यवाही की अत्यधिक अपारदर्शिता के कारण नागरिकों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना में कमी आती है। कार्यवाही का सीधा प्रसारण यह सुनिश्चित करेगा कि नागरिकों द्वारा उनके प्रदर्शन की वास्तविक समय में निगरानी की जा रही है जिससे सार्वजनिक महत्व के मामलों पर विधायी और विचार-विमर्श की गुणवत्ता में सुधार होगा।
- **RTI अधिनियम के तहत प्रकटीकरण:** नागरिकों को RTI अधिनियम, 2005 के अंतर्गत सभी राज्यों द्वारा विधानसभा की वेबसाइटों पर विधायी विचार-विमर्श और प्रश्नों के पाठ के अनिवार्य प्रकटीकरण की सामूहिक रूप से मांग करनी चाहिए।
- **द्विभाषी पोर्टल और दस्तावेज:** विधानसभा के पोर्टलों सहित राज्य स्तर पर सभी सरकारी प्रस्तावों का अंग्रेजी में अनुवाद किया जाना चाहिए और उन्हें राज्य की स्थानीय भाषा के साथ अंग्रेजी में भी उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इससे इनकी अधिक पठनीयता सुनिश्चित होगी तथा राज्य की नीतियों और कार्रवाइयों के साथ नागरिकों और मीडिया का अधिक जुड़ाव होगा।
- **राज्य कानूनों के प्रारूप के निर्माण के दौरान विभिन्न हितधारकों और लाभार्थियों की भागीदारी:** केंद्र के विपरीत, जहां मंत्रालयों द्वारा सार्वजनिक टिप्पणियों के लिए ड्राफ्ट बिल प्रायः साझा किए जाते हैं, राज्य कानूनों पर विचार करने, बहस करने और उन्हें पारित करने की प्रक्रिया अस्पष्ट है। सभी राज्यों को समावेशी नीति-निर्माण की प्रक्रिया को व्यवहार में लाना चाहिए।

3.1.4. संसदीय समितियां

(Parliamentary Committees)

हाल ही में, संसदीय समितियों के कम होते महत्व और क्या विभिन्न विधेयकों के पारित होने से पूर्व उन पर उचित विवेचन किया जा रहा है, इस पर चिंताएं व्यक्त की जा रही हैं।

16वीं लोकसभा के आरंभ होने के पश्चात्, संसदीय समितियों द्वारा केवल 29% विधेयकों की जांच की गई है जबकि 14वीं और 15वीं लोकसभा में क्रमशः 60% और 71% विधेयकों का परीक्षण किया गया था।

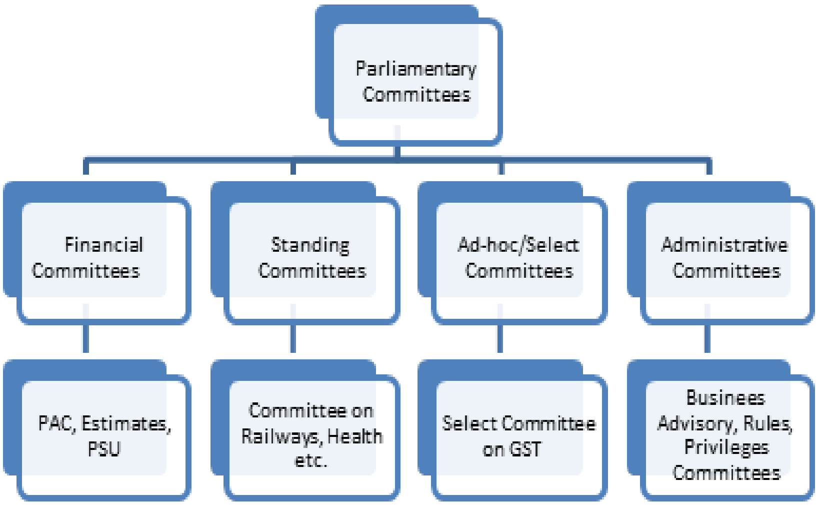

संसदीय समितियों का महत्व

- **विशिष्ट कार्य:** संसदीय समितियां दो प्रकार की होती हैं- स्थायी और तदर्थ समितियां। जहां स्थायी समितियां विशिष्ट कार्यों का निष्पादन करती हैं वहीं तदर्थ समितियों का गठन प्रदत्त कार्यों के निष्पादन हेतु किया जाता है और कार्य समाप्ति के उपरांत इन्हें स्थगित कर दिया जाता है।
- **विस्तृत जांच:** अधिक कार्यभार और कार्य की जटिलता तथा संसद में सीमित समय की उपलब्धता के कारण, सांसद सदन के पटल पर विधेयकों की व्यापक जांच नहीं कर पाते हैं। इसके साथ ही, संसद सत्र के बाधित होने पर भी समितियों का कार्य जारी रहता है।
- **विधि निर्माताओं के लिए विशेषज्ञता विकसित करने का मंच:** चूंकि दल-बदल कानून इन लघु-विधायिकाओं पर लागू नहीं होता है, इसलिए सामान्यत: दल के निर्देशों के अनुरूप निर्णय नहीं लिए जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न मुद्दों पर सर्वसम्मति के निर्माण हेतु एक मंच प्राप्त होता है।
- **उचित हितधारकों के साथ संबद्धता:** समितियां जिन विषयों की जांच करती हैं उनके संबंध में नागरिकों और विशेषज्ञों से नियमित फीडबैक प्राप्त करती हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय रिजर्व बैंक के गवर्नर को विमुद्रीकरण के विषय पर वित्त समिति द्वारा सम्मन जारी किया गया था।
- **सरकार के उत्तरदायित्व को बनाए रखना:** यह सरकारी नीतियों की जांच करने की संसद की क्षमता में वृद्धि करती है और विधायिका पर एक सुविज्ञ बहस के माध्यम से उसे उत्तरदायी बनाती है। इनके द्वारा विभिन्न विभागों और सरकार की अन्य नीतियों के लिए बजटीय आवंटन की जांच की जाती है।
- **बिलों में निहित मुद्दों का समाधान करना:** उदाहरण के लिए, 2013 से राज्यसभा में भ्रष्टाचार रोकथाम (संशोधन) विधेयक लंबित है। इस विधेयक की दो संसदीय समितियों द्वारा जांच की गई है और इसे कई बार पेश किया जा चुका है। परिणामस्वरूप इस प्रक्रिया ने बिल के महत्वपूर्ण मुद्दों को उजागर किया है।

VISION IAS

- **ज्ञान का भंडार:** भारतीय संसदीय समितियां सूचना का एक विशाल भंडार हैं। ये इन जानकारियों को सांसदों को उपलब्ध कराती हैं जिससे उनमें व्यापक समझ विकसित होती है और वे संसदीय प्रणाली को सुदृढ़ बनाने और शासन में सुधार के लिए सलाह दे पाते हैं।

मुद्दे

- **बहुत कम विधेयकों को निर्दिष्ट किया जाना:** 14वीं और 15वीं लोकसभा में क्रमशः 60 प्रतिशत और 71 प्रतिशत विधेयकों को इन समितियों को निर्दिष्ट किया गया था। 16वीं लोकसभा में इनकी संख्या में तीव्र गिरावट आई है और यह संख्या घटकर 27 प्रतिशत रह गई है।
- **सदस्यों की कम उपस्थिति:** समिति की बैठकों में सदस्यों की उपस्थिति एक चिंता का विषय रही है। यह उपस्थिति 2014-15 के बाद से लगभग 50% ही रही है।
- **सदस्यों का लघु कार्यकाल:** विभागीय स्थायी समितियों (DRSCs) की स्थापना एक वर्ष के लिए की जाती है परिणामस्वरूप विशेषज्ञता प्राप्ति के लिए बहुत कम समय मिलता है।
- **समिति की रिपोर्ट पर चर्चा न किया जाना:** चूँकि इनकी प्रकृति अनुशंसात्मक होती है, अतः इनकी रिपोर्ट पर संसद में चर्चा नहीं की जाती है। इनकी रिपोर्ट को केवल कुछ विधेयकों पर बहस करने हेतु संदर्भ के रूप में उपयोग किया जाता है।
- **विशेषज्ञता की कमी:** कुछ समिति के सदस्यों के पास समितियों के विचाराधीन विशेषीकृत विषयों की जटिलताओं को समझने हेतु **तकनीकी विशेषज्ञता की कमी** होती है, जैसे लेखांकन और प्रशासनिक सिद्धांत समिति।
- **कार्यवाही का राजनीतिकरण:** हालाँकि कुछ मुद्दों पर लोक हितों को वृहत् अभिव्यक्ति हुई है किन्तु अब सदस्यों द्वारा समिति की बैठकों में दल के निर्देशों का कठोरता से अनुपालन किया जाने लगा है।

विशिष्ट मंत्रालयों से सम्बद्ध **विभागीय स्थायी समितियां (DRCS),** अपने सम्बद्ध मंत्रालयों से संबंधित विधेयकों और विषयों के अतिरिक्त इन मंत्रालयों के प्रदर्शन और बजट की जांच भी करती हैं।

- **वित्तीय समितियां** मुख्य रूप से सरकार की व्यय प्राथमिकताओं की जांच के लिए उत्तरदायी होती हैं। ये सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की व्यय और प्रदर्शन संबंधी दक्षता में सुधार के उपायों पर सुझाव प्रदान करती हैं।
- **चयन समिति** का गठन एक विशिष्ट विधान/नीति का विश्लेषण करने के लिए किया जाता है। इन्हें रिपोर्ट प्रस्तुत करने के पश्चात् भंग कर दिया जाता है।
- **प्रशासनिक समितियां** मुख्य रूप से यह सुनिश्चित करने के लिए उत्तरदायी होती हैं कि विधानमंडल की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों को सदस्यों के परामर्श के माध्यम से योजनाबद्ध किया जाए।

आगे की राह

- **समिति के सदस्यों के कार्यकाल को बढ़ाया जाना चाहिए** ताकि विधायी कार्य में किसी विशेष विषय पर उनकी तकनीकी विशेषज्ञता का पूर्ण रूप से उपयोग किया जा सके।
- **शोध सहायता:** संस्थागत शोध को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। यह समितियों को तकनीकी प्रकृति के मुद्दों की जांच करने और जटिल नीतिगत मुद्दों की जांच करने हेतु एक विशेषज्ञ निकाय के रूप में कार्य करने में सहायता प्रदान करेगा।
- आर्थिक नीतियों और उनके कार्यान्वयन पर पृथक बहस करने हेतु **आर्थिक मामलों की स्थायी समिति** की स्थापना की जानी चाहिए।
- **कार्यों के अतिव्यापन को कम करना:** उन्हें वित्तीय पर्यवेक्षण की अतिरिक्त जिम्मेदारियां प्रदान की जा सकती हैं और बजट पर कार्य के अतिव्यापन से बचने के लिए मौजूदा वित्त समितियों को समाप्त किया जा सकता है।
- **नियमित निगरानी:** समिति के कार्यों के प्रदर्शन के नियमित मूल्यांकन हेतु तंत्र गठित किए जाने की आवश्यकता है।
- **सर्वोत्तम कार्यप्रणाली का अंगीकरण:** विभिन्न देशों में संबंधित मंत्री सरकार की नीतियों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने और उनका बचाव करने हेतु समिति के समक्ष उपस्थित होते हैं, जबकि भारत में समितियों के समक्ष मंत्री उपस्थित नहीं होते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक विधेयक को जांच हेतु समिति को निर्दिष्ट किये जाने की प्रणाली भी अपनायी जानी चाहिए।

निष्कर्ष

- विधि निर्माण की गुणवत्ता में सुधार और कार्यान्वयन संबंधी संभावित चुनौतियों को कम करके ही समिति प्रणाली को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। एक विचारशील निकाय के रूप में संसद को सुदृढ़ बनाने हेतु संसदीय समितियों का और अधिक एवं प्रभावी उपयोग करना समय की मांग है। इससे प्रभावी पर्यवेक्षण सुनिश्चित किया जा सकता है।

3.1.5.लोकसभा अध्यक्ष (स्पीकर) से संबंधित मुद्दे

(Issues Related to Speaker)

सुर्खियों में क्यों?

हाल के दिनों में, भेदभावपूर्ण और पक्षपातपूर्ण होने के कारण लोकसभा अध्यक्ष के अनेक निर्णयों की आलोचना की गई है।

VISION IAS

लोकसभा अध्यक्ष (स्पीकर) से संबंधित मुद्दे:

- **पूर्वाग्रह से ग्रसित होने के दावे और पक्षपातपूर्ण व्यवहार की समस्या:** अध्यक्ष की नियुक्ति प्रक्रिया से संबंधी संरचनात्मक मुद्दों और उसके कार्यकाल के कारण उस पर पूर्वाग्रह के आरोप लगाए जाते हैं। हाल ही में, एक परंपरा विकसित की गयी है कि अध्यक्ष का चयन बहुमत दल से और उपाध्यक्ष का चयन विपक्षी दल से किया जायेगा।
- **लोकसभा अध्यक्ष द्वारा राजनीतिक दल की सदस्यता त्यागने की परंपरा का न होना:** ऐसा इस कारण से है क्योंकि सदन के अध्यक्ष को पुनर्निर्वाचन की सुरक्षा नहीं प्रदान की गयी है।
- भारत में अध्यक्षों ने **अपने कार्यकाल से तत्काल पूर्व और बाद में मंत्री पद धारण किया** है। अतः, यह आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है कि भारत में अध्यक्ष पर पक्षपातपूर्ण व्यवहार के आरोप लगाए गए हैं, भले ही ऐसे दावों का समर्थन करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य न हों।
- **गठबंधन की चुनौती:** दलों की संख्या में वृद्धि के साथ ही, चर्चा के दौरान अपने हितों को प्रस्तुत करने हेतु प्रत्येक दलों के लिए उपलब्ध समय में कमी हुई है। इसके अतिरिक्त, संसद की वार्षिक बैठकों की संख्या में भी कमी हुई है।
- **राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि और विभिन्न राजनीतिक हितों में भिन्नता** ने अध्यक्ष के लिए अनुशासनात्मक शक्तियों के उपयोग के संबंध में सदस्यों के मध्य सहमति के निर्माण को कठिन बना दिया है।
- **असंसदीय आचरण:** अध्यक्ष के ध्यानाकर्षण के लिए सदस्यों द्वारा असंसदीय साधनों, जैसे- व्यवधान उत्पन्न करने आदि का प्रयास किया जाता है।
- **दल बदल विरोधी कानून में भूमिका:** एक सदस्य की अयोग्यता का निर्धारण, अध्यक्ष को विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करने हेतु पर्याप्त अवसर प्रदान करता है जिसका प्रयोग प्रायः सत्तारूढ़ दल द्वारा असहमति/मतभेद को दर-किनार करने के लिए किया जाता है। आधिकारिक तौर पर अपने दल की सदस्यता का त्याग नहीं करने या इसके निर्देशों को अस्वीकार नहीं करने के बावजूद 2016 में अरुणाचल प्रदेश विधानसभा अध्यक्ष, नाबाम रबिया द्वारा 16 विधायकों को अयोग्य घोषित किया गया था।
- **धन विधेयक का निर्धारण:** संविधान में निर्धारित सख्त मानदंडों को पूरा नहीं करने के बावजूद आधार विधेयक जैसे विधेयकों को धन विधेयक के रूप में प्रमाणित करने के लिए स्पीकर की आलोचना की गई है।

अध्यक्ष से संबंधित तथ्य

भारत में लोकसभा/विधान सभा का अध्यक्ष भारतीय संसद/राज्य विधानमंडल के निम्न सदन का मुख्य संसदीय अधिकारी होता है। आम चुनाव के बाद नवगठित लोक सभा की प्रथम बैठक में सदन द्वारा सदस्यों के बीच से अध्यक्ष का चुनाव किया जाता है।

लोकसभा अध्यक्ष की भूमिका, शक्तियां और कार्य

- सदन की प्रक्रिया, कार्यवाही एवं नियम के उचित संचालनों के लिए सदन में अनुशासन एवं शिष्टाचार बनाए रखता है।
- गणपूर्ति के अभाव में सदन को स्थगित या बैठक को निलंबित करता है।
- वह सामान्य स्थिति में प्रथमता मतदान नहीं करता है। लेकिन मत बराबरी की स्थिति में वह निर्णायक मत का प्रयोग कर सकता है।
- वह संसद के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक की अध्यक्षता करता है।
- वह सदन के नेता के अनुरोध पर सदन की 'गुप्त'(secret) बैठक की अनुमति दे सकता है।
- यह निर्धारित करता है कि कोई विधेयक, धन विधेयक है अथवा नहीं और इस विषय में उसका निर्णय अंतिम होता है।
- वह दसवीं अनुसूची के प्रावधानों के तहत दल-बदल के आधार पर लोकसभा के किसी सदस्य की निर्हरता के प्रश्नों का निपटारा करता है।

अध्यक्ष की स्वतंत्रता और निष्पक्षता

- अध्यक्ष को कार्यकाल की सुरक्षा प्रदान की जाती है।
- संसद द्वारा उसके वेतन और भत्ते निर्धारित किए गए हैं। ये भारत की संचित निधि पर भारित होते हैं।
- लोकसभा में अध्यक्ष को हटाये जाने से संबंधी प्रस्ताव के अतिरिक्त उसके कार्य और आचरण संबंधी चर्चा एवं आलोचना नहीं की जा सकती है।
- सदन की प्रक्रिया के विनियमन या कार्यवाही के संचालन या व्यवस्था बनाए रखने की अध्यक्ष की शक्ति किसी भी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र के अधीन नहीं हैं।
- वह केवल मत बराबरी (टाई) की स्थिति में निर्णायक मत का प्रयोग करता है। यह अध्यक्ष की निष्पक्षता की स्थिति को प्रदर्शित करता है।
- उसे वरीयता क्रम में अत्यधिक उच्च स्थान दिया जाता है। उन्हें भारत के मुख्य न्यायाधीश के साथ सातवें स्थान पर रखा गया है।

VISION IAS

आगे की राह

- दल-बदल, विभाजन और विलय से संबंधित अध्यक्ष की अधिनिर्णयन की भूमिका को या तो चुनाव आयोग या विधायिका के बाहर किसी भी तटस्थ निकाय को हस्तगत किया जाना चाहिए।
- चुनाव में प्रतिभाग किए बिना अध्यक्ष के पुनर्निर्वाचन की परम्परा स्थापित की जानी चाहिए।
- सदन में चर्चा और प्रश्नकाल के दौरान, न केवल दल की संख्या के अनुसार सदस्यों को समय देने का प्रयास किया जाना चाहिए, बल्कि उन सदस्यों को भी सुविधा मिलनी चाहिए जो कुछ विशेष शिकायत या विचार अभिव्यक्त करना चाहते हैं।
- अध्यक्ष के प्रति विश्वास में वृद्धि करने हेतु उनकी निर्णयन प्रक्रिया को अधिक पारदर्शी बनाया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, अध्यक्ष के निर्णयों को सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
- यदि मीडिया अपमानजनक आचरण के उदाहरणों और सदन के प्रदर्शन पर इस आचरण के प्रतिकूल प्रभावों को प्रकाशित करने में संरचनात्मक भूमिका निभाता है, तो सदन की गरिमा को भंग करने वाले सदस्यों के विरुद्ध कार्यवाही करने की अध्यक्ष की अनिच्छा को कम किया जा सकता है।

3.2. कार्यपालिका से संबंधित मामले

(Issues Related to Executive)

3.2.1 अध्यादेश जारी करना

(Ordinance Making)

सुर्ख़ियों में क्यों?

यह देखा गया है कि सरकार द्वारा जटिल परिस्थितियों से निपटने हेतु विभिन्न अध्यादेशों, जैसे- दिवाला और दिवालियापन संहिता (संशोधन) अध्यादेश 2018, भगोड़ा आर्थिक अपराधी अध्यादेश 2018, भूमि अधिग्रहण अध्यादेश आदि, का व्यापक रूप से प्रयोग किया जा रहा है।

संवैधानिक प्रावधान

- अनुच्छेद 123 और अनुच्छेद 213 क्रमशः राष्ट्रपति और राज्यपाल को अध्यादेश जारी करने की शक्ति प्रदान करते हैं।
- संविधान के तहत, कार्यपालिका की अध्यादेश जारी करने की शक्ति के संबंध में कुछ सीमाएं भी आरोपित की गई हैं:
  - **संसद के सत्रावसान की अवधि:** राष्ट्रपति अध्यादेश केवल तभी जारी कर सकता है, जब संसद के दोनों सदनों में से कोई भी सत्र में नहीं है।
  - **तत्काल कार्रवाई की आवश्यकता है:** राष्ट्रपति एक अध्यादेश तब तक जारी नहीं कर सकता है जब तक उसे यह समाधान न हो कि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं जिसमें 'तत्काल कार्रवाई' करने की आवश्यकता है।
  - **सत्र के दौरान संसदीय अनुमोदन:** यदि संसद इस पर कोई कार्रवाई नहीं करती तो संसद के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह के पश्चात् यह अध्यादेश समाप्त हो जाता है। यदि संसद के दोनों सदन इसे समाप्त करने संबंधी प्रस्ताव पारित कर दें तो यह निर्धारित छह सप्ताह की अवधि से पूर्व भी समाप्त हो सकता है।

अध्यादेश के अत्यधिक प्रयोग के कारण

- संसद द्वारा विशेष मुद्दों का सामना करने की अनिच्छा।
- संसद में बहुमत की कमी।
- विपक्षी दलों द्वारा सदन की कार्यवाही में बार-बार और जानबूझकर व्यवधान उत्पन्न करना।

मुद्दे

- अध्यादेश जारी करने की कार्यपालिका की शक्ति वस्तुतः विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य **शक्ति पृथक्करण** के सिद्धांत के विरुद्ध है।
- यह तर्क और विचार-विमर्श की लोकतांत्रिक आवश्यकताओं की उपेक्षा करती है।
- इसे पुनःजारी करना, इससे संबंधित उस संवैधानिक प्रावधान के उद्देश्य को निष्फल करता है जिसके तहत राष्ट्रपति और राज्यपाल को अध्यादेशों को जारी करने की सीमित शक्ति प्रदान की जाती है।
- यह संविधान द्वारा प्राथमिक विधि निर्माता के रूप में निर्दिष्ट संसद और राज्य विधानमंडलों की संप्रभुता के समक्ष खतरा उत्पन्न करता है।

संविधान में शक्तियों के पृथक्करण का प्रावधान किया गया है, इसके तहत विधि निर्माण का कार्य विधायिका को सौंपा गया है। कार्यपालिका को आत्म-संयम के साथ संविधान की भावना के अनुसार अध्यादेश जारी करने की शक्ति का उपयोग करना चाहिए तथा विधायी जांच और चर्चा से बचना नहीं चाहिए।

VISION IAS

अध्यादेश से संबंधित महत्वपूर्ण मामले

- **आर.सी. कूपर बनाम संघ, 1970:** इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि राष्ट्रपति के फैसले को इस आधार पर चुनौती दी जा सकती है कि 'तत्काल कार्रवाई' की आवश्यकता नहीं थी; और अध्यादेश मुख्य रूप से संसद में बहस और चर्चा से बचने के लिए पारित किया गया था।
- **ए. के. रॉय बनाम भारत संघ, 1982:** इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने तर्क दिया कि राष्ट्रपति की अध्यादेश जारी करने की शक्ति **न्यायिक पुनर्विलोकन के दायरे से बाहर नहीं है।** बाद में **वेंकट रेड्डी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य (1985) वाद** में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने फैसले को परिवर्तित करते हुए कहा कि राष्ट्रपति की संतुष्टि पर प्रश्न चिन्ह आरोपित नहीं किया जा सकता है।
- **डी. सी. वाधवा बनाम बिहार राज्य, 1987:** इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि अध्यादेश जारी करने के लिए कार्यपालिका की विधायी शक्ति असाधारण परिस्थितियों में उपयोग की जानी चाहिए, न कि विधि बनाने की शक्ति के विकल्प के रूप में। यह एक ऐसे मामले की जांच से सम्बंधित था जहां राज्य सरकार द्वारा कुल 259 अध्यादेशों और उनमें से कुछ को समय-समय पर पुनः जारी कर 14 वर्ष तक प्रभावी बनाए रखा गया था।
- **कृष्णा कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य, 2017:** इस वाद में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि किसी भी अध्यादेश को विधायिका के समक्ष रखने में विफलता संविधान की शक्तियों का दुरुपयोग और **संविधान के साथ धोखाधड़ी है।** इस निर्णय द्वारा किसी अध्यादेश के अनुमोदन के लिए इसे विधायिका के समक्ष प्रस्तुत करना अनिवार्य बना दिया गया।

3.3. लाभ का पद

(Office of Profit)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, लाभ का पद धारण करने के कारण राष्ट्रपति द्वारा दिल्ली विधानसभा के 20 विधायकों को अयोग्य घोषित कर दिया गया।

अन्य संबंधित तथ्य

- 2015 में, दिल्ली सरकार ने अपने 21 विधायकों को **संसदीय सचिव** के रूप में नियुक्त किया था।
- इसके पश्चात्, दिल्ली विधानसभा सदस्य (अयोग्यताओं का उन्मूलन) अधिनियम, 1997 में भूतलक्षी प्रभाव से संशोधन किया गया ताकि संसदीय सचिवों को “लाभ के पद” की परिभाषा से बाहर रखा जा सके।
- हालांकि इस संशोधन विधेयक को उप-राज्यपाल की सहमति नहीं मिली थी, जिससे विधायकों के अयोग्य ठहराए जाने का मार्ग खुला रहा।
- भारतीय निर्वाचन आयोग (ECI) ने निम्नलिखित कारणों से राष्ट्रपति को अयोग्यता संबंधी अनुशंसा की:
    - संसदीय सचिवों के रूप में उन विधायकों का पद एक सरकारी पद था।
    - इस पद में लाभ प्राप्त करने की संभावनाएं विद्यमान थीं और इसके कार्यकारी दायित्व एक मंत्री के समान थे।
- अनुच्छेद 102 व अनुच्छेद 191 से संबंधित मुद्दों पर राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल को निर्वाचन आयोग द्वारा दी गई सलाह के अनुसार कार्य करना अनिवार्य होता है।

संसदीय सचिव

- यह संसद का एक सदस्य होता है जो वरिष्ठ मंत्रियों को उनके दायित्वों के निर्वहन में सहायता करता है।
- इनका **दर्जा सामान्यत: राज्यमंत्री का** होता है और इन्हें मिलने वाली सुविधाएं भी राज्यमंत्री के समान होती हैं। उन्हें एक सरकारी विभाग का दायित्व दिया जाता है।
- मणिपुर, हिमाचल प्रदेश, मिजोरम, असम, राजस्थान, पंजाब, गोवा आदि कुछ अन्य राज्य हैं जहाँ विधायकों को सरकार द्वारा संसदीय सचिवों के रूप में नियुक्त किया गया है।
- हालांकि उच्च न्यायालय में विभिन्न याचिकाओं द्वारा संसदीय सचिव की नियुक्ति को चुनौती दी गयी है।
- जून 2015 में कलकत्ता उच्च न्यायालय ने पश्चिम बंगाल में 24 संसदीय सचिवों की नियुक्ति को असंवैधानिक बताते हुए उनकी नियुक्ति रद्द कर दी थी।
- मुंबई उच्च न्यायालय, हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय, दिल्ली उच्च न्यायालय इत्यादि द्वारा इसी प्रकार की कार्रवाईयां की गईं।

VISION IAS

लाभ का पद क्या है?

- **अनुच्छेद 102(1)(a) एवं 191(1)(a)** में लाभ के पद के आधार पर निरर्हताओं का उल्लेख है, किंतु लाभ के पद को न तो संविधान में परिभाषित किया गया है और न ही जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम में।
- ***प्रद्युत बारदोलाई बनाम स्वप्न रॉय वाद*** **(2001) में उच्चतम न्यायालय ने** लाभ के पद की जांच के लिए निम्नलिखित प्रश्नों को रेखांकित किया:
    - क्या वह नियुक्ति सरकार द्वारा की गई है;
    - क्या पदस्थ व्यक्ति को हटाने अथवा बर्खास्त करने का अधिकार सरकार के पास है;
    - क्या सरकार किसी पारिश्रमिक का भुगतान कर रही है;
    - पदस्थ व्यक्ति के कार्य क्या हैं एवं क्या वह ये कार्य सरकार के लिए कर रहा है; तथा
    - क्या किए जा रहे इन कार्यों के निष्पादन पर सरकार का कोई नियंत्रण है।
- कालांतर में, ***जया बच्चन बनाम भारत संघ वाद*** में उच्चतम न्यायालय ने इसे अग्रलिखित प्रकार से परिभाषित किया- **"ऐसा पद जो किसी लाभ अथवा मौद्रिक अनुलाभ को प्रदान करने में सक्षम हो।"** इस प्रकार "लाभ के पद" वाले मामले में लाभ का वास्तव में 'प्राप्त होना' नहीं अपितु लाभ 'प्राप्ति की संभावना' एक निर्णायक कारक है।

लाभ के पदों पर संयुक्त समिति

- इसमें 15 सदस्य होते हैं जो संसद के दोनों सदनों से लिए जाते हैं।
- यह केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त समितियों की संरचना व प्रकृति की जांच करती है तथा अनुशंसा करती है कि किन-किन पदों पर आसीन व्यक्तियों को संसद के किसी सदन का सदस्य बनने के लिए अर्ह अथवा अनर्ह माना जाए।
- **इसने लाभ के पद को निम्न प्रकार परिभाषित किया है:**
    - यदि पदस्थ व्यक्ति को क्षतिपूर्ति भत्ते के अतिरिक्त कोई पारिश्रमिक, जैसे- उपस्थिति शुल्क, मानदेय, वेतन आदि प्राप्त होता है।
    - यदि वह निकाय जिसमें व्यक्ति को पद प्राप्त है;
        - कार्यकारी, विधायी अथवा न्यायिक शक्तियों का प्रयोग कर रहा है; अथवा
        - उसे निधियों के वितरण, भूमि के आवंटन, लाइसेंस जारी करने आदि की शक्तियाँ प्राप्त हैं; अथवा
        - वह नियुक्ति, छात्रवृत्ति आदि प्रदान करने की शक्ति रखता है।
- यदि वह निकाय जिसमें व्यक्ति को पद प्राप्त है, संरक्षण के माध्यम से प्रभाव अथवा शक्तियों का प्रयोग करता है।

निरर्हताओं के पक्ष में तर्क

- **शक्ति-पृथक्करण के विरुद्ध:** लाभ का पद धारण करके कोई विधायक, कार्यपालिका (जिनका वह भाग बन गया है) से स्वतंत्र होकर अपने कार्यों का निर्वहन नहीं कर सकता।
- **संवैधानिक प्रावधानों की अवहेलना:** संसदीय सचिवों के पद अथवा ऐसे ही अन्य पदों का प्रयोग राज्य सरकारों द्वारा संविधान द्वारा निर्धारित मंत्रियों की अधिकतम 15% (दिल्ली के मामले में 10%) की सीमा से बचने के साधन के रूप में किया जाता है।
- **संरक्षण के माध्यम से शक्ति का प्रयोग:** संसदीय सचिव सरकारों की उच्च स्तरीय बैठकों में भागीदारी करते हैं। साथ ही उनकी मंत्रियों व मंत्रालयों की फाइलों तक पहुँच हर समय बनी रहती है तथा यह पहुँच उन्हें संरक्षण के माध्यम (way of patronage) से शक्ति का प्रयोग करने में सक्षम बनाती है।
- राजनीतिक समर्थन जुटाने के लिए तथा गठबंधन की राजनीति के दौर में **मंत्री पदों के विकल्प** के रूप में भी इन पदों का दुरूपयोग किया जाता है।
- **जनहित के लिए खतरा:** मंत्रियों के विपरीत संसदीय सचिवों को गोपनीयता की शपथ {अनुच्छेद 239 AA(4)} नहीं दिलाई जाती है। तथापि उन्हें उन सूचनाओं की जानकारी हो सकती है जिनका प्रकटीकरण जनहित के लिए हानिकारक हो, भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे सकता हो और यहाँ तक कि राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष भी खतरा उत्पन्न कर सकता हो।
- लाभ के पद से संबंधित **अन्य मुद्दों** में विधियों में संशोधन के माध्यम से विधायी शक्ति का स्वेच्छाचारी उपयोग, बड़े आकार के मंत्रिमंडल के कारण सार्वजनिक धन का दुरूपयोग तथा संशोधन की शक्ति के स्वेच्छाचारी प्रयोग के माध्यम से राजनीतिक अवसरवादिता सम्मिलित हैं। साथ ही विभिन्न राज्यों में इनकी भिन्न-भिन्न प्रस्थिति भी एक महत्त्वपूर्ण मुद्दा है।

VISION IAS

पदों के समर्थन में तर्क

- संविधान विधायिका को लाभ के किसी भी पद को धारण करने वाले को छूट प्रदान करने हेतु कानून पारित करने की अनुमति प्रदान करता है। पहले भी राज्यों और संसद द्वारा ऐसा किया जा चुका है। यू.सी. रमण मामले में सुप्रीम कोर्ट ने इसे बरकरार रखा है।
- मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति/राज्यपाल द्वारा की जाती है। वे उन्हें पद और गोपनीयता की शपथ दिलाते हैं। इन संवैधानिक आवश्यकताओं को पूरा किए बिना किसी व्यक्ति को मंत्री नहीं माना जा सकता। अनुच्छेद 239AA(4) के तहत संसदीय सचिव मंत्री नहीं माने जाते हैं, क्योंकि उन्हें राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त नहीं किया जाता और उनके द्वारा उन्हें पद और गोपनीयता की शपथ भी नहीं दिलाई जाती।

आगे की राह

- लाभ का पद **ब्रिटेन से प्रेरित** है किंतु ब्रिटेन में **निरर्हताओं का न तो कोई सामान्य सिद्धांत** है और न ही कानून के अंतर्गत ऐसे पदों की कोई विशेष सूची दी गई है। दूसरी ओर भारत में, संविधान के अंतर्गत **सामान्य निरर्हताओं** का उल्लेख है, जबकि संसद कानून बनाकर कुछ विशेष अपवादों को भी शामिल कर सकती है।
- **2nd ARC की अनुशंसाएं:** निम्नलिखित सिद्धांतों के आधार पर लाभ के पद को परिभाषित करने के लिए कानून में संशोधन किया जाना चाहिए:
  - पूर्ण रूप से सलाहकारी निकायों में उन सभी पदों को लाभ के पद के रूप में नहीं माना जाएगा जहां एक विधि-निर्माता का अनुभव, ज्ञान और विशेषज्ञता सरकारी नीति में इनपुट के रूप में शामिल होगी।
  - कार्यकारी निर्णय निर्माण तथा लोक निधियों के नियंत्रण से सम्बद्ध वे सभी पद जो प्रत्यक्ष रूप से नीति का निर्णय लेते हैं या व्यय को अधिकृत अथवा अनुमोदित करते हैं, उन्हें लाभ के पद के रूप में माना जाएगा।
  - यदि कोई सेवारत मंत्री ऐसे संगठनों का सदस्य या प्रमुख होता है, जहां मंत्रिपरिषद और संगठन के मध्य घनिष्ठ समन्वय सरकार की कार्य पद्धति के लिए महत्वपूर्ण है, तो इसे लाभ का पद नहीं माना जाएगा।

3.4. सरकारी मुकदमों की अधिकता

(Excessive Government Litigations)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक निर्णय के तहत झूठा मुकदमा (Frivolous litigation) दायर करने के लिए सरकार पर 1 लाख रूपये का जुर्माना आरोपित किया गया क्योंकि न्यायालय द्वारा समान अपीलों को पूर्व में ही निरस्त किया जा चुका था।

सरकारी मुकदमों से निपटने में आने वाली चुनौतियां:

- सरकारी मुकदमें असमानता पर आधारित होते हैं क्योंकि इनमें मुकदमा सीमित संसाधनों से युक्त एक व्यक्ति या इकाई और असीमित संसाधनों से युक्त एक विशाल सरकारी मशीनरी के मध्य होता है।
- **पर्याप्त एवं विश्वसनीय आँकड़ों का अभाव: 126वें भारतीय विधि आयोग की रिपोर्ट** के पश्चात्, मुकदमों की लागत या मुकदमों से सम्बंधित व्यापक आंकड़ों (मुकदमों की संख्या, श्रेणियों तथा सरकारी विभागीय पक्ष के विषय में) का वास्तविक आकलन प्राप्त नहीं हुआ है।
- **नौकरशाही की जोखिम न लेने की प्रवृत्ति:** केंद्रीय सतर्कता आयोग (CVC), केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) के भय के कारण ये जोखिमपूर्ण निर्णय लेने का भार न्यायपालिका पर डाल देती है।

झूठे मुकदमों के प्रभाव

- **निवेशकों के आत्मविश्वास को क्षति:** आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18 के अनुसार देश में **आर्थिक गतिविधियां** उच्च विचाराधीनता (pendency) एवं कानूनी व्यवस्था में विलंब के कारण प्रभावित हो रही हैं। न्यायालयों में आर्थिक मुकदमों (कंपनी के मुकदमों, मध्यस्थता मुकदमों तथा कराधान के मुकदमों) में विलंबता के कारण परियोजनाओं में देरी, कानूनी लागत, विवादास्पद कर राजस्व और निवेश की कमी में वृद्धि हुई है।
- **न्यायालयों के भार में वृद्धि होती है** और भारी संख्या में दायर मुकदमों के कारण अन्य वादियों (Litigants) को उनके मुकदमों की सुनवाई में विलम्ब होने के कारण क्षति पहुँचती है।
- **परियोजना लागत में वृद्धि:** विद्युत, सड़कों एवं रेलवे परियोजनाओं में विलंब होने के कारण परियोजना लागत में लगभग 60% की वृद्धि हुई है।

VISION IAS

- मुकदमों पर निर्णय लेने में विलंब **सरकार की प्रशासनिक प्रक्रियाओं को मंद कर देता है।**
- **बहुमूल्य संसाधनों का डायवर्जन: विधि एवं न्याय मंत्रालय** द्वारा प्रस्तुत हालिया विवरण के अनुसार, सार्वजानिक क्षेत्र उपक्रमों (PSUs) एवं अन्य स्वायत्त निकायों सहित सरकार देश के विभिन्न न्यायालयों में लंबित **3.14 करोड़ अदालती मामलों के "46%" मुकदमों** में पक्षकार है। यह स्थिति सरकार को देश के सबसे बड़े वादी के रूप में स्थापित करता है। इन वादों के संचालन में करदाताओं द्वारा दिए गए कर के एक बड़े भाग का उपयोग किया जाता है।
- **ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस को प्रभावित करता है:** विश्व बैंक द्वारा जारी ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस रिपोर्ट में भारत को सरकारी एजेंसियों (नियामकों) के व्यवहार के कारण भारी क्षति उठानी पड़ती है। ये आदेश जारी कर (यहां तक कि समाप्त हो चुके विवादों में भी) मुकदमेबाजी को बढ़ावा देते हैं। भारत की समग्र रैंकिंग में सुधार के बावजूद, इसे अनुबंधों को लागू करने के संदर्भ में अत्यधिक निम्न रैंकिंग प्राप्त हुई है।

राष्ट्रीय मुकदमा नीति, 2010 की प्रमुख विशेषताएं

- **बाध्यकारी वादी के रूप में** सरकार की भूमिका में कमी करना आवश्यक है।
- "न्यायालय को निर्णय करने दें" के सहज दृष्टिकोण की निश्चित तौर पर आलोचना की जानी चाहिए और उसका त्याग किया जाना चाहिए।
- न्यायाधिकरण के निर्णयों को दी जाने वाली चुनौती, नियमित प्रवृत्ति के स्थान पर केवल अपवादस्वरूप होनी चाहिए।
- केवल सेवा मामलों के आधार पर कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए क्योंकि प्रशासनिक न्यायाधिकरण का निर्णय अनेक कर्मचारियों को प्रभावित करता है।
- यह मुकदमों में कमी करने हेतु **राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर निगरानी तंत्र की स्थापना** तथा प्रत्येक विभाग में "सक्रिय रूप से" याचिकाओं की निगरानी करने एवं मुकदमों को ट्रैक करने के लिए **"नोडल अधिकारी"** की नियुक्ति की भी अनुशंसा करती है।

हालांकि, नीति निम्नलिखित कारणों से सफल नहीं हो पाई:

- अस्पष्टता,
- अलंकारिक तथा कठिन भाषा,
- पर्याप्त आंकड़ों का अभाव,
- किसी भी मापनीय परिणाम अथवा कार्यान्वियन तंत्र की अनुपस्थिति ,
- किसी भी प्रकार के प्रभावी मूल्यांकन का अभाव, इत्यादि।

लंबित मामलों की संख्या में कमी हेतु उठाए गए कदम:

- **वर्ष 1989 में, लोक उद्यम विभाग द्वारा "स्थायी मध्यस्थता तंत्र" की स्थापना की गई थी।** इसके आधार पर, इसने उद्यमों को निर्देश जारी करते हुए कहा की सभी वाणिज्यिक विवाद (आयकर, सीमा शुल्क एवं उत्पाद शुल्क पर विवादों, जिनमें आगे चलकर रेलवे संबंधी विवाद भी शामिल हो गए, को छोड़कर) मध्यस्थता द्वारा सुलझाए जाएंगे और यह विवाद समाधान तंत्र सभी संविदात्मक एवं निविदा समझौतों का एक भाग होगा।
- **"औसत लंबित अवधि को 15 वर्ष से कम करके 3 वर्ष करने हेतु नेशनल लीगल मिशन"** के एक भाग के रूप में **"राष्ट्रीय मुकदमा नीति 2010"** को अपनाना। यह सरकार को एक कुशल एवं उत्तरदायी वादी के रूप में परिवर्तित करने में सहायक हो सकता है। सभी राज्यों ने राष्ट्रीय मुकदमा नीति 2010 के अनुरूप राज्य मुकदमा नीतियों को तैयार किया है।
- **लीगल इनफॉर्मेशन मैनेजमेंट एंड ब्रीफिंग सिस्टम (LIMBS)** नामक एक आंतरिक पोर्टल को 2015 में गठित किया गया था। इसका उद्देश्य उन मुकदमों की निगरानी करना है जिनमें सरकार भी एक पक्षकार है। 11 जून 2018 तक, LIMBS द्वारा एकत्रित आंकडें 2.4 लाख 'लाइव' मुकदमों को दर्शाते हैं।

VISION IAS

- **अप्रैल 2017 में**, विधि मंत्री ने न्यायालय से लंबित मुकदमों की संख्या में कमी करने एवं योजना को मिशन मोड पर कार्यान्वित करने हेतु **'एक्शन प्लान फॉर स्पेशल एरियर्स क्लीयरेंस ड्राइव्स'** को तैयार करने के लिए प्रत्येक मंत्रालय/विभाग के साथ वार्ता आयोजित की।
- सरकार ने सितंबर 2015 में सरकारी विभागों, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों तथा अन्य सरकारी निकायों के मध्य मुकदमों को न्यायालय से बाहर निपटाने हेतु राष्ट्रीय मुकदमा नीति का प्रस्ताव रखा था। हालांकि, इस संबंध में अभी तक कोई ठोस निर्णय नहीं लिया गया है।
- हाल ही में, मुकदमों की संख्या को कम करने के लिए सरकार ने यह प्रस्तावित किया है कि कर विवादों के संबंध में विभिन्न फोरम में अपील दायर करने हेतु मौद्रिक सीमा को कम से कम दोगुना कर दिया जाएगा।

आगे की राह

- **राष्ट्रीय मुकदमा नीति को संशोधित करने की आवश्यकता है:**
  - इसे **विवाद के सभी तीन चरणों से संबंधित होना** चाहिए, जैसे- मुकदमा दायर करने से पूर्व, मुकदमे के दौरान और मुकदमे के पश्चात् का चरण।
  - नीति में ऐसे सुस्पष्ट उद्देश्यों को निर्धारित किया जाना चाहिए जिनका आकलन किया जा सके। **मुकदमे दर्ज करने के लिए न्यूनतम मानकों को सूचीबद्ध किया जाना चाहिए।**
  - **विभिन्न पदाधिकारियों की भूमिका का आकलन किया जाना** चाहिए और **निष्पक्ष जवाबदेही तंत्र** की स्थापना की जानी चाहिए।
  - **नीति के उल्लंघन के परिणामों** का स्पष्ट रूप से प्रावधान किया जाना चाहिए, साथ ही एक **आवधिक प्रभाव मूल्यांकन कार्यक्रम** को भी शामिल करना चाहिए।
  - प्रत्येक विभाग में संयुक्त सचिव स्तर पर मामलों की स्थिति की नियमित निगरानी करने हेतु एक नोडल अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए, ताकि विवादों के प्रभावी समाधान को समन्वित किया जा सके।
  - सेवा संबंधी सभी मामलों में मध्यस्थता को विवाद निपटान के प्राथमिक विकल्प के रूप में अपनाने हेतु **वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र** को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। सभी समझौतों में अनिवार्य रूप से मध्यस्थता या वार्ता के संदर्भ को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
- **आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18 में दिए गए सुझावों को अपनाया जा सकता है:**
  - **सरकार तथा न्यायपालिका के मध्य एक समन्वयात्मक कार्यवाही -** केंद्र एवं राज्य सरकारों के मध्य लंबवत सहकारी संघवाद के पूरक के रूप में, शक्तियों का क्षैतिज सहकारी पृथक्करण "कानून के विलंब" का समाधान करेगा और आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देगा।
  - उच्च न्यायालयों पर भार कम करने के लिए निचली अदालतों की **न्यायिक क्षमता का सुदृढ़ीकरण** किया जाना चाहिए। सरकार को न्यायपालिका पर किये जाने वाले सरकारी व्यय में वृद्धि, न्यायालयों के मुकदमा प्रबंधन व उनकी स्वचालन प्रणाली में सुधार तथा साथ ही विषय विशिष्ट बेंचों का गठन करना चाहिए।
  - **कर विभागों को अपनी अपीलों की संख्या को सीमित करना चाहिए,** क्योंकि न्यायपालिका के सभी तीन स्तरों (अपीलीय न्यायाधिकरणों, उच्च न्यायालयों, और सर्वोच्च न्यायालय) पर उनकी सफलता दर 30% से भी कम है।
  - न्यायालयों द्वारा स्थगित(stayed) मुकदमों को प्राथमिकता देने पर विचार किया जा सकता है। साथ ही, सरकारी मूलभूत अवसंरचनात्मक परियोजनाओं से सम्बद्ध ऐसे मामलों, जिनमें अस्थायी आदेश के द्वारा निर्णय दिया जाना संभव है, में निश्चित समय सीमा लागू की जा सकती है।
- **प्रत्येक मुकदमा प्रवण विभाग हेतु विशिष्ट समाधान की पहचान की जानी चाहिए:** उदाहरणार्थ प्रत्येक विभाग के अंतर्गत सेवा संबंधी विवादों के निपटान हेतु सुदृढ़ आंतरिक विवाद समाधान तंत्र की स्थापना से कर्मचारियों के मध्य विश्वास में वृद्धि होगी।
- **अर्द्ध-न्यायिक प्राधिकरणों** को न्यायिक रूप से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए या अर्द्ध-न्यायिक कार्यों के निर्वहन हेतु न्यायिक अधिकारियों की एक अलग वर्ग को नियुक्त किया जाना चाहिए।
- विवादों से निपटने के लिए **नौकरशाही को पर्याप्त रूप से प्रोत्साहित** किया जाना चाहिए।

- **भारतीय विधि आयोग (LCI) की 100वीं रिपोर्ट** की एक मुख्य अनुशंसा के अनुसार प्रत्येक राज्य में सरकारी मुकदमों के प्रबंधन एवं नियंत्रण हेतु **'लिटिगेशन ओम्बड्समैन'** की स्थापना की जानी चाहिए। इसी प्रकार, **LCI की 126वीं रिपोर्ट में सरकारी विभागों** के अंतर्गत एक **शिकायत निवारण तंत्र** के गठन की अनुशंसा की गयी है जो विशेषतः सरकारी नियोक्ताओं तथा उनके कर्मचारियों के मध्य के विवादों का प्रबंधन करेगा।
- **चरणबद्ध ऑनलाइन विवाद निपटान प्रणाली** को अपनाया जाना चाहिए। इस व्यवस्था को उपभोक्ता मामलों के मंत्रालय द्वारा ई-कॉमर्स से संबंधित विवादों के निपटान हेतु पायलट आधार पर अपनाया गया है। मंत्रालय द्वारा ई-कॉमर्स से संबंधित उपभोक्ता विवादों में मध्यस्थता सेवाओं के लिए **'एनीटाइम एनीव्हेयर डिस्प्यूट रिजॉल्यूशन'** के उद्देश्य के साथ एक **ऑनलाइन उपभोक्ता मध्यस्थता केंद्र** (OCMC) की स्थापना की गयी है।
- नियामकों द्वारा दायर **सभी लंबित अपीलों का व्यापक रूप से 100% ऑडिट** कर यह निर्णय लिया जाना चाहिए कि उनमें से किन्हें वापस लिया जाए। यह शुरुआत करने का एक बेहतर तरीका होगा।

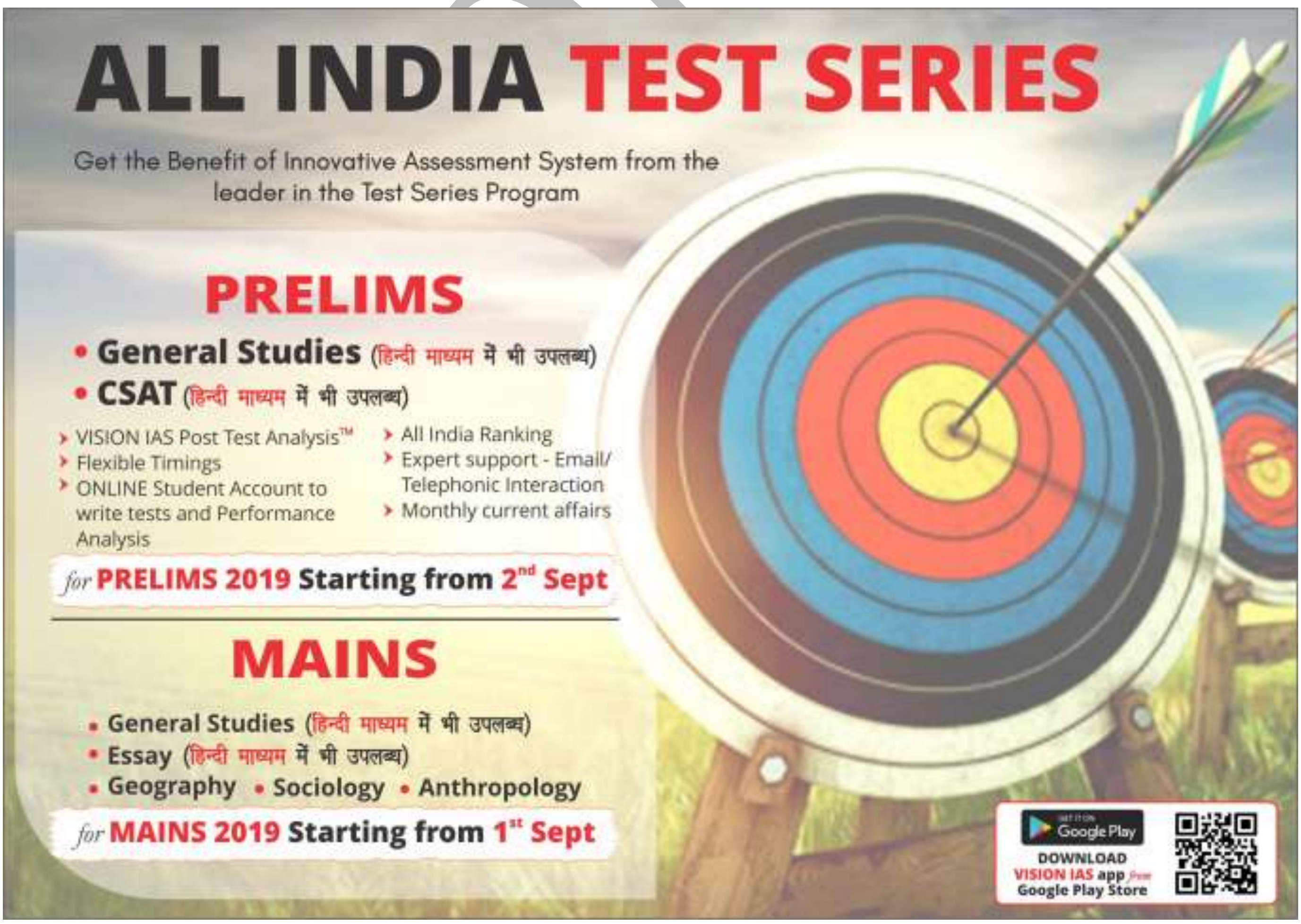

4. संवैधानिक, विनियामकीय एवं अन्य निकाय

(Constitutional, Regulatory and other Bodies)

4.1. भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (CCI)

(Competition Commission of India)

सुर्ख़ियों में क्यों?

केंद्र सरकार ने भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग में इसके द्वारा नियुक्त किए गए सदस्यों को कम करने का निश्चय किया है।

भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग

- इसे CCI अधिनियम, 2002 के तहत स्थापित किया गया था। इसके निम्नलिखित कार्य हैं:
  - प्रतिस्पर्धा पर प्रतिकूल प्रभाव डालने वाली प्रथाओं को रोकना।
  - बाजारों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देना तथा इसे बनाए रखना।
  - उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना।
  - भारतीय बाजारों में अन्य प्रतिभागियों द्वारा किये जाने वाले व्यापार की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करना।
- प्रारंभ में इसकी परिकल्पना एक 10 सदस्यीय आयोग के रूप की गई थी तथा साथ ही विभिन्न शहरों में इसकी खंडपीठ स्थापित करने का भी विचार था।
- हालांकि, बाद में खंडपीठ स्थापित करने के प्रावधान को हटा दिया गया और इसे केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त 7 सदस्यीय निकाय के रूप में गठित किया गया।
- 2017 में प्रतिस्पर्धा अपीलीय न्यायाधिकरण (COMPAT) को NCLAT (राष्ट्रीय कंपनी कानून अपीलीय न्यायाधिकरण) में सम्मिलित किया गया था। वर्तमान में अपीलीय न्यायाधिकरण को, भारतीय प्रतिस्पर्धा आयोग (CCI) द्वारा जारी किए गए किसी भी निर्देश या निर्णय या आदेश के विरुद्ध अपीलों को सुनने तथा निपटाने का अधिकार है।

अन्य संबंधित तथ्य

- आयोग के सदस्यों की संख्या **एक अध्यक्ष और छह सदस्यों से घटाकर एक अध्यक्ष और तीन सदस्यों** तक सीमित कर दी गई है।
- CCI अधिनियम के तहत, किसी आदेश पर आयोग के सभी सदस्यों को हस्ताक्षर करना अनिवार्य होता है तथा सदस्यों का अधिक संख्या में होना क्रियान्वयन को और भी कठिन बना देता है। सदस्यों की संख्या में कमी से CCI संभावित रूप से एक **अधिक तीव्र निर्णयन वाले निकाय** में परिवर्तित हो जाएगा।
- यह CCI में सरकारी हस्तक्षेप को कम करेगा तथा साथ ही सुनवाई और अनुमोदन में तीव्रता ला कर निगमों की व्यावसायिक प्रक्रिया को प्रोत्साहित करेगा एवं रोजगार के अवसर सृजित करेगा।

CCI और क्षेत्र-विशिष्ट विनियामकों की भूमिका में अंतर

सामान्यज्ञ बनाम विशेषज्ञ - क्षेत्रीय विनियामकों के पास अपने संबद्ध क्षेत्रों में डोमेन विशेषज्ञता है जबकि CCI को सभी आर्थिक क्षेत्रों में प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देने के साथ संबंधित मुद्दों से निपटने हेतु व्यापक अधिदेश के साथ गठित किया गया है।
अग्रसक्रिय बनाम प्रतिक्रियात्मक - क्षेत्र विशिष्ट विनियमन एक पूर्वानुमानित समस्या की पहचान करता है और समस्या उत्पन्न होने से पहले व्यवहार संबंधी मुद्दों का समाधान करने हेतु एक प्रशासनिक मशीनरी का निर्माण करता है, जबकि दूसरी तरफ, CCI सामान्य तौर पर बाजार परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में किसी समस्या के उत्पन्न होने के पश्चात् उसका समाधान करेगा।

CCI से संबंधित मुद्दे

- क्षेत्र-विशिष्ट विनियामकों के साथ क्षेत्राधिकार का परस्पर अतिव्यापन, जैसे- भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण (TRAI) के साथ बाजार प्रभुत्व और मूल्य एकाधिकार, SEBI के साथ प्रतिबंधित व्यापारिक व्यवहार तथा RBI के साथ विलय नियंत्रण से संबंधित मुद्दे।
- **सदस्यों की संख्या कम होने से संबंधित मुद्दे**: संख्या कम होने से परस्पर मतभेदों को आसानी से सुलझाया जा सकता है। भविष्य में नए क्षेत्रों में विशेषज्ञता रखने वाले सदस्यों की मांग हो सकती है, ऐसी किसी माँग को पूर्ण करना छोटे आकार के कारण कठिन होगा
- **क्षेत्र-विशिष्ट विनियामकों के साथ समन्वय की कमी:** विभिन्न क्षेत्रीय विनियामकों और CCI के बीच औपचारिक और अनौपचारिक आदान-प्रदान का अभाव है। इसे प्रोत्साहित करने हेतु, प्रतिनियुक्ति या इंटर्नशिप के आधार पर कर्मियों का आदान-प्रदान किया जा सकता है।

VISIONIAS

- **न्यायपालिका के साथ मुद्दे:** उच्च न्यायालय CCI की भूमिका के महत्व को समझने में असफल रहा है क्योंकि उच्च न्यायालय ने CCI द्वारा आरम्भ की गयी जाँचों को रोकने में काफी तेजी दिखाई है।

4.2 स्वायत्त निकायों को युक्तिसंगत बनाना

(Rationalization of Autonomous Bodies)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, कैबिनेट ने स्वास्थ्य और परिवार कल्याण विभाग के तहत स्वायत्त निकायों को युक्तिसंगत बनाने के लिए स्वीकृति प्रदान की है।

स्वायत्त निकाय क्या है?

- सरकारी व्यवस्था के दायरे के बाहर कुछ स्वतंत्रता एवं नम्यता के साथ तथा सरकारी तंत्र के हस्तक्षेप के बिना निश्चित कार्यों के निर्वहन की आवश्यकता होने पर स्वायत्त निकायों की स्थापना की जाती है।
- ये संबंधित मंत्रालयों/विभागों द्वारा स्थापित किए जाते हैं और इनको अनुदान सहायता के माध्यम से पूर्णतया या आंशिक रूप से वित्त पोषित किया जाता है, जिसका निर्धारण इस आधार पर किया जाता है कि इस प्रकार के संस्थान किस सीमा तक स्वतः आंतरिक संसाधन सृजित कर सकते हैं। पदों के सृजन की शक्तियों से संबंधित निर्देशों के साथ-साथ इन अनुदानों को वित्त मंत्रालय द्वारा अपने निर्देशों के माध्यम से विनियमित किया जाता है।
- ये शोध, उच्च शिक्षा, कल्याण और विनियामक उपायों को बढ़ावा देने के उद्देश्य से स्थापित किए जाते हैं।
- ये प्रायः सोसायटी पंजीकरण अधिनियम के तहत सोसायटी के रूप में पंजीकृत होते हैं और कुछ मामलों में उन्हें विभिन्न अधिनियमों में निहित प्रावधानों के तहत सांविधिक संस्थान के रूप में स्थापित किया जाता है।

संबंधित मुद्दे

- **निकायों की बढ़ती संख्या:** 1950 के दशक में 50 से भी कम संस्थान थे परन्तु वर्तमान में केंद्र द्वारा 679 ऐसे निकायों को वित्त पोषित किया जाता है।
- **राजस्व संबंधी लागत:** 2017-18 के बजट के अनुसार, इन निकायों पर विगत वर्ष के 63,975 करोड़ रुपये से बढ़कर वर्तमान में 72,200 करोड़ रुपये का व्यय हुआ है। इन निकायों को आवंटित 40% से अधिक धन का उपयोग वेतन के भुगतान हेतु किया जाता है।
- **आंकड़ों का अभाव:** निकायों के कामकाज तथा उनकी वर्तमान प्रासंगिकता से सम्बन्धित केंद्रीकृत आंकड़ों का अभाव है। इसके साथ ही, इन निकायों द्वारा किये जाने वाले कार्यों के समान कार्य अन्य संस्थानों द्वारा संचालित किये जाते हैं या नहीं, इससे संबंधित आँकड़ों का भी अभाव है।
- **भाई-भतीजावाद:** कुछ ऐसे लोगों की नियुक्तियां की जाती हैं, जो निकाय के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त होने के योग्य भी नहीं होते हैं।
- उदाहरण के लिए, 1982 में भारत में एशियाई खेलों के दौरान गठित कुछ निकायों को हाल ही में बंद कर दिया गया है।

आगे की राह

- **व्यय प्रबंधन आयोग (EMC)** के अनुसार, इन निकायों को दिए गए अनुदान की सार्थक समीक्षा से प्रतिवर्ष 3,000 करोड़ रुपये की बचत हो सकती है।
- **निकायों का निगमीकरण** करने से उनकी कार्यप्रणाली को संचालित करने के लिए अलग-अलग कंपनियां या स्पेशल पर्पस व्हीकल (SPV) बनाए जा सकते हैं जिसके परिणामस्वरूप पर्याप्त बचत और दक्षता लायी जा सकेगी।
- **स्वायत्त संगठनों की पूर्व समीक्षा:** निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करने के साथ गतिविधियों की प्रकृति और आकार के आधार पर मंत्रालय प्रत्येक तीन या पांच वर्षों में स्वायत्त संगठनों की बाह्य या पूर्व समीक्षा की व्यवस्था करेगा:
  - जिन उद्देश्यों के लिए स्वायत्त संगठनों को स्थापित किया गया था उन उद्देश्यों को प्राप्त किया जा रहा है या नहीं।
  - क्या उन सभी गतिविधियों को जारी रखना चाहिए, जो अब प्रासंगिक नहीं हैं या पूर्ण हो चुकी हैं या जो अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में विफल रही हैं।
  - क्या गतिविधियों की प्रकृति ऐसी है कि जिसे केवल एक स्वायत्त संगठन द्वारा ही किया जाना चाहिए।
  - यदि अन्य संगठनों द्वारा समान कार्य किए जा रहे हों, चाहे वह केंद्र सरकार या राज्य सरकारों या निजी क्षेत्र में संचालित हों, तो संगठनों को विलय या समाप्त किए जाने की सम्भावना।
  - क्या कुल कर्मचारियों के अनुपूरक के रूप में आईटी और संचार सुविधाओं, आउटसोर्सिंग के लिए सुविधाएं आदि पर विचार किया जाना चाहिए।

VISION IAS

- क्या वैज्ञानिक या तकनीकी कर्मियों को उन कार्यों हेतु नियोजित किया जा रहा है जो गैर-वैज्ञानिक या गैर-तकनीकी कर्मियों आदि द्वारा किए जा सकते हैं।
- क्या उपयोगकर्ताओं पर शुल्क उचित दरों पर आरोपित किए जाते हैं और क्या सरकारी बजटीय सहायता पर निर्भरता को कम करने हेतु आंतरिक संसाधन उत्पादन को अधिकतम करने के प्रयोजन को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा रहा है।

4.3. राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग

(National Commission for Minorities)

सुर्खियों में क्यों ?

हाल ही में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग (NCM) को संवैधानिक दर्जा प्रदान करने की मांग की गयी।

राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के संबंध में

- इसकी स्थापना राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम,1992 के तहत केंद्र सरकार द्वारा एक सांविधिक निकाय के रूप में की गयी थी।
- अधिनियम के अनुसार आयोग के अधिदेश में निम्नलिखित सम्मिलित हैं:
  - संघ और राज्यों के अल्पसंख्यकों के विकास की प्रगति का मूल्यांकन करना।
  - अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए संविधान द्वारा प्रदत्त प्रावधानों और संसद एवं राज्य विधानमंडलों द्वारा अधिनियमित कानूनों की निगरानी करना।
  - केंद्र सरकार या राज्य सरकारों द्वारा अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के लिए सुरक्षा उपायों के प्रभावी कार्यान्वयन हेतु अनुशंसा करना।
  - अल्पसंख्यकों के अधिकारों तथा संरक्षण से वंचित करने से संबंधित विशेष शिकायतों पर विचार करना तथा ऐसे मामलों को संबंधित अधिकारियों के समक्ष प्रस्तुत करना।
  - अल्पसंख्यकों के सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक विकास से संबंधित विषयों का अध्ययन, अनुसंधान और विश्लेषण करना। साथ ही आवधिक रिपोर्ट तैयार करना और सरकार को उचित उपायों का सुझाव देना।

NCM से संबंधित मुद्दे

- **क्षमता निर्माण से संबंधित मुद्दे:** विभिन्न प्रमुख पदों पर मानव संसाधन की कमी और प्रौद्योगिकी का कम उपयोग। इसका परिणाम अत्यधिक लंबित मामले, शिकायतों का निवारण न हो पाना और सुनवाई की पूर्वानुमेयता के अभाव के रूप में सामने आता है।
- **वित्तीय नियोजन और व्यय से जुड़े मुद्दे:** आवंटित निधि सीमित होती है, जिसका अधिकांश भाग वेतन पर व्यय किया जाता है। अत: शोध अध्ययन और प्रकाशनों पर व्यय के लिए बहुत कम राशि शेष रहती है।
- **विधिक और प्राधिकरण के मुद्दे**: संवैधानिक प्राधिकार की अनुपस्थिति ने इसे अपने अधिदेश की पूर्ति करने हेतु अक्षम बना दिया है। इसके अतिरिक्त, अल्पसंख्यकों के लिए विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन, निगरानी और समीक्षा हेतु राज्य अल्पसंख्यक आयोगों को पर्याप्त शक्तियां नहीं प्रदान की गयी हैं।

आगे की राह:

- NCM को प्रभावी रूप से अपने विधिक अधिदेश को पूरा करने में सक्षम बनाने हेतु **NCM को संवैधानिक दर्जा** प्रदान करना।
- मामलों की विचाराधीनता को कम करने हेतु **अभीष्ट लक्ष्यों (baseline targets) को निर्धारित करना** तथा संचालन में जवाबदेहिता और पारदर्शिता सुनिश्चित करने के लिए परिणाम आधारित प्रबंधन।
- मामलों की संख्या को ध्यान में रखते हुए इसकी कुशल कार्यप्रणाली हेतु **मानव संसाधन का आवधिक मूल्यांकन।**
- **ग्राहक संतुष्टि पर ध्यान केंद्रित करना:** नागरिकों को गुप्त रूप से उनकी शिकायतों के गुणात्मक निवारण के संबंध में फीडबैक प्रदान करने के लिए हितधारक संतुष्टि सर्वेक्षण किया जाना चाहिए।
- **अपील करने की सुगम प्रक्रिया**: "ई-सुनवाई" तंत्र को संस्थागत रूप प्रदान करना ताकि अपीलकर्ताओं को उनके गृह जिलों से ही आयोग से जोड़ा सके ताकि लोगों की सुनवाई में भाग लेने के लिए दूर-दराज के क्षेत्रों से यात्रा करने की आवश्यकता को कम किया जा सके।
- वित्तीय क्षति, नुकसान की सीमा, सामाजिक अन्याय की सीमा आदि के आधार पर राष्ट्रीय और राज्य आयोगों के मध्य मामलों के पृथक्करण के माध्यम से **राज्य स्तरीय आयोगों की भूमिका का निर्धारण एवं सुदृढीकरण।**

4.4. केंद्रीय सतर्कता आयोग

(Central Vigilance Commission: CVC)

केंद्रीय सतर्कता आयोग की स्थापना 1964 में केंद्र सरकार द्वारा पारित एक प्रस्ताव के माध्यम से केंद्र सरकार की संस्थाओं में भ्रष्टाचार को रोकने हेतु एक शीर्ष संस्था के रूप में की गयी थी। तत्पश्चात, 2003 में संसद द्वारा पारित एक विधि द्वारा CVC को सांविधिक दर्जा प्रदान किया गया।

VISION IAS

संगठन

- CVC एक बहु-सदस्यीय निकाय है जो केन्द्रीय सतर्कता आयुक्त (अध्यक्ष) और दो से अनाधिक सतर्कता आयुक्तों से मिलकर बना हैं।
- इनकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में गठित एक तीन सदस्यीय समिति की सिफारिश पर की जाती है जिसमें अन्य सदस्य के रूप में केंद्रीय गृह मंत्री और लोकसभा में विपक्ष का नेता शामिल होते हैं।
- इनका कार्यकाल 4 वर्ष या 65 वर्ष की आयु, जो भी पहले हो, तक होता है।

केंद्रीय सतर्कता आयोग (CVC) के कार्य निम्नलिखित हैं:

- केन्द्रीय सरकार द्वारा भेजे गए किसी संदर्भ पर जांच करना अथवा जांच या अन्वेषण करवाना जिसमें यह आरोप लगाया गया है कि एक लोक सेवक ने भ्रष्टाचार रोकथाम के तहत अपराध किया है।
- भ्रष्टाचार रोकथाम अधिनियम,1988 के अंतर्गत किए गए अपराधों की जांच में संलग्न विशेष दिल्ली पुलिस बल (CBI) की कार्यप्रणाली का अधीक्षण करना।
- भ्रष्टाचार रोकथाम अधिनियम, 1988 के तहत अभियोजन चलाने हेतु संबंधित प्राधिकरणों को दिए गए लंबित आवेदनों की प्रगति की समीक्षा करना।
- केंद्र सरकार के मंत्रालयों और इसके प्राधिकरणों के सतर्कता प्रशासन का अधीक्षण करना।
- ग्रुप A ,B, C और D के अधिकारियों और कर्मचारियों के संबंध में लोकपाल द्वारा संदर्भित शिकायतों की आरंभिक जांच करना।
- केंद्र सरकार को केन्द्रीय सेवाओं और अखिल भारतीय सेवाओं के सदस्यों से संबंधित सतर्कता और अनुशासनात्मक मामलों को नियंत्रित करने संबंधी नियमों एवं विनियमों के निर्माण के समय CVC से परामर्श करने की आवश्यकता है।

चुनौतियां

- **मुख्य सतर्कता अधिकारी की नियुक्ति पारदर्शी और स्पष्ट नहीं है,** क्योंकि चयन के संबंध में समिति के सदस्यों के मध्य सर्वसम्मति की कोई सांविधिक बाध्यता नहीं है।
- **CVC केवल एक सलाहकारी निकाय है।** भ्रष्टाचार के मामलों में केंद्रीय सरकारी विभाग, CVC की सलाह को स्वीकार या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हैं।
- प्राप्त होने वाली शिकायतों की संख्या की तुलना में **CVC के पास पर्याप्त संसाधन उपलब्ध नहीं** हैं।
- आयोग को सक्षम प्राधिकरण के रूप में लोक अधिकारियों द्वारा किए गए अपराधों हेतु आपराधिक अभियोजन की स्वीकृति प्रदान करने की शक्ति प्राप्त नहीं है।
- **भ्रष्टाचार विरोधी तंत्र के प्रति लोगों में निराशा**: जब इसे शिकायत प्राप्त होती है, तो CVC उपयुक्त एजेंसियों से जाँच रिपोर्ट की मांग करता है, अधिकांश मामलों में यह पाया गया है कि रिपोर्ट तैयार करने और आयोग को प्रस्तुत करने में अत्यधिक विलम्ब हो जाता है।
- **आयोग की सलाह की अस्वीकृति या आयोग से परामर्श न करना**: मुख्य सतर्कता अधिकारियों (CVO) द्वारा प्रस्तुत जांच रिपोर्ट के मामले में, इनमें से लगभग आधे मामलों को बिना किसी कार्रवाई के ही बंद कर दिया जाता है। यह सतर्कता प्रक्रिया को विकृत करता है और सतर्कता प्रशासन की निष्पक्षता को कमजोर बनाता है।
- **आयोग की सलाह से विचलन होना**: CVC की वार्षिक रिपोर्ट यह निर्दिष्ट करती है कि "वर्ष 2017 के दौरान, विभिन्न मंत्रालयों द्वारा आयोग की सलाह से कुछ महत्वपूर्ण विचलन पाया गया था।"
- **लंबित मामले**: CVC ने यह पाया है कि CVO के पास कई शिकायतें दीर्घकाल से लंबित हैं। मुख्य सतर्कता अधिकारियों को आयोग द्वारा जांच के लिए भेजी गई शिकायतों पर तीन महीने के भीतर जाँच रिपोर्ट प्रस्तुत करना अनिवार्य होता है।
- हालांकि CVC को CBI पर पर्यवेक्षी शक्तियां प्राप्त हैं, फिर भी CBI से किसी भी फाइल की मांग करने या CBI को किसी विशेष मामले की जांच करने हेतु निर्देशित करने की शक्ति प्राप्त नहीं है।
- केन्द्रीय सतर्कता आयोग में लंबे समय से लंबित रिक्तियां।
- **अज्ञात और छद्म शिकायतें CVC की दक्षता को प्रभावित कर रही हैं।**
- हालांकि अधिनियम इसे निर्दिष्ट नहीं करता है फिर भी इन पदों के लिए चुने गए व्यक्तियों में त्रुटिहीन सत्यनिष्ठा की आशा की जाती है लेकिन कई अवसरों पर इससे समझौता किया जा रहा है।

आगे की राह

- यह अनुशंसा की गयी है कि CVC को CVOs के चयन के लिए ऐसे वैज्ञानिक मानदंड विकसित करने चाहिए जो CVO के लिए आवश्यक योग्यता के अनुरूप हों।

VISION IAS

- भ्रष्टाचार के खतरों और नकारात्मक परिणामों के संबंध में लोगों को संवेदनशील बनाना चाहिए।
- यह अनुशंसा की गयी है कि CVC को अपनी अग्र सक्रिय भूमिका को तीव्र और विस्तृत करना चाहिए तथा इससे अत्यधिक गहनता और कवरेज प्राप्त करना चाहिए।
- CVC को कंपनियों को गलत, दुर्भावनापूर्ण, असंतोषजनक और निराधार शिकायतों, जिनके कारण किसी रणनीतिक निर्णय में विलंब हो सकता है, के सभी मामलों में IPC और CrPC की संबंधित धाराओं के तहत कार्यवाही आरंभ करने के लिए सख्त दिशानिर्देश देना चाहिए।

यह अनुशंसा की जाती है कि CVOs को लंबे समय तक और लगातार प्रशिक्षित किया जाता है और प्रबंधन लेखा परीक्षा, निर्णय निर्माण प्रक्रिया आदि के संबंध में पर्याप्त जानकारी प्रदान की जाती है।

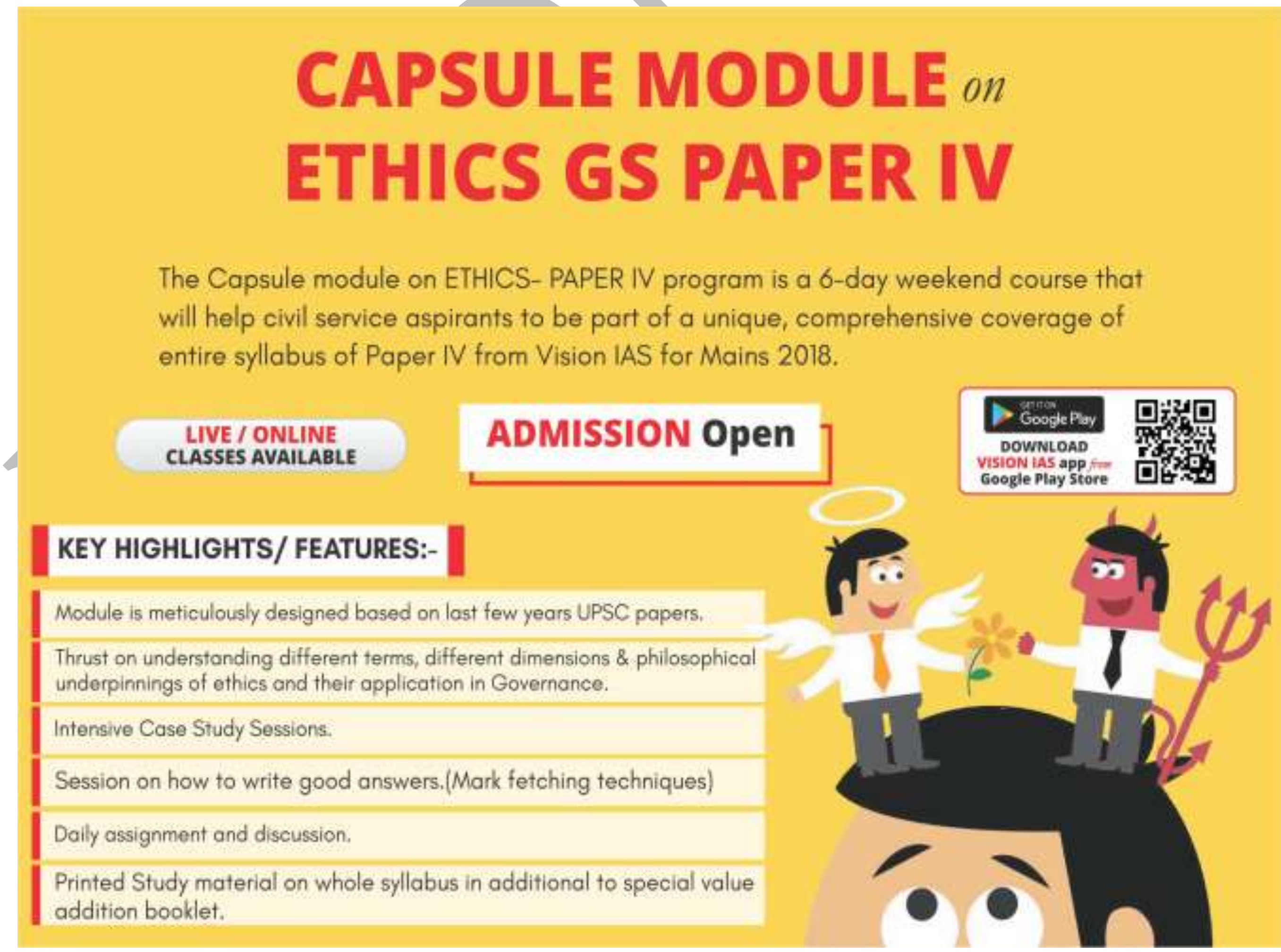

5. भारत में चुनाव

(ELECTIONS IN INDIA)

5.1. चुनावी सुधार

(ELECTORAL REFORMS)

एक स्वतंत्र, न्यायोचित तथा निष्पक्ष चुनावी प्रक्रिया के साथ-साथ अधिकाधिक नागरिक भागीदारी लोकतान्त्रिक मूल्यों के संरक्षण के लिए मूलभूत आवश्यकता है। दुर्भाग्यवश, भारतीय चुनावी प्रणाली कुछ समस्याओं से ग्रसित रही है जिससे देश के लोगों के विश्वास को क्षति पहुंची है। इन समस्याओं में काले धन की भूमिका, भारत निर्वाचन आयोग (ECI) की शक्ति से संबंधित मुद्दे, किसी पार्टी के विरुद्ध मतदान किए जाने पर मतदाताओं का उत्पीड़न किया जाना इत्यादि शामिल हैं।

अतः इस संदर्भ में चुनावी प्रक्रिया की शुचिता को बनाए रखने के लिए विभिन्न सुधार किए गए हैं या प्रस्तावित हैं:

- **उच्चतम न्यायालय द्वारा चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों के लिए अतिरिक्त मानदंडों का प्रावधान: लोक प्रहरी वाद** में उच्चतम न्यायालय ने केंद्र सरकार को नियमों तथा उम्मीदवारों द्वारा दाखिल किए जाने वाले प्रकटीकरण फॉर्म और नामांकन पत्रों में संशोधन करने के लिए कहा है ताकि उनके साथ-साथ उनके पति/पत्नी तथा आश्रितों की आय के स्रोतों को भी इसमें शामिल किया जा सके। संपत्तियों एवं उनके स्रोतों को प्रकट न करना जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 123 के तहत "भ्रष्ट आचरण" माना जाएगा।
- **नोटा (NOTA) का प्रावधान:** उच्चतम न्यायालय ने 2013 के **पीपल्स यूनियन फॉर सिविल लिबर्टीज बनाम भारत संघ वाद** में नोटा (नन ऑफ द एबव) के प्रावधान का मार्ग प्रशस्त किया। 2014 में ECI ने एक परिपत्र जारी करते हुए कहा कि नोटा के प्रावधान को राज्यसभा चुनावों में भी शामिल किया जाएगा। इससे प्रतीकात्मक असंतोष के प्रकटीकरण में सहायता प्राप्त होगी। इसके साथ ही यह राजनीति के अपराधीकरण को कम करने तथा सहभागी लोकतंत्र को सुदृढ़ करने में भी सहायक होगा।
- **टोटलाइजर मशीनों (Totalizer Machines) के लिए प्रस्ताव:** इसके माध्यम से उम्मीदवार को अलग-अलग मतदान-केंद्रों पर प्राप्त मतों को प्रकट किए बिना, EVMs के समूह के समेकित परिणाम प्राप्त किए जा सकते हैं। इसके परिणामस्वरूप चुनाव से पूर्व तथा पश्चात मतदाताओं पर होने वाले अत्याचार और उत्पीड़न की धमकी को रोका जा सकता है।
- **वोटर वेरिफाइड पेपर ऑडिट ट्रेल (VVPAT)** मशीनों का प्रयोग आरम्भ किया गया है, जिसके द्वारा पेपर ऑडिट के माध्यम से EVM परिणामों की जांच की जा सकती है। इससे स्वदेश-निर्मित मशीनों की जवाबदेहिता का एक और स्तर सुनिश्चित होगा।
- **इलेक्ट्रॉनिक ट्रांसमिटेड पोस्टल बैलेट सिस्टम (ETPBS):** हाल ही में इसका उपयोग चेंगन्नूर (केरल) विधानसभा क्षेत्र के उप-चुनावों में सेवा मतदाताओं (service voters) को इलेक्ट्रॉनिक रूप से (पूर्व में डाक द्वारा प्रेषित) डाक मतपत्रों के त्वरित प्रेषण का वैकल्पिक तरीका प्रदान करने के लिए किया गया था। इसके तहत मतदाता डाक मतपत्र को डाउनलोड कर सकते हैं और इस प्रकार डाले गए मत डाक के माध्यम से पीठासीन अधिकारी द्वारा प्राप्त किये जा सकते हैं।
- **अन्य प्रमुख सुधार:** इसके अंतर्गत चुनाव चक्र के पुनर्गठन तथा एक हाइब्रिड इलेक्टोरल सिस्टम की स्थापना के प्रस्ताव शामिल हैं। (इनकी चर्चा बाद के खंडों में की गई है)

5.1.1. हाइब्रिड इलेक्टोरल सिस्टम की मांग

(Demand for a Hybrid Electoral System)

सुर्खियों में क्यों?

विभिन्न राजनीतिक दलों ने संसदीय पैनल को बताया है कि वर्तमान ***फर्स्ट पास्ट द पोस्ट*** सिस्टम को हाइब्रिड सिस्टम से प्रतिस्थापित किए जाने की आवश्यकता है।

हाइब्रिड इलेक्टोरल सिस्टम या मिश्रित निर्वाचक प्रणाली क्या है?

- हाइब्रिड सिस्टम/मिश्रित प्रणाली ऐसी निर्वाचक प्रणाली को संदर्भित करती है जिसमें एक से अधिक निर्वाचक प्रणालियों की सकारात्मक विशेषताओं को शामिल करते हुए दो प्रणालियों का एक ही में विलय कर दिया जाता है।
- मिश्रित प्रणाली में, दो निर्वाचक प्रणाली भिन्न-भिन्न सिद्धांतों का उपयोग करते हुए, एक साथ संचालित होती हैं। उन्हीं मतदाताओं द्वारा मत दिए जाते हैं और वे दोनों प्रणालियों के अंतर्गत प्रतिनिधियों के निर्वाचन में योगदान देते हैं।
- उनमें से एक प्रणाली बहुलता/बहुमत प्रणाली (या कभी-कभी एक 'अन्य' प्रणाली) है, सामान्यतः एकल सदस्यीय जिला प्रणाली, और दूसरी 'सूची PR प्रणाली'(List PR system) है।

VISION IAS

- मिश्रित प्रणाली के दो रूप हैं-
    - जब दो प्रकार के चुनावों का परिणाम PR स्तर पर सीट आवंटन के साथ जुड़ा हुआ होता है (जो बहुसंख्यक / बहुमत /या अन्य जिला सीटों पर क्या हुआ, इस पर निर्भर होता है) और साथ ही किसी भी असंगतता के लिए क्षतिपूर्ति की व्यवस्था करता है, तो ऐसी प्रणाली को **मिश्रित सदस्य आनुपातिक प्रतिनिधित्व (MMP) प्रणाली कहा जाता है।**
    - जहां निर्वाचनों के दो समुच्चय पृथक और विशिष्ट होते हैं तथा सीट आवंटन के लिए एक-दूसरे पर निर्भर नहीं होते हैं, ऐसी प्रणाली को **समानांतर प्रणाली** कहा जाता है।
- जहां MMP प्रणाली का सामान्यत: आनुपातिक परिणाम होता है, वहीं समानांतर प्रणाली द्वारा ऐसे परिणाम की संभावना होती है, जिसकी अनुरूपता बहुलता/बहुमत की आनुपातिकता और PR प्रणाली की आनुपातिकता के मध्य होती है।

विभिन्न प्रकार की निर्वाचक प्रणालियां

- *फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम*।
- आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली।
- मिश्रित प्रणालियां, जिन्हें कभी-कभी हाइब्रिड सिस्टम (hybrid system) भी कहा जाता है।

भारत में, हम मतदान की FPTP और साथ ही आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली दोनों का अनुसरण करते हैं। उदाहरण के लिए, लोकसभा के चुनावों के लिए FPTP और राष्ट्रपति निर्वाचन के लिए हम आनुपातिक प्रतिनिधित्व का अनुसरण करते हैं।

हाइब्रिड सिस्टम की मांग क्यों की जा रही है?

- यह तर्क दिया जा रहा है कि वर्तमान निर्वाचक प्रणाली में बहुमत की आकांक्षाएं और व्यक्तियों की इच्छा निर्वाचन परिणामों में प्रतिबिंबित नहीं हो रही हैं।
- जब FPTP की वर्तमान प्रणाली को अपनाए जाने के बाद से (एक दल का शासन) परिस्थितियों में बहुत बदलाव आया है। परन्तु, वर्तमान में मतों का विभाजन होने के कारण 20% वोट हिस्सेदारी प्राप्त होने के बाद भी दल को एक भी सीट नहीं मिलती है, जबकि 28% हिस्सेदारी वाला दल अनुपातिक रूप से बड़ी संख्या में सीटें प्राप्त कर लेता है। उदाहरण के लिए, मार्च, 2017 में आयोजित उत्तर प्रदेश का विधानसभा चुनाव।
- इस प्रणाली का विभिन्न यूरोपीय देशों द्वारा सफलतापूर्वक अनुसरण किया गया है।
- **विधि आयोग की 170वीं और 255वीं रिपोर्ट** में भी यह सुझाव दिया गया था कि वर्तमान लोकसभा में 25% या 136 अतिरिक्त सीटों की वृद्धि की जानी चाहिए और उन्हें आनुपातिक प्रतिनिधित्व द्वारा भरा जाना चाहिए।
- कई व्यक्तियों के द्वारा संकेत किया जाता है कि वर्तमान प्रणाली "अल्पसंख्यक लोकतंत्र" को प्रतिबिंबित करती है, जो स्वतंत्रता के पश्चात् से देश में चली आ रही है।

FPTP की वर्तमान प्रणाली के बारे में

- एकल सदस्य जिलों और उम्मीदवार-केंद्रित मतदान का उपयोग करने वाली *फर्स्ट पास्ट द पोस्ट सिस्टम* बहुलता/बहुमत प्रणाली का सरलतम रूप है।
- मतदाता के समक्ष नामांकित उम्मीदवारों का नाम प्रस्तुत किया जाता है और वह उनमें से एक और केवल एक को चुनकर मत देता है।
- विजयी उम्मीदवार केवल वही व्यक्ति होता है, जो सबसे अधिक मत प्राप्त करता है। सिद्धांतत:, वह दो मतों से भी निर्वाचित हो सकता है, यदि अन्य सभी उम्मीदवारों को केवल एक ही मत मिले।
- इस प्रणाली का UK में *हाउस ऑफ कॉमन्स,* US कांग्रेस के दोनों सदनों और भारत एवं कनाडा में निचले सदन के सदस्यों को चुनने के साथ-साथ ऐसे अन्य स्थानों पर उपयोग किया जाता है जो पहले ब्रिटिश उपनिवेश हुआ करते थे।

हमने FPTP क्यों चुना?

देश ने निम्नलिखित कारणों से निर्वाचन प्रणाली के लिए FPTP को चुना -

- **सरलता -** स्वतंत्रता के समय अधिकांश भारतीय आबादी साक्षर नहीं थी और PR प्रणाली की जटिलता को समझने में असमर्थ थी।
- **सुपरिचितता (Familiarity) -** स्वतंत्रता पूर्व से FPTP प्रणाली के आधार पर नियमित रूप से कई चुनावों का आयोजन किया गया था, जिसने इस प्रक्रिया को देश के जन सामान्य के लिए अधिक सुपरिचित बना दिया था।
- **स्थायित्व के पक्ष में-** संसदीय सरकार के लिए आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (PR system) अनुपयुक्त प्रतीत होती है क्योंकि इस प्रणाली में राजनीतिक दलों की संख्या में वृद्धि करने की प्रवृत्ति होती है और इसके परिणामस्वरूप सरकार अस्थिर हो सकती है।
- PR प्रणाली दल को सत्ता के प्रमुख केंद्र के रूप में स्थापित करती है, जबकि FPTP निश्चित विशिष्ट क्षेत्र के लोगों के प्रतिनिधि के

VISION IAS

रूप में एक व्यक्ति को चुनती है। स्वतंत्रता के समय भारत की स्थिति देखते हुए, यह हमारे नेताओं के लिए बड़ी चिंता का विषय था, क्योंकि लोग एक विशेष राजनीतिक दल की अपेक्षा अपने नेताओं से अधिक जुड़े हुए थे।

FPTP और PR के बीच का अंतर

आनुपातिक प्रतिनिधित्व	फर्स्ट पास्ट द पोस्ट
• डाले गए मतों को सत्यतापूर्वक जीती गई सीटों में परिवर्तित करता है। • अल्पसंख्यक दल को प्रतिनिधित्व की सुविधा प्रदान करता है। • दलों और हित समूहों के मध्य सत्ता-साझेदारी को अधिक स्पष्ट करता है। • एकल पार्टी का प्रभुत्व मुश्किल होता है। • यह प्रणाली छोटे दलों को प्रतिनिधित्व से बाहर नहीं करती है।	• यह डाले गए मतों का संपूर्ण रूप से जीती गई सीटों में परिवर्तित नहीं करता है। • इससे अल्पसंख्यक दलों को प्रोत्साहन नहीं मिल सकता है। • विभिन्न समूहों के बीच सत्ता साझेदारी अधिक स्पष्ट नहीं होती है। • यह प्रणाली एक-दलीय सरकारों को जन्म देती है। • यह प्रणाली छोटे दलों को 'उचित' प्रतिनिधित्व से बाहर कर देती है।

5.1.2. लोकसभा एवं विधानसभाओं के एक साथ चुनाव

(Simultaneous Elections)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, विधि आयोग ने लोकसभा एवं विधानसभाओं के **एक साथ चुनाव कराने** से सम्बंधित श्वेत पत्र (व्हाइट पेपर) जारी किया।

एक साथ चुनाव (SE) से सम्बंधित तथ्य

- एक साथ चुनाव कराने का आशय **भारतीय चुनाव चक्र को इस प्रकार संरचित** करना है कि लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं के चुनाव एक ही समय में हों तथा किसी **विशिष्ट निर्वाचन क्षेत्र के मतदाता** राज्य विधानसभा और लोकसभा, दोनों के लिए **एक ही दिन** मतदान करें।
- इसका **अर्थ यह नहीं है** कि देशभर में लोकसभा और राज्य विधानसभाओं के लिए एक ही दिन मतदान किया जाना आवश्यक है।
- अतीत में, 1967 तक भारत में **एक साथ चुनाव आयोजित किये जाते थे,** किन्तु ये **विधानसभाओं के समय पूर्व विघटन** के कारण बाधित हो गए।
- लोकतंत्र के तृतीय स्तर के चुनाव एक साथ होने वाले चुनावों में सम्मिलित नहीं किया जा सकते क्योंकि -
  - यह राज्य सूची का विषय है।
  - स्थानीय निकायों की संख्या अत्यधिक है।

एक साथ चुनाव करवाए जाने की आवश्यकता

- बार-बार चुनाव करवाए जाने के कारण **आचार संहिता लंबे समय तक लागू रहती है,** परिणामस्वरूप विकास कार्यक्रमों, कल्याणकारी योजनाओं, पूंजीगत परियोजनाओं का कार्यान्वयन बाधित होता है तथा इससे **पॉलिसी पैरालिसिस एवं गवर्नेंस डेफिसिट** की स्थिति उत्पन्न होती है।
- चुनाव में राजनीतिक दलों, उम्मीदवारों जैसे **विभिन्न हितधारकों द्वारा भारी मात्रा में धन का व्यय** किया जाता है। चुनाव जीतने के लिए निर्धारित सीमा से अधिक व्यय करने की प्रवृति देश में **भ्रष्टाचार और काले धन के बढ़ने के लिए उत्तरदायी प्रमुख कारणों में से एक** है।
- सरकारी दृष्टिकोण से देखने पर स्पष्ट होता है कि चुनावों को संपन्न करवाने के लिये प्रशासनिक मशीनरी के एक पूरे समूह की आवश्यकता होती है। नतीजतन, बार-बार होने वाले चुनाव **प्रक्रिया प्रबंधन की प्रशासनिक लागत** में वृद्धि करते हैं।
- इसके अतिरिक्त, आम तौर पर पूरे चुनाव के दौरान **सुरक्षा बलों (विशेष रूप से CAPF) की तैनाती** होती है। ऐसा न होने पर उन सुरक्षा बलों को आंतरिक सुरक्षा उद्देश्यों के लिए तैनात किया जा सकता है।
- बार-बार होने वाले चुनाव **विधायी कामकाज में बाधा** डालते हैं, क्योंकि **आगामी चुनाव जीतने की बाध्यता** अल्पकालिक राजनीतिक अनिवार्यता को तात्कालिक प्राथमिकता बना देती है।
- इससे **निर्वाचन आयोग की सुविधा बढ़ेगी**। चूंकि मतदाता, मतदान कर्मी और मतदान केंद्र सभी समान होते हैं अतः इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता कि मतदाता एक या दो अथवा तीन चुनावों के लिए मतदान कर रहा है।
- **अन्य मुद्दे-** बार-बार होने वाले चुनाव **सामान्य सार्वजनिक जीवन में व्यवधान** और आवश्यक सेवाओं के कामकाज को प्रभावित करते हैं। चूंकि चुनावों के दौरान जाति, धर्म और सांप्रदायिक मुद्दे अत्यधिक चर्चा में होते है, अत: चुनावों की आवृत्ति में वृद्धि देश भर में ऐसे **विभाजनकारी मुद्दों को कायम रखती है।**

VISION IAS

एक साथ चुनाव की आलोचना

- समयावधियों के सिंक्रनाइज़ेशन के लिए विभिन्न विधान सभाओं की अवधि में कमी या विस्तार की आवश्यकता होगी जिसे **सत्तारूढ़ दल** (अवधि के संकुचन के मामले में) **या विपक्षी दल** (अवधि के विस्तार के मामले में) द्वारा **समर्थित नहीं किया जाएगा।**
- इसके अतिरिक्त यह भी विवाद का विषय है कि क्या भारत के निर्वाचन आयोग के लिए इतने व्यापक स्तर पर **चुनाव आयोजित करना व्यवहार्य है।**
- यदि एक साथ चुनाव के लक्ष्य को प्राप्त कर भी लिया जाता है तो इसे बनाए रखना मुश्किल होगा क्योंकि अनुच्छेद 83 (2) और 172 (1) के तहत क्रमशः **लोकसभा और राज्य विधानसभाओं की अवधि निश्चित नहीं है।**
- **अल्प-सूचित मतदाताओं** के द्वारा चयन के कारण a) राज्य विधानसभा चुनावों में मतदान के दौरान मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करने वाले राष्ट्रीय मुद्दे; या b) लोकसभा चुनावों में मतदाताओं के व्यवहार को प्रभावित करने वाले क्षेत्रीय मुद्दे उत्पन्न हो सकते हैं।
- बार-बार होने वाले चुनावों के कारण **राजनीतिक दल के नेता, निरंतर मतदाताओं के संपर्क में रहते हैं** तथा इससे नेताओं की जनता के प्रति **उत्तरदायित्व में वृद्धि** होती है। यह नेताओं को 'जनता की नब्ज' को टटोलने में मदद करता है और विभिन्न स्तरों पर चुनावी परिणाम समय-समय पर सरकार को उसके कार्यक्रमों में **आवश्यक सुधार** की गुंजाइश से अवगत कराते रहते हैं।
- एक साथ चुनाव केवल राष्ट्रीय दलों के अनुकूल है क्योंकि केवल एक राज्य में चुनाव में भाग लेने वाले दलों पर वस्तुतः उतना ही भार होगा जितना वर्तमान में है।
- इससे सरकार को सत्ता से हटाने की विधायिका की शक्ति में कटौती हो सकती है। 'सृजनात्मक अविश्वास प्रस्ताव' रखना अनिवार्य होगा। इसका अर्थ है कि कोई विपक्षी दल अविश्वास प्रस्ताव लाने में तब तक सक्षम नहीं होगा जब तक कि वह स्वयं एक नई सरकार का गठन करने की क्षमता न रखता हो।

ड्राफ्ट पेपर की कुछ सिफारिशें

- RPA अधिनियम 1951 की धारा 2 में **"एक साथ चुनाव" की परिभाषा** को जोड़ा जा सकता है।
- संविधान के **अनुच्छेद 83 और 172** (जो क्रमशः संसद के दोनों सदनों और राज्य विधायिकाओं की अवधि से संबंधित हैं) को **RPA अधिनियम 1951 के अनुभाग 14 और 15** (क्रमशः संसद के दोनों सदनों और राज्य विधायिकाओं में आम चुनावों की अधिसूचना से संबंधित) के साथ उचित रूप से संशोधित किया जाना चाहिए। इसका अर्थ यह होगा कि मध्यावधि चुनावों के पश्चात् गठित नई लोकसभा और विधानसभा, के**वल शेष अवधि के लिए ही कार्यरत रहेगी।**
- संविधान की दसवीं अनुसूची के अनुच्छेद 2(1) (b) के तहत उल्लिखित **दल बदल विरोधी कानून** को एक अपवाद के रूप में हटाया जाए, ताकि त्रिशंकु सदन की स्थिति में गतिरोध से बचा जा सके।
- आम चुनावों की अधिसूचना जारी करने के लिए 6 महीने की सांविधिक सीमा को बढ़ाने हेतु **RPA, 1951 की धारा 14 और 15** को संशोधित किया जाना चाहिए ताकि एक साथ चुनाव आयोजित करने में चुनाव आयोग को लचीलापन प्रदान किया जा सके।
- **अविश्वास प्रस्ताव के कारण** विधानसभा के **समयपूर्व विघटन का एक विकल्प** यह हो सकता है कि अविश्वास प्रस्ताव लाने वाले सदस्यों द्वारा उसके साथ ही वैकल्पिक सरकार के गठन का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया जाए।
- सरकार को स्थिरता प्रदान करने हेतु लोकसभा/विधानसभा का **नेतृत्व करने के लिए प्रधानमंत्री/मुख्यमंत्री का सम्पूर्ण सदन द्वारा चुनाव किया जा सकता है,** जैसे कि लोक सभा के अध्यक्ष को चुना जाता है।

भारत में एक साथ चुनाव आयोजित करवाने के अत्यंत कठिन कार्य के क्रियान्वयन हेतु सभी हितधारकों के मध्य समन्वय और विचार-विमर्श की आवश्यकता होगी। इसके अतिरिक्त, लोकसभा और विधानसभाओं के कार्यकाल का सिंक्रनाइज़ेशन **(संसदीय समिति द्वारा दिए गए सुझाव के अनुसार)** एक बार में करने के बजाय विभिन्न चरणों में किया जा सकता है। कानून के माध्यम से एक साथ चुनाव आयोजित करने हेतु मजबूर करने के स्थान पर, उन राज्य विधानसभाओं में एक साथ चुनाव आयोजित करने के प्रयास किए जाने चाहिए जिनका कार्यकाल एक साथ पूर्ण हो रहा है।

5.2. चुनावी वित्त-पोषण में सुधार

(Electoral Funding Reforms)

वित्तीय उत्तरदायित्व चुनावी सुधारों में निरंतर चिंता का प्रमुख विषय बना हुआ है। चुनावी वित्त-पोषण में सुधार हेतु विभिन्न उपायों यथा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 29 (1) (a) के तहत चुनावी अनुदान की अधिकतम सीमा को 20,000 रूपए से कम कर 2000 रूपए तक करना, चुनावी बॉन्ड का प्रस्ताव, RTI के तहत राजनीतिक दलों के IT रिटर्न का जनता के समक्ष प्रकटीकरण आदि को अपनाया जा रहा है।

VISION IAS

विभिन्न सुधारों के बावजूद, चुनावी वित्त-पोषण अभी भी विभिन्न समस्याओं से प्रभावित है, यथा:

- **चंदे में अपारदर्शिता:** राजनीतिक दलों को अधिकांश धन (लगभग 70%) नकद द्वारा अज्ञात चंदे के रूप में प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त, दलों को आयकर से छूट प्राप्त होती है, जो काले धन के जमाखोरों को एक माध्यम प्रदान करता है।
- **रिश्वत के विरुद्ध कार्रवाई का अभाव:** निर्वाचन आयोग ने RPA, 1951 को सक्षम बनाने के लिए एक नए खंड, 58B को सम्मिलित करने की मांग की है। इससे यदि किसी दल द्वारा निर्वाचन क्षेत्र के मतदाताओं को रिश्वत दी जाती है तो उसके विरुद्ध कार्रवाई की जा सकेगी। हालाँकि इसके आधार पर अभी तक कोई कार्यवाही नहीं हुई है।
- **कॉर्पोरेट चंदे की सीमा समाप्ति:** किसी कंपनी द्वारा राजनीतिक दल को चंदा देने की सीमा (उसे लाभ के अधिकतम 7.5%) को हटा लिया गया है। इस प्रकार अब विशेष रूप से राजनीतिक दलों को चंदा देने के लिए शेल कंपनियों को स्थापित किया जा सकता है।
- **विदेशी वित्त पोषण की अनुमति:** विदेशी अंशदायी (विनियमन) अधिनियम (FCRA) के संशोधन ने राजनीतिक दलों के विदेशी वित्त पोषण का मार्ग खोल दिया है। यह अभिशासन में संभावित हस्तक्षेप का कारण बन सकता है।
- **पारदर्शिता का अभाव:** RPA, 1951 की धारा 29 के तहत प्रावधानों के बावजूद, राजनीतिक दल निर्वाचन आयोग को अपनी वार्षिक लेखापरीक्षा रिपोर्ट प्रस्तुत नहीं करते हैं। दलों द्वारा उन्हें RTI अधिनियम के दायरे में लाए जाने की भी निंदा की गई है।

5.2.1. चुनावी बॉन्ड

(Electoral Bonds)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, सरकार द्वारा बजट 2017-18 में घोषित की गयी **चुनावी बॉन्ड योजना (Electoral Bonds Scheme) को अधिसूचित** किया गया है। इसका उद्देश्य राजनीतिक वित्तपोषण में पारदर्शिता को बढ़ाना है।

पृष्ठभूमि

- एसोसिएशन ऑफ़ डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR) के एक विश्लेषण के अनुसार, 2004-05 से 2014-15 के मध्य राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दलों को प्राप्त कुल आय का 69% भाग **अज्ञात स्रोतों से चंदे के रूप** में प्राप्त हुआ था।
- चुनाव सुधारों पर **विधि आयोग की 255वीं रिपोर्ट** के अनुसार राजनीतिक **वित्तपोषण में अपारदर्शिता** का परिणाम बड़े दानदाताओं द्वारा सरकार को "अपने पक्ष में करने (लॉबिंग) एवं उस पर प्रभाव स्थापित करने" के रूप में सामने आता है।
- चुनावी बॉन्ड की घोषणा 2017-18 के बजट में की गई थी। इसके लिए, वित्त विधेयक, 2017 की धारा 133 से 136 के माध्यम से रिज़र्व बैंक ऑफ़ इंडिया एक्ट, 1934 {धारा 31(3)} एवं जन-प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में आवश्यक संशोधन किए गए।

चुनावी बॉन्ड के लाभ

- **राजनीतिक वित्तपोषण में काले धन पर रोक:** चूँकि चुनावी बॉन्ड की खरीद KYC अनुपालन के माध्यम से की जाएगी, अत: इससे 'क्लीन मनी' द्वारा वित्तपोषण को प्रोत्साहन मिलेगा।
- **पारदर्शिता एवं जवाबदेहिता को बढ़ावा-** आयकर रिटर्न भरना एक स्वागत योग्य कदम है क्योंकि इससे राजनीतिक दलों को चंदे के रूप में प्राप्त राशि का मूल्यांकन संभव होगा।
- **अनामिकता (Anonymity)–** अनामिकता, भारत की "प्रतिशोधपूर्ण" राजनीतिक संस्कृति (जिससे तहत कोई दल किसी विरोधी दल को चंदा देने पर दानकर्ता को दंडित कर सकता है) के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करेगी।
- चुनावी बॉन्ड को 15 दिनों के भीतर भुनाया जाना आवश्यक है। यह संक्षिप्त अवधि इसे **समानांतर मुद्रा** बनने से रोकेगी।
- **पात्रता हेतु कड़े मानदंड** उन राजनीतिक दलों को हतोत्साहित करेंगे, जिनकी स्थापना का उद्देश्य मात्र कर अपवंचन है।

चुनावी बॉन्ड की सीमाएँ

- **अपारदर्शिता-** किस दल को, किसके द्वारा, कितनी धनराशि दान की गयी है; यह जानकारी केवल निश्चित निकायों को ही रहेगी। इस प्रकार जनता के लिए अपारदर्शिता का तत्व बना रहेगा।
- जन प्रतिनिधित्व अधिनियम,1951 की धारा 29C के तहत प्रावधान किया गया है कि सभी राजनीतिक दलों को 20,000 रुपए से अधिक के चंदे की सूचना चुनाव आयोग को देनी होगी। परन्तु वित्त विधेयक में किए गए संशोधन में चुनावी बॉन्ड को इस धारा के दायरे से बाहर रखा गया है। अत: दलों को चुनावी बॉन्ड के रिकाड्‌र्स, जांच हेतु चुनाव आयोग के समक्ष प्रस्तुत नहीं करने होंगे।

VISION IAS

- आयकर अधिनियम 1961 की धारा 13A के अंतर्गत राजनीतिक दलों द्वारा वार्षिक टैक्स-रिटर्न दाखिल करना अनिवार्य बनाया गया है। किन्तु वित्त विधेयक में **चुनावी बॉन्ड को आयकर अधिनियम के दायरे से बाहर** रखे जाने संबंधी प्रावधान भी किये गये है। इस प्रकार, 20,000 रुपए से अधिक का चंदा देने वालों के नाम, पतों आदि का ब्यौरा रखने की आवश्यकता भी समाप्त हो जाएगी।
- **सत्ताधारी दल के प्रति पक्षपाती होना–** एक सरकारी बैंक होने के नाते SBI सभी दानदाताओं की सूचना रखेगा, यह सत्ताधारी दल के लिए लाभकारी हो सकता है। साथ ही, इससे विपक्षी दल को दान देने वाले व्यक्तियों के लिए दंड का भय उत्पन्न होगा।

आगे की राह

राजनीतिक वित्तपोषण में अधिक पारदर्शिता सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक उपाय निम्नलिखित हो सकते हैं-

- **पूर्णतः डिजिटल लेन-देन पद्धति** को अपनाना।
- कॉर्पोरेट-राजनीतिक दलों के मध्य बनने वाले गठजोड़ को समाप्त करने के लिए एक निर्धारित सीमा से अधिक दी गई चंदे की राशि को सार्वजनिक करना।
- **राजनीतिक दलों को सूचना के अधिकार (RTI) के दायरे में लाया जाना चाहिए** जैसा कि भूटान व जर्मनी जैसे देशों द्वारा किया गया है।
- एक राष्ट्रीय चुनाव निधि (**नेशनल इलेक्टोरल फण्ड**) बनायी जानी चाहिए जहाँ दानदाता चंदा दे सकें तथा इस प्रकार एकत्रित कोष को विभिन्न राजनीतिक दलों के मध्य पिछले चुनावों में उनके प्रदर्शन के आधार पर बाँट दिया जाना चाहिए। इससे काले धन पर लगाम लगेगी एवं दान देने वालों की गोपनीयता भी बनी रहेगी।
- चुनावों की उच्च लागत को देखते हुए अतीत में चुनावों के राज्य वित्तपोषण का सुझाव दिया गया था।

राज्य वित्तपोषण के पक्ष में तर्क	**राज्य वित्तपोषण के विपक्ष में तर्क**
• राज्य द्वारा वित्तपोषण से दल और उम्मीदवारों में वित्त के सम्बन्ध में पारदर्शिता बढ़ जाती है, क्योंकि वित्तपोषण के साथ-साथ कुछ प्रतिबंध भी लगाए जा सकते हैं। • राज्य द्वारा वित्तपोषण से अमीर लोगों और अमीर माफियाओं के प्रभाव को सीमित किया जा सकता है, जिससे चुनाव प्रक्रिया को शुद्ध किया जा सकता है। • यह एक दूसरे को लाभ देने की प्रक्रिया को नियंत्रित करेगा और इस प्रकार भ्रष्टाचार को रोकने में सहायक हो सकता है। • हालाँकि राज्य द्वारा वित्तपोषण दलों में आंतरिक लोकतंत्र की मांग करता है, जिससे महिलाओं तथा कमजोर वर्गों के प्रतिनिधित्व को प्रोत्साहित किया जा सके। • भारत में, उच्च स्तर की गरीबी के कारण, सामान्य नागरिकों से राजनीतिक दलों के लिए अधिक योगदान करने की उम्मीद नहीं की जा सकती है। इसलिए पार्टियां कॉरपोरेट घराने और अमीर व्यक्तियों द्वारा वित्तपोषण पर निर्भर करती हैं। • इंद्रजीत गुप्त समिति 1998, भारतीय विधि आयोग, 2nd ARC,	• राज्य वित्तपोषण के माध्यम से चुनाव में करदाताओं को उन राजनीतिक दलों या उम्मीदवारों का समर्थन करने के लिए विवश किया जाता है, जिनके विचारों से वे सहमत नहीं हैं। • राज्य के वित्तपोषण द्वारा स्थिरता को प्रोत्साहित किया जाता है जो स्थापित दलों या उम्मीदवारों को सत्ता में बनाए रखता है और नये दलों के लिए आगे की राह को कठिन बना देता है। • राज्य वित्तपोषण से राजनीतिक नेताओं और नागरिक समाज के बीच दूरियां बढ़ जाती हैं, क्योंकि पार्टियां पार्टी निधि जुटाने के लिए नागरिकों पर निर्भर नहीं रहती हैं। • राजनीतिक पार्टियां नागरिक समाज का हिस्सा होने की बजाय राज्य का अंग बन जाती हैं। • यह उम्मीदवारों को केवल मौद्रिक लाभ लेने के लिए चुनाव लड़ने हेतु प्रेरित कर सकता है।

VISION

संविधान के कार्य की समीक्षा करने के लिए राष्ट्रीय आयोग सहित विभिन्न समितियों ने राज्य द्वारा चुनावों के वित्त पोषण का समर्थन किया है।	• यह भी संभव है कि राज्य वित्तपोषण का उपयोग पूरक के रूप में किया जाए न कि उम्मीदवार द्वारा किये जाने वाले व्यय के विकल्प के रूप में।

5.3 लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम से सम्बंधित मुद्दे

(Issues Related To RPA)

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम (RPA), 1951, संसद और राज्य विधानमंडल के चुनावों के संचालन, चुनाव अपराध, राजनीतिक दलों के पंजीकरण आदि के संबंध में नियमों और विनियमों को अधिनियमित करता है। विगत कुछ वर्षों में, इससे सम्बंधित विभिन्न मुद्दों को उठाया गया है। इस सन्दर्भ में हाल ही उठाये गए मुद्दे निम्नलिखित हैं:

महत्वपूर्ण धाराएं	सम्बंधित मुद्दे
धारा 29A, जो निर्वाचन आयोग (EC) में राजनीतिक दलों के पंजीकरण से संबंधित है।	• यह EC को राजनीतिक दल के पंजीकरण को रद्द करने की शक्ति प्रदान नहीं करता है। • विनियामक शक्तियों की कमी राजनीतिक दलों की संख्या में भारी वृद्धि कर रही है। वर्तमान में कुल पंजीकृत राजनीतिक दलों में से लगभग 20 प्रतिशत ही चुनाव में भाग लेते हैं। शेष 80 प्रतिशत दल चुनावी प्रणाली और सार्वजनिक धन पर बोझ बनते हैं क्योंकि उन्हें विभिन्न प्रोत्साहन प्रदान किये जाते हैं। • हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपराधी व्यक्ति को राजनीतिक दल के गठन की अनुमति न देने या इस धारा के तहत पार्टी के पदाधिकारी बनने से अयोग्य घोषित करने की ECI की शक्तियों की जांच करने का निर्णय लिया है।
धारा 33 (7) जो किसी उम्मीदवार को एक ही समय में दो सीटों से चुनाव लड़ने की अनुमति प्रदान करती है। (इस धारा को दिनेश गोस्वामी कमेटी की सिफारिश के आधार पर उम्मीदवारों को दो सीटों से अधिक से चुनाव लड़ने से प्रतिबंधित करने के लिए जोड़ा गया था)	• हाल ही में ECI ने एक सीट से चुनाव लड़ने की अनुमति देने के लिए इस धारा में संशोधन का समर्थन किया है। इससे पूर्व, विधि आयोग ने भी यह प्रस्तावित किया था। • निम्नलिखित आधारों पर दो सीटों से चुनाव लड़ने का विरोध किया जाता है: ○ अतिरिक्त सीट रिक्त हो जाने पर उप-चुनाव आयोजित करने हेतु सार्वजनिक धन पर **अतिरिक्त वित्तीय बोझ।** ○ **यह उन भावी नेताओं के साथ अन्यायपूर्ण है जिन्हें बड़े नेताओं के लिए अपनी सीट छोड़नी पड़ती है।** ○ नेताओं द्वारा इसका उपयोग उनके **निम्नस्तरीय राजनीतिक प्रदर्शन के चलते उनकी विफलता के विरुद्ध सुरक्षा उपाय के रूप में** किया जाता है। ○ वित्तीय रूप से अपेक्षाकृत कम सुदृढ़ उम्मीदवारों के प्रति भेदभाव। ○ यदि लोकतंत्र में **'एक व्यक्ति, एक वोट'** का सिद्धांत आदर्श है तो **'एक उम्मीदवार, एक निर्वाचन क्षेत्र'** का भी अनुपालन किया जाना चाहिए। ○ मतदाताओं के साथ अन्याय क्योंकि रिक्त सीट को कम महत्वपूर्ण निर्वाचन क्षेत्र के रूप में देखा जाता है और मतदाताओं के प्रति विश्वासघात के समान माना जाता है। • यदि मौजूदा प्रावधानों को बनाए रखा जाता है तो रिक्त सीट के **उप-चुनाव की लागत दो सीटों से चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवार को वहन करनी चाहिए।**
लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8, जो MP's और MLA's की निरर्हताओं के नियमों का प्रावधान करती है।	• निर्वाचन आयोग (EC) ने सर्वोच्च न्यायालय में दायर एक **जनहित याचिका** का समर्थन किया है। इसके तहत अपराधी राजनेताओं को चुनाव लड़ने से रोकने और राजनीति के अपराधीकरण को रोकने के लिए विधायिका में उनके प्रवेश पर **आजीवन प्रतिबंध** लगाने की मांग की गई है। • वर्तमान में निरर्हता नियम निम्नानुसार हैं: ○ यदि किसी भी सांसद को गंभीर अपराधों का दोषी ठहराया जाता है तो उसे अधिनियम की **धारा 8 (1), (2)** के तहत **कम से कम छह वर्ष** के लिए निरर्हित तथा **कारावास या जुर्माने** से दंडित किये जाने का प्रावधान है। गंभीर अपराधों के तहत धर्म, भाषा या क्षेत्र के आधार पर

VISION IAS

	शत्रुता का प्रसार; चुनावी कदाचार आदि शामिल हैं। ○ **धारा 8 (3)** के अनुसार कोई भी सांसद जो किसी भी अपराध के लिए दोषी ठहराया गया है और **दो वर्ष या अधिक अवधि के** कारावास से दंडित किया गया है, ऐसी दोषसिद्धि की तिथि से निरर्हित होगा और उसे छोड़े जाने से **छह वर्ष** की अतिरिक्त कालावधि के लिए निरर्हित बना रहेगा।
धारा 123 (3) चुनाव में मत पाने के लिए "भ्रष्ट आचरण" का पालन करने से संबंधित है।	• गत वर्ष, **सर्वोच्च न्यायालय** की सात न्यायाधीशों की खंडपीठ ने फैसला दिया कि **"चुनावी प्रक्रिया में धर्म, वर्ग, जाति, समुदाय या भाषा को कोई भूमिका निभाने की अनुमति नहीं दी जाएगी।"** साथ ही यदि इन विचारों के आधार पर वोट मांगने के लिए अपील की जाती है तो उम्मीदवार के चुनाव को अमान्य घोषित कर दिया जाएगा। • यह भारतीय लोकतंत्र में चुनावों की पंथनिरपेक्ष अवधारणा को संरक्षित करने के लिए आवश्यक है।

5.4 भारत निर्वाचन आयोग से संबंधित मुद्दे

(Issues with Election Commission of India)

भारत निर्वाचन आयोग (ECI) अनुच्छेद 324 के अंतर्गत एक संवैधानिक निकाय है। इसमें चुनावों की प्रक्रिया के अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण संबंधी उत्तरदायित्व निहित हैं। इसमें एक मुख्य निर्वाचन आयुक्त और दो निर्वाचन आयुक्त शामिल होते हैं।

नियुक्ति से संबंधित मुद्दों के समाधान हेतु उठाए जाने वाले कदम:

- **कॉलेजियम द्वारा नियुक्ति:** द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग (2nd ARC) ने अपनी चौथी रिपोर्ट 'शासन में नैतिकता' में कहा है कि भारत निर्वाचन आयोग (ECI) के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति करने के लिए प्रधानमंत्री के नेतृत्व में एक कॉलेजियम की व्यवस्था की जानी चाहिए।
- **निष्पक्ष एवं पारदर्शी चयन को सुनिश्चित करना:** यद्यपि न्यायालय ने स्वीकार किया कि अब तक मुख्य चुनाव आयुक्त तथा चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति निष्पक्ष और राजनीतिक रूप से तटस्थ रही है, परंतु फिर भी विधि में शून्यता को शीघ्र ही भरा जाना चाहिए।
- **EC को संवैधानिक संरक्षण:** वर्तमान में केवल एक सदस्य को संवैधानिक संरक्षण प्राप्त है। इसमें संशोधन कर तीनों सदस्यों को संवैधानिक संरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।
- **उचित रूप से पदोन्नति:** वरिष्ठ चुनाव आयुक्त को मुख्य चुनाव आयुक्त के पद पर स्वतः पदोन्नत करने संबंधी प्रावधानों को कानून में जोड़ा जाना चाहिए। इससे उनमें सुरक्षा की भावना उत्पन्न की जा सकेगी एवं उन्हें कार्यकारी हस्तक्षेप से पृथक रखा जा सकेगा।

अनुच्छेद 324 अनुबंध करता है कि निर्वाचन आयोग मुख्य निर्वाचन आयुक्त और उतने अन्य निर्वाचन चुनाव आयुक्तों से, यदि कोई हों, जितने राष्ट्रपति समय-समय पर नियत करे, से मिलकर बनेगा। मुख्य चुनाव आयुक्त और अन्य चुनाव आयुक्तों की नियुक्ति, संसद द्वारा इस निमित्त बनायी गयी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी।

हालाँकि इसके बाद भी, ECI में होने वाली नियुक्तियां विभिन्न मुद्दों के साथ सम्बद्ध हैं:

- हाल ही में, **चुनाव आयुक्तों (ECs) के कार्यकाल संबंधी सुरक्षा के अभाव** का मुद्दा चर्चा में था। संविधान का अनुच्छेद 324 (5) केवल उस स्थिति में CEC को पदच्युति से संरक्षण प्रदान करता है, जब उसे पदच्युत करने की रीति एवं आधार उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश की पदच्युति की रीति एवं आधार के समान न हों। किन्तु मुख्य निर्वाचन आयुक्त की अनुशंसा पर सरकार किसी अन्य चुनाव आयुक्त को अपदस्थ कर सकती है।
- अनुच्छेद 324 के अंतर्गत CEC एवं अन्य ECs की नियुक्ति संसद द्वारा इस संदर्भ में निर्मित कानून के अनुसार की जाएगी। हालांकि, अभी तक ऐसा कोई कानून नहीं बनाया गया है। इससे एक "अंतराल" निर्मित हुआ है और इस प्रकार इन **महत्वपूर्ण पदों पर की जाने वाली नियुक्तियाँ पूर्णतः कार्यपालिका के नियंत्रण में आ गयी हैं।**
- संविधान ने चुनाव आयोग के सदस्यों के लिए किसी भी प्रकार की योग्यता (विधिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक अथवा न्यायिक) का निर्धारण नहीं किया है।

VISION IAS

- संविधान ने सेवानिवृत्त चुनाव आयुक्त को सरकार द्वारा किसी और नियुक्ति से **वंचित नहीं** किया है।
- मुख्य निर्वाचन आयुक्त तथा अन्य चुनाव आयुक्तों के मध्य **शक्ति विभाजन के संबंध में कोई स्पष्टता नहीं है।**

ECI स्वतंत्रता के पश्चात से ही प्रतिनिधियों के एक समूह से दूसरे समूह को राजनीतिक सत्ता के लोकतांत्रिक हस्तांतरण को सुनिश्चित करता आ रहा है। हालांकि, हाल में यह विभिन्न मुद्दों और विवादों से घिरा रहा है जो EVM मशीनों की खराबी, सत्तारूढ़ सरकार को लाभान्वित करने वाली चुनावी तिथियों की घोषणा, चुनावों में धन एवं बल की भूमिका आदि से सम्बंधित हैं। अतः इसके समाधान हेतु ECI ने निम्नलिखित उपायों को प्रस्तावित किया है:

- हाल ही में, ECI ने उच्चतम न्यायालय से कहा कि **निर्वाचन कानून के तहत नियम बनाने की शक्ति** केंद्र के बजाए इसे दी जानी चाहिए। वर्तमान में, जनप्रतिनिधित्व अधिनियम ने ECI के परामर्श के बाद केंद्र सरकार को नियम बनाने की शक्ति प्रदान की है। हालांकि, केंद्र सरकार इसे स्वीकार करने हेतु बाध्य नहीं है। अतः विभिन्न सुधारों जैसे- राजनीतिक दलों को अपंजीकृत करने की शक्ति, मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए धनबल का उपयोग पाए जाने पर चुनाव को स्थगित अथवा रद्द करने की शक्ति के लिए जनप्रतिनिधित्व अधिनियम,1951 में नए खंड '58 बी 'को सम्मिलित किये जाने आदि को अपनाने की आवश्यकता है।
- इससे पूर्व 2017 में ECI ने किसी भी व्यक्ति द्वारा उसके प्राधिकार के प्रति अवज्ञा अथवा अवमानना व्यक्त करने की स्थिति में उसे दण्डित करने के लिए **न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 में तत्काल संशोधन** की मांग की थी।

अवमानना शक्तियों के पक्ष में तर्क

- **अंतर्राष्ट्रीय उदाहरण:** बहुत से देशों में निर्वाचन प्रबंधन निकायों (उदाहरण- केन्या, पाकिस्तान) के पास अवमानना कार्रवाइयों को प्रारंभ करने के लिए प्रत्यक्ष शक्तियाँ होती हैं।
- **विश्वसनीयता को बनाए रखना:** आयोग लोकतांत्रिक प्रक्रिया के महत्वपूर्ण संरक्षक के रूप में उपस्थित है; अतः इस पर लगाए गए आरोप इसकी विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकते हैं।

ऐसी शक्ति देने के विरुद्ध तर्क

- **आविवेकपूर्ण प्रतिक्रिया की संभावना:** पक्षपातपूर्ण कार्य करने के कुछ गंभीर आरोपों के बदले यह एक अवांछित और बिना समुचित विचार-विमर्श के की गयी प्रतिक्रिया हो सकती है।
- **पारदर्शिता की आवश्यकता:** चूंकि यह निकाय गुप्त मतदान पद्धति का संरक्षक भी है, अतः इसे ईमानदारी एवं निष्पक्षता के अपने ट्रैक रिकॉर्ड को बनाए रखने के लिए अवमानना शक्तियों के बजाय पारदर्शिता का चयन करना चाहिए।
- **गैर-लोकतांत्रिक-** प्रतियोगिता चुनावों का अनिवार्य खंड है। अतः, आलोचना को समाप्त करने की शक्ति लोकतांत्रिक प्रक्रिया को कमजोर कर देगी।
- ECI की निर्णय लेने की शक्ति, शक्ति के पृथक्करण के सिद्धांत के विरुद्ध होगी।
- **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के विरुद्ध:** इसी कारण कनाडा तथा अमेरिका जैसे विशाल लोकतांत्रिक देशों ने भी चुनाव पैनल को अवमानना शक्तियाँ प्रदान नहीं की हैं।
- **पूर्व में अस्वीकृत:** चुनाव सुधारों पर गठित दिनेश गोस्वामी समिति ने तीन दशक पूर्व ही इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था।
- **लोगों की संतुष्टि ही सर्वोच्च** - ECI का लक्ष्य प्रत्येक राजनेता को संतुष्ट करना नहीं है। इसे लोक विश्वास प्राप्त है तथा यह निष्पक्ष निकाय के रूप में जाना जाता है। अतः, इसे केवल लोगों तक पहुंच कर, उनसे पारदर्शिता से प्रक्रिया की व्याख्या करने की आवश्यकता है।

5.5. परिसीमन संबंधी मुद्दे

(Issues in Delimitation)

सुर्खियों में क्यों ?

गृह मंत्रालय ने सिक्किम विधानसभा में सीटों की संख्या को 32 से बढाकर 40 करने का प्रस्ताव पेश किया है। राज्य की विधानसभा में लिंबू और तमांग (सिक्किम में अनुसूचित जनजाति के रूप में अधिसूचित) का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होने के कारण यह वृद्धि प्रस्तावित की गयी है।

भारत में परिसीमन:

- अनुच्छेद 82 संसद को परिसीमन (पुनःसमायोजन) के पहलुओं और विधियों को निर्धारित करने की शक्ति को प्रदान करता है। संसद द्वारा इस शक्ति का प्रयोग 4 बार, 1952, 1962, 1972 और 2002 में परिसीमन आयोग अधिनियम को अधिनियमित करके किया गया है।
- **42 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976** के द्वारा 1971 (जनगणना) के आधार पर सीटों के आवंटन को वर्ष 2000 तक के लिए निश्चित किया गया था, जिसे **84 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 2001** द्वारा बढाकर 2026 तक अगले 25 वर्षों के लिए निश्चित किया गया है।

VISION IAS

- विस्तार करने का मुख्य उद्देश्य **जनसंख्या नियंत्रण के उपायों को प्रोत्साहित करना** था।
- **87 वें संविधान संशोधन अधिनियम 2003 के** द्वारा 2001 की जनगणना के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन का प्रावधान किया गया। यह सीटों या निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या को परिवर्तित किये बिना किया गया था।
- अनुच्छेद 371(f) के अंतर्गत सिक्किम के लिए उपबंधित विशेष संवैधानिक प्रावधान सरकार को एक नये सीमांकन आयोग का गठन किए बिना प्रस्तावित परिवर्तन करने की अनुमति प्रदान करते हैं। संविधान के अनुच्छेद 170 (विधानमंडल की संरचना और उनके परिसीमन के कुछ प्रावधानों से संबंधित) के प्रावधान सिक्किम पर लागू नहीं होते हैं।

परिसीमन से सम्बंधित अन्य संवैधानिक प्रावधान

- अनुच्छेद 81के खंड (2) के अनुसार , प्रत्येक राज्य को लोकसभा में स्थानों का आवंटन ऐसी रीति से किया जाएगा कि स्थानों की संख्या से उस राज्य की जनसंख्या का अनुपात सभी राज्यों के लिए यथासाध्य एक ही हो।
- खंड (3) ने अनुच्छेद 81 के उद्देश्यों हेतु "जनसंख्या" पद से ऐसी पूर्ववर्ती जनगणना में अभिनिश्चित की गयी जनसंख्या अभिप्रेत है, जिसके सुसंगत आंकड़े प्रकाशित हो गए हैं।
- प्रत्येक राज्य को प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में ऐसी रीति से विभाजित किया जाएगा कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या का उसको आवंटित स्थानों का अनुपात समस्त राज्य में यथा साध्य एक ही हो।
- संविधान चुनाव मामलों में न्यायालयों के हस्तक्षेप को प्रतिबंधित करता है। कोई भी न्यायालय निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन अथवा परिसीमन आयोग द्वारा किए गए सीटों के आवंटन से संबंधित किसी भी कानून की वैधता पर प्रश्न नहीं उठा सकता है।

परिसीमन संबंधी मुद्दे:

- **समान प्रतिनिधित्व की अवधारणा का उल्लंघन करता है:** वर्तमान प्रतिनिधित्व व्यवस्था सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के मूल सिद्धांत से विचलित होती है, क्योंकि केरल में मतदाता प्रतिनिधित्व (6.3 सांसद प्रति करोड़ व्यक्ति) राजस्थान के मतदाता प्रतिनिधित्व (4.4 सांसद प्रति करोड़ व्यक्ति) की तुलना में 42% अधिक है।
- **शहरी शासन का निम्न स्तर**: संसद में शहरों के आनुपातिक प्रतिनिधित्व की कमी (सबसे बड़े शहर में तीन मिलियन से अधिक मतदाता हैं जबकि सर्वाधिक छोटे शहरों में 50,000 से कम) उनके वित्त पोषण और बुनियादी ढांचे के विकास में कमी को बढ़ावा देता है।
- **सीटों का निश्चित आवंटन:** वर्तमान जनसंख्या (121 करोड़) को 1971 की जनगणना के 54.81 करोड़ के आंकड़ो के आधार पर प्रतिनिधित्व प्रदान करना हमारी लोकतांत्रिक राजनीति का एक विकृत स्वरूप प्रस्तुत करता है और संविधान के अनुच्छेद 81 के तहत उल्लिखित प्रावधानों का उल्लंघन करता है।
- **सीटों के नियत होने समस्या का समाधान नहीं किया:** 1971 के जनसंख्या के आंकड़ों के आधार पर सीटों के आवंटन को आवश्यक बनाने के संबंध में विभिन्न राज्यों द्वारा 1976 में व्यक्त की गई चिन्ताएं वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं।
- संसद सदस्यों की संख्या में वृद्धि होने से पीठासीन अधिकारी के लिए सदन की कार्यवाही का सुचारु रूप से संचालन भी कठिन होगा।
- परिसीमन अन्य की तुलना में एक दल के पक्ष में किया जा सकता है जैसा कि सिक्किम के उपर्युक्त वर्णित मामले में नस्लीय अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व को कम करने के प्रयास में किया गया।

आगे की राह

- अनुच्छेद 82 और 327 के परिसीमन संबंधी प्रावधान और संबंधित अनुच्छेद इसके सन्दर्भ में विशिष्ट निर्देश नहीं देते। अतः आवधिक परिसीमन की प्रक्रिया को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को सशक्त बनाने की आवश्यकता है।
- शिक्षाविदों, राजनीतिक विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं, सेफ्रोलॉजिस्ट और गैर सरकारी संगठनों आदि की परिसीमन आयोग के सह-सदस्यों के रूप में नियुक्ति।
- सख्त प्रक्रियाओं और दिशानिर्देशों का प्रावधान किया जाना चाहिए ताकि परिसीमन की प्रशासनिक प्रक्रिया में राजनीतिक हस्तक्षेप रोका जा सके।
- निर्वाचन क्षेत्र के परिसीमन में अनुचित प्रक्रियाओं की न्यायिक समीक्षा का प्रावधान।
- जनसंख्या अनुपात के अनुसार लोकसभा और राज्य विधानसभा की सीटों में वृद्धि।
- महिलाओं के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण का प्रावधान।

VISION IAS

6. न्यायपालिका

(Judiciary)

6.1. न्यायिक नियुक्ति

(Judicial Appointment)

सुर्खियों में क्यों?

हाल ही में, केंद्र सरकार ने न्यायाधीश के.एम.जोसेफ को पदोन्नत कर उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त करने से सम्बंधित उच्चतम न्यायालय के कॉलेजियम की सिफारिशों को लौटा दिया है।

न्यायाधीशों की नियुक्ति की पृष्ठभूमि:

- भारतीय संविधान के अनुच्छेद 124 में उल्लिखित है कि भारत के मुख्य न्यायाधीश तथा उच्चतम न्यायालय और राज्य उच्च न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों से परामर्श करने के पश्चात, जिनसे राष्ट्रपति इस प्रयोजन के लिए परामर्श करना आवश्यक समझे, राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्तियां करेगा।
- जबकि उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति (संविधान के अनुच्छेद 217 के तहत) हेतु राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधीश, सम्बंधित राज्य के राज्यपाल और राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करेगा।
- **तीन 'न्यायाधीश वाद' (श्री जज केसेज):** इन तीन मामलों के परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति हेतु कॉलेजियम प्रणाली का निर्माण किया गया। भारत के मुख्य न्यायाधीश, उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों एवं उच्च न्यायालय के तीन सदस्यों (उच्च न्यायालयों में नियुक्तियों के मामले में) की एक समिति नियुक्तियों और स्थानान्तरण से संबंधित निर्णय लेती है।

न्यायिक नियुक्ति से संबंधित वाद:

- **शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य (वर्ष 1974):** इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय में कहा कि उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति में मुख्य न्यायाधीश की स्वीकृति आवश्यक है।
- **तीन 'न्यायाधीश वाद' (श्री जजेस केसेज)**
  - **प्रथम न्यायाधीश वाद या एस.पी.गुप्ता वाद (वर्ष 1981):** इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति को दी गई सिफारिशों को "ठोस आधारों" पर अस्वीकृत किया जा सकता है। इससे इस संबंध में कार्यपालिका को अधिक शक्ति प्राप्त हुई।
  - **द्वितीय न्यायाधीश वाद (वर्ष 1993):** इस वाद को *सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट ऑन रिकॉर्ड एसोसिएशन बनाम यूनियन ऑफ़ इंडिया* के नाम से भी जाना जाता है। इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय दिया कि मुख्य न्यायाधीश को न्यायिक नियुक्तियों एवं स्थानांतरणों पर केवल उच्चतम न्यायालय के दो वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श करने की आवश्यकता है। हालाँकि इन नियुक्तियों पर कार्यपालिका द्वारा उठाई गयी आपत्तियों पर कॉलेजियम अपनी सिफारिशों, जो कार्यपालिका के लिए बाध्यकारी हैं, को परिवर्तित कर भी सकती है और नहीं भी।
  - **तृतीय न्यायाधीश वाद (वर्ष 1998):** मुख्य न्यायाधीश को न्यायिक नियुक्तियों और स्थानांतरणों पर अपना निर्णय लेने के लिए उच्चतम न्यायालय के चार वरिष्ठतम न्यायाधीशों से परामर्श करना चाहिए।

- **राष्ट्रीय न्यायिक नियुक्ति आयोग (NJAC):** 99वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम द्वारा न्यायाधीशों की नियुक्ति की कॉलेजियम प्रणाली को प्रतिस्थापित करने के लिए एक संवैधानिक निकाय के रूप में NJAC की स्थापना की गयी थी। किन्तु उच्चतम न्यायालय ने इस अधिनियम को असंवैधनिक घोषित कर दिया क्योंकि यह संशोधन न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के बीच शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन करता है, जो संविधान की एक मूल विशेषता है। इस प्रकार, उच्चतम न्यायालय ने न्यायाधीशों की नियुक्ति की कॉलेजियम प्रणाली को बहाल किया है।

  केंद्र सरकार ने उच्चतम न्यायपालिका की नियुक्तियों के लिए दिशानिर्देशों का एक नया प्रारूप निर्धारित करने हेतु वर्ष 2016 में एक प्रक्रिया ज्ञापन (Memorandum of Procedure) का मसौदा तैयार किया है। परन्तु वर्तमान में केंद्र सरकार और न्यायपालिका के मध्य इस मुद्दे को लेकर आपसी सहमति की कमी है।

प्रक्रिया ज्ञापन के मसौदे [ड्राफ्ट मेमोरेंडम ऑफ प्रोसेस (MOP), 2016] की विशेषताएं

- उच्चतर न्यायपालिका के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए "योग्यता और सत्यनिष्ठा "को "मुख्य मानदंड" के रूप में शामिल किया जाए।

VISION IAS

- **उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश के रूप में पदोन्नति के लिए प्रदर्शन आधारित मूल्यांकन:** पिछले पांच वर्षों के दौरान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा दिए गए निर्णयों एवं न्यायिक प्रशासन में सुधार के लिए किये गए उनके कार्य का मूल्यांकन।
- उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए, "मुख्य मानदंड" "उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश या उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में उसकी वरिष्ठता" होनी चाहिए।
- उच्चतम न्यायालय में अधिकतम तीन न्यायाधीशों को बार काउंसिल के प्रतिष्ठित सदस्यों एवं प्रतिष्ठित न्यायवादियों के मध्य से उनके संबंधित क्षेत्रों में कार्य निष्पादन के प्रामाणिक रिकार्ड के आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिए।
- उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रिकॉर्ड को बनाए रखने, कॉलेजियम की बैठकों को निर्धारित करने, सिफारिशों को प्राप्त करने तथा नियुक्तियों से संबंधित मामलों में शिकायतों के लिए **उच्चतम न्यायालय में स्थायी सचिवालय की स्थापना** की जानी चाहिए।
- उच्चतम न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में किसी नियुक्ति पर आपत्ति के एक नए आधार के रूप में **राष्ट्रीय सुरक्षा एवं सार्वजनिक हित का समावेशन** किया जाना चाहिए। इसके अंतर्गत की गयी आपत्तियों से कॉलेजियम को अवगत कराया जाएगा जो इस पर अंतिम निर्णय लेगा।

नियुक्ति की कॉलेजियम प्रणाली से सम्बंधित मुद्दे:

- **संवैधानिकता:** संविधान सभा ने न्यायाधीशों की नियुक्तियों के संबंध में भारत के मुख्य न्यायाधीश में वीटो शक्ति निहित करने के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया था।
- **संवैधानिक प्रावधान का उल्लंघन:** भारत के विधि आयोग की 214 वीं रिपोर्ट के अनुसार कॉलेजियम प्रणाली भारत के संविधान के अनुच्छेद 74 का स्पष्ट उल्लंघन करती है। इस अनुच्छेद के तहत राष्ट्रपति, मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह पर कार्य करता है।
- **अलोकतांत्रिक व्यवस्था:** कॉलेजियम प्रणाली गैर-पारदर्शी व्यवस्था है तथा अपनी प्रकृति में एक बंद प्रणाली है, क्योंकि इसमें लोकतंत्र के लिए आवश्यक नियंत्रण एवं संतुलन (checks and balances) की कोई व्यवस्था नहीं है।
- द्वितीय न्यायाधीश वाद में कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य संविधान द्वारा प्रदत्त शक्ति संतुलन को परिवर्तित कर दिया गया।
- **अंकल जज सिंड्रोम:** विधि आयोग ने अपनी 230 वीं रिपोर्ट में कहा है कि कॉलेजियम प्रणाली व्यवस्था में भाई-भतीजा वाद, भ्रष्टाचार और व्यक्तिगत संरक्षण प्रचलित है।
- **मेरिट बनाम वरिष्ठता:** ऐसे कई मामले रहे हैं जहां बेहतर योग्यता और बेहतर रिकार्ड वाले लोगों को दरकिनार कर वरिष्ठता संबंधी नियम के कारण किसी अक्षम व्यक्ति को पद पर नियुक्त किया गया है।

आगे की राह:

- **शक्ति संतुलन:** विधि आयोग ने वर्ष 2008 और 2009 की रिपोर्ट में सुझाव दिया कि संसद को मुख्य न्यायाधीश की सर्वोच्चता को बहाल करने वाला कानून पारित करना चाहिए। इसके साथ ही यह भी सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि न्यायिक नियुक्तियों में कार्यपालिका की भी भूमिका बनी रहे।
- **न्यायिक विशिष्टता के बजाय न्यायिक प्राथमिकता सुनिश्चित करने वाली प्रणाली:** नई प्रणाली को स्वतंत्रता सुनिश्चित करने वाली, विविधता की संघीय अवधारणा का समायोजन करने वाली तथा पेशेवर क्षमता एवं सत्यनिष्ठा को प्रदर्शित करने वाली होना चाहिए। वैश्विक स्तर पर उदार संवैधानिक लोकतंत्रों की प्रवृत्ति ऐसे आयोग को निर्मित करने की रही है जो न्यायपालिका की प्राथमिकता को सुनिश्चित करता है तथा कार्यपालिका से अपने को निरपेक्ष रखता है।
- **नियुक्ति के लिए मानदंड:** न्यायपलिका की पात्रता संबंधी प्रदर्शन तथा योग्यता के मानदंडों को निष्पक्ष रूप से तैयार कर उन्हें सार्वजनिक किया जाना चाहिए। इस तरह के मानदंडों के आधार पर नियुक्ति अथवा गैर-नियुक्ति के कारणों को उचित प्रकार से जाना जा सकता है। हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने कॉलेजियम की अपनी सभी सिफारिशों को सार्वजनिक डोमेन में प्रदर्शित करने का निर्णय लिया है।
- **प्रक्रिया ज्ञापन (MOP) को शीघ्र तय किया जाए:** न्यायाधीश कर्णन वाद में उच्चतम न्यायालय ने संवैधानिक न्यायपालिका में चयन की प्रक्रिया एवं न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया के पुनरीक्षण की आवश्यकता को रेखांकित किया है।

उच्चतम न्यायालय की कॉलेजियम प्रक्रिया को सार्वजानिक डोमेन में प्रदर्शित करना
इस निर्णय के पीछे तर्क:

- **नैतिक दायित्व:** न्यायपालिका ने अपने नैतिक दायित्व को पूरा किया है (विशेषकर NJAC को असंवैधनिक घोषित करने के पश्चात)।
- **सूचना का अधिकार:** न्यायपालिका द्वारा अग्रसक्रिय प्रकटीकरण RTI अधिनियम, 2005 के संबंध में एक स्वागत योग्य कदम है।
- **प्रक्रिया में खुलापन:** राज्य की कार्यकारी व्यवस्था के कामकाज में खुलेपन के साथ-साथ न्यायिक नियुक्तियों एवं स्थानान्तरण सहित न्यायिक प्रक्रिया में भी खुलापन होना चाहिए।

VISIONIAS

- **जानने का अधिकार:** यह लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं और वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मूल अधिकार को सुदृढ़ता प्रदान करेगा क्योंकि जानने का अधिकार इसका एक अंतर्निहित भाग है। कॉलेजियम प्रणाली कि गोपनीयता अभी तक इसका उल्लंघन कर रही थी।

न्यायिक नियुक्तियों में पारदर्शिता को बढ़ावा देने के लिए कुछ अन्य उपाय:

- संभावित उम्मीदवारों का एक पूर्ण और समय-समय पर अद्यतित डेटाबेस उपलब्ध करवाया जाना चाहिए, जो आम जनता को सुलभ हो।
- बार काउंसिल के सदस्यों या बार संगठनों के परामर्श से नामांकन या विज्ञापन द्वारा आवेदन आमंत्रित किया जाना चाहिए।
- नागरिकों को प्रतिरक्षा प्रदान करते हुए (अवमानना और मानहानि के कानूनों से) एवं उनकी गोपनीयता सुनिश्चित करते हुए, चुने गए (शॉर्टलिस्टेड) उम्मीदवारों के संबंध में जनता से राय मांगी जानी चाहिए।
- कॉलेजियम के विचार-विमर्श के वीडियो/ऑडियो का एक पूरा रिकॉर्ड रखा जाना चाहिए।

6.1.1. उच्च न्यायालय में नियुक्तियों से सम्बन्धित मुद्दे

(Issues in Appointment to High Court Judiciary)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय ने उच्च न्यायालय में नियुक्ति से जुड़े कुछ पहलुओं पर स्पष्टीकरण दिया है।

विवरण

- सर्वोच्च न्यायालय में एक याचिका प्रस्तुत की गयी जिसमें राजस्थान उच्च न्यायालय में नियुक्त किए गए दो अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति को सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व के निर्णयों के आधार पर चुनौती दी गई थी। न्यायालय ने निम्नलिखित आधारों पर इसे ख़ारिज कर दिया:
    - सेवानिवृत्त न्यायिक अधिकारियों को **अनुच्छेद 217(2)(A)** के अंतर्गत उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जा सकता है। क्योंकि इसमें यह अनिवार्य नहीं किया गया है कि नियुक्त होने वाला व्यक्ति, नियुक्ति की अधिसूचना जारी किए जाने के समय किसी न्यायिक पद को धारण करता हो।
    - उच्च न्यायालयों के अपर न्यायाधीशों को 2 वर्षों से कम के कार्यकाल के लिए भी नियुक्त किया जा सकता है (**अनुच्छेद 224** के संदर्भ में), भले ही मामलों की लंबितता(PENDENCY) 2 वर्षों से अधिक की हो (जो कि *एस पी गुप्ता बनाम भारत संघ वाद* में मतभेद और विवाद का विषय था)।
- इसके साथ यह भी कहा गया कि उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया को शीघ्रता से संपन्न किया जाना चाहिए।

अनुच्छेद 217- यह अनुच्छेद उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति और पद की शर्तों से सम्बंधित मुद्दों से जुड़े प्रावधान करता है। इसके तहत:

1. उच्च न्यायालय के प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाएगी ... और वह न्यायाधीश, अपर या कार्यकारी न्यायाधीश की दशा में अनुच्छेद 224 में उपबंधित रूप में पद धारण करेगा और किसी अन्य दशा में तब तक पद धारण करेगा जब तक वह 62 वर्ष की आयु प्राप्त नहीं कर लेता है।
2. एक व्यक्ति उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त होने के लिए अर्ह नहीं माना जाएगा यदि वह भारत का नागरिक नहीं है तथा उसने

(A) भारत के राज्यक्षेत्र में कम से कम दस वर्षों तक कोई न्यायिक पद धारण न किया हो; अथवा

(B) कम से कम दस वर्षों तक किसी उच्च न्यायालय या ऐसे दो या अधिक न्यायालयों में लगातार एक अधिवक्ता के रूप में कार्य ना किया हो।

अनुच्छेद 224- अतिरिक्त एवं कार्यकारी न्यायाधीशों की नियुक्ति संबंधी मामलों से सम्बंधित है।

1. अपर न्यायाधीश : किसी उच्च न्यायालय के कार्य में किसी अस्थायी वृद्धि या उसमें कार्य लंबित रहने पर राष्ट्रपति सम्यक् रूप से अर्हित व्यक्तियों को विनिर्दिष्ट अवधि (अधिकतम दो वर्षों तक) के लिए उस न्यायालय का अपर न्यायाधीश नियुक्त कर सकेगा।

2. कार्यकारी न्यायाधीश : जब किसी उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से भिन्न कोई न्यायाधीश अनुपस्थिति के कारण या अन्य कारण से अपने पद के कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ है, तब राष्ट्रपति सम्यक् रूप से अर्हित किसी व्यक्ति को तब तक के लिए उस न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में कार्य करने के लिए नियुक्त कर सकेगा जब तक स्थायी न्यायाधीश अपने कर्तव्यों को पुन: नहीं संभाल लेता है।

3. उच्च न्यायालय के अपर या कार्यकारी न्यायाधीश के रूप में नियुक्त कोई व्यक्ति **बासठ वर्ष** की आयु प्राप्त कर लेने के पश्चात पद धारण नहीं करेगा।

अनुच्छेद 224A- उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश द्वारा राष्ट्रपति की पूर्व सहमति से उच्च न्यायालयों की बैठकों में सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की (अस्थायी न्यायाधीशों के रूप में) नियुक्ति।

VISION IAS

अपर न्यायाधीशों की नियुक्ति में होने वाले विलंब से संबंधित मुद्दे

- यह **अनुच्छेद 224(1) के उद्देश्य को निष्फल** करता है और साथ ही, न्यायपालिका की क्षमता में कमी के कारण विलंब का सामना कर रहे वादियों की आशा व विश्वास को हतोत्साहित करता है।
- **न्यायिक अधिकारियों** को पदोन्नति (उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के रूप में) का अवसर उस समय प्राप्त होता है, जब उनकी सेवा के कुछ वर्ष ही शेष होते हैं और कार्यपालिका के द्वारा अनुचित विलंब से उनका कार्यकाल तथा कभी-कभी पदोन्नति के अवसर कम हो जाते हैं

उठाए जा सकने वाले कदम

- नियुक्ति प्रक्रिया के प्रत्येक चरण के लिए **निश्चित समयसीमा** निर्धारित की जा सकती है, ताकि प्रक्रिया समयबद्ध तरीके से पूर्ण हो सके।
- नियुक्ति के मामलों में **अधिक पारदर्शिता** के माध्यम से विलंब के कारणों को स्पष्ट किया जा सकता है।
- कार्यपालिका और न्यायपालिका के मध्य उचित परामर्श के माध्यम से, उच्च न्यायपालिका में न्यायाधीशों की नियुक्ति हेतु **प्रक्रिया ज्ञापन (मेमोरेंडम ऑफ प्रोसीजर) को शीघ्रता से अंतिम रूप** प्रदान करना चाहिए।
- व्यवस्था को अबाध रूप से संचालित करने हेतु **भौतिक अवसंरचना** को विस्तारित करने और आवश्यक सहायक स्टाफ उपलब्ध कराये जाने की आवश्यकता है।
- **अन्य उपाय:** सरकारी मुकदमों में कमी, मध्यस्थता और अन्य वैकल्पिक विवाद समाधान प्रणाली का अनिवार्य उपयोग, प्रक्रियाओं को सरल बनाना, सटीक क्षमता सुदृढीकरण और प्रौद्योगिकी के प्रयोग की अनुशंसा करना इत्यादि।

6.1.2. न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया

(Removal of Judges)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, भारत के मुख्य न्यायाधीश को हटाने के लिए राज्यसभा में एक प्रस्ताव रखा गया, जिसे प्रारंभिक चरण में ही खारिज कर दिया गया।

न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया: एक पृष्ठभूमि

- **संविधान के अनुच्छेद 124 (4)** के तहत उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश **(अनुच्छेद -217 (b)- उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाने के लिए)** को **'साबित कदाचार'** या **'असमर्थता'** के आधार पर केवल राष्ट्रपति द्वारा हटाया जा सकता है। इसके लिए संसद के प्रत्येक सदन द्वारा अपनी कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा सदन के उपस्थित और मतदान करने वाले सदस्यों के कम से कम दो-तिहाई बहुमत द्वारा प्रस्ताव पारित किया जाना चाहिए।
- संविधान में दिए गए आधार, साबित कदाचार या असमर्थता, को निष्पक्ष न्यायाधिकरण द्वारा सिद्ध किया जाएगा। इसके गठन के सम्बन्ध में निर्णय **न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968** के तहत किया गया है।

न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968 में उल्लिखित प्रक्रिया

- इस अधिनियम के तहत, राज्य सभा के मामले में 50 सदस्यों या लोकसभा के मामले में 100 सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित प्रस्ताव रखा जाना चाहिए। यदि इसे अध्यक्ष या सभापति द्वारा स्वीकृत किया जाता है तो:
  - इसकी जांच के लिए एक तीन सदस्यीय समिति गठित करनी चाहिए। जिसमें सर्वोच्च न्यायालय का एक न्यायाधीश, किसी उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश एवं एक प्रख्यात विधिवेत्ता शामिल होता है। इस समिति के द्वारा आरोपों का निर्धारण किया जायेगा जिसके आधार पर मामले की जाँच की जाएगी।
- आरोप सिद्ध हो जाने पर, यह प्रस्ताव संसद के प्रत्येक सदन में प्रस्तुत किया जाता है और एक ही सत्र में सदन की कुल सदस्य संख्या के बहुमत द्वारा तथा उपस्थित एवं मतदान करने वाले सदस्यों के **न्यूनतम दो-तिहाई बहुमत** द्वारा पारित कर दिया जाता है।
- हालांकि, आरोप सिद्ध हो जाने के बाद भी, संसद ऐसे न्यायाधीश को हटाने के लिए बाध्य नहीं है। अंततः राष्ट्रपति द्वारा इस आशय का आदेश जारी किया जायेगा।

न्यायाधीशों को हटाने सम्बन्धी चुनौतियाँ

- **प्रवर्तन का अभाव:** 1950 से अब तक इस अधिनियम का केवल तीन बार प्रयोग किया गया है। आज तक किसी भी न्यायाधीश को इसमें उल्लिखित प्रक्रिया द्वारा सफलतापूर्वक हटाया नहीं गया है।
- **पारदर्शिता की कमी:** इस अधिनियम में न्यायाधीशों को हटाने की प्रक्रिया गुप्त रूप से संपन्न होती है एवं न्यायाधीश अपने पद पर बना रहता है। संविधान और न्यायाधीश जांच अधिनियम,1968 दोनों में ही इस संदर्भ में अस्पष्टता व्याप्त है कि महाभियोग प्रस्ताव का सामना कर रहे न्यायाधीश को आरोप सिद्ध हो जाने तक अपने न्यायिक और प्रशासनिक कार्यों का निर्वहन करना चाहिए या नहीं।

VISION IAS

- **न्यायपालिका का स्वयं को हटाना:** न्यायालय के निर्णय की अवमानना के फलस्वरूप उसे न्यायाधीश के पद से हटाया जा सकता है जो न्यायिक रूप से आदेशित महाभियोग प्रक्रिया के समान है।
- **जटिल प्रक्रिया: महाभियोग** प्रक्रिया जटिल और लंबी है, न्यायाधीशों के पास वास्तविक रूप से कोई जवाबदेहिता नहीं होती है।

आगे की राह

- **अनुशासनात्मक कार्रवाई हेतु न्यायपालिका के बाहर प्राधिकरण:** यह एक अन्य समाधान है, जिस पर चर्चा की जा रही है। हालांकि, इसमें भी कई कमियां विद्यमान हैं, यथा:
    - न्यायिक स्वतंत्रता के लिए संभावित खतरा
    - यह किसी भी निर्णय की प्रक्रिया के दौरान न्यायाधीशों में सर्वोच्च शक्ति को असंतुष्ट करने का भय उत्पन्न कर सकता है (जैसा कि आपातकाल के दौरान देखने को मिला था)।
    - संविधान के तहत पूर्ण न्यायिक स्वतंत्रता सुनिश्चित की गयी है तथा संसद या कार्यपालिका को न्यायिक कार्यों या निर्णयों में हस्तक्षेप करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है।
- **नियुक्ति-** कॉलेजियम को पर्याप्त रक्षोपाय अपनाने चाहिए ताकि उच्चतर न्यायालयों में केवल उच्च क्षमतावान और उत्कृष्ट सत्यनिष्ठा वाले न्यायाधीश ही नियुक्त किए जा सकें। न्यायाधीशों की नियुक्ति के संदर्भ में इसे अधिक पारदर्शिता के साथ स्वीकृत करने की आवश्यकता है।
- **वृहद आंतरिक विनियमन:** न्यायाधीश द्वारा किए गए अनुचित व्यवहार के अनेक उदाहरण हैं। इस प्रकार के दुर्व्यवहार पर त्वरित रूप से अनुशासनात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए। इसके लिए, संसद द्वारा एक **राष्ट्रीय न्यायिक पर्यवेक्षण समिति** गठित की जानी चाहिए। जो शिकायतों और जांच के परीक्षण के लिए स्वयं की प्रक्रियाओं को विकसित करेगी। इस प्रकार की समिति की संरचना से न्यायिक स्वतंत्रता प्रभावित नहीं होनी चाहिए।
- उच्चतम न्यायालय की प्रतिक्रिया पर निश्चित समय-सीमा के साथ न्यायाधीशों को हटाने सम्बन्धी प्रस्ताव को स्वीकार करने से पूर्व सर्वोच्च न्यायालय की **पूर्ण खंडपीठ के साथ सहमति** होनी चाहिए जिसके बाद इसे एक समेकित सहमति मानी जाएगी।

क्या अध्यक्ष द्वारा न्यायाधीशों को हटाने सम्बन्धी प्रस्ताव को अस्वीकृत किया जा सकता है?

- **न्यायाधीश जांच अधिनियम, 1968** की धारा 3 के अनुसार अध्यक्ष ऐसे व्यक्तियों, (यदि कोई हो, जिसे वह उपयुक्त समझे) से परामर्श और सम्पूर्ण विषय-वस्तु उसके समक्ष रखने के पश्चात, प्रस्ताव को स्वीकार या अस्वीकार भी कर सकता है।
- इससे पहले भी न्यायाधीशों को हटाने सम्बन्धी प्रस्ताव को निरस्त कर दिया गया था। उदाहरण के लिए; 1970 में तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष जी.एस. ढिल्लों ने उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश जे.सी.शाह के विरुद्ध प्रस्ताव को खारिज कर दिया था।
- अध्यक्ष का कार्य प्रक्रिया के लिए केवल हस्ताक्षरों की आवश्यक संख्या को देखने का ही नहीं है, बल्कि स्वीकार या अस्वीकार करने से पूर्व यह भी देखना आवश्यक है कि क्या यह प्रथम दृष्टया विचारण का मामला है तथा क्या प्रस्ताव पर्याप्त साक्ष्यों पर आधारित है?
- यहां तक कि न्यायाधीशों को हटाने सम्बन्धी प्रस्ताव को स्वीकार करना, धारणा संचालित इस समाज में किसी की प्रतिष्ठा के लिए अनावश्यक क्षति का कारण बन सकता है। अतः, प्रस्ताव को अत्यंत सावधानीपूर्वक स्वीकार किया जाना चाहिए।

6.2 न्यायिक जवाबदेही

(Judicial Accountability)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, एक मेडिकल कॉलेज से जुड़े रिश्वत के मामले में उच्चतम न्यायालय तथा भारत के मुख्य न्यायाधीश की प्रतिष्ठा एवं विश्वसनीयता पर प्रश्न उठाए गए।

न्यायिक जवाबदेही से संबंधित मुद्दे

- **न्यायिक भ्रष्टाचार से निपटने के लिए विधायी तंत्र में अपर्याप्तता:** न्यायाधीशों को अपराधी घोषित करने तथा उन पर अभियोजन चलाने के समक्ष, भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा 77 और न्यायाधीश (संरक्षण) अधिनियम, 1985 जैसी विधायी समस्याएं विद्यमान हैं।
- **न्यायिक जवाबदेही बनाम न्यायपालिका की स्वतंत्रता:** न्यायाधीशों पर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों की केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI) द्वारा की जाने वाली जांच का दुरुपयोग न्यायाधीशों के विरुद्ध किया जा सकता है, जो न्यायपालिका की स्वतंत्रता को कमजोर कर सकती है।
- **महाभियोग की प्रक्रिया से संबंधित समस्याएं:** यह एक दीर्घकालिक एवं जटिल प्रक्रिया है जिसके राजनीतिक निहितार्थ भी हो सकते हैं।

VISION IAS

- **न्यायाधीशों द्वारा न्यायाधीश की नियुक्ति:** भारत में कॉलेजियम प्रणाली न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए एक विशिष्ट प्रणाली को स्थापित करती है जिसमें लोकतांत्रिक पद्धति से निर्वाचित कार्यपालिका तथा संसद को न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।
- न्यायपालिका को सूचना के अधिकार (RTI) के दायरे से बाहर रखे जाने के कारण न्यायाधीशों तथा न्यायपालिका द्वारा अपनी **संपत्तियों की घोषणा न करना**।

प्रभावी न्यायिक जवाबदेही हेतु सुझाव और सुधार

- उच्चतर न्यायपालिका की प्रतिष्ठा की सुरक्षा हेतु कानूनी रूप से बाध्यकारी मानकों की एक श्रृंखला को स्थापित करने और न्यायाधीशों के विरुद्ध की गई लोक शिकायतों पर कार्रवाई करने हेतु नई संरचना को स्थापित करने की आवश्यकता है। इस संरचना की स्थापना हेतु न्यायिक मानक तथा जवाबदेही विधेयक, 2010 के अनुरूप एक **नया न्यायिक मानक तथा जवाबदेही विधेयक** प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
- एक द्वि-स्तरीय न्यायिक अनुशासन प्रणाली को स्थापित किया जाना चाहिए:
  - प्रथम स्तर को अनुशासनात्मक तंत्र का रूप दिया जाना चाहिए जिसके अंतर्गत न्यायाधीशों को कदाचार के लिए चेतावनी, अर्थदंड अथवा निलंबन जैसे उपायों का प्रयोग किया जाना चाहिए। साथ ही उन्हें प्रतिरक्षा हेतु कुछ सीमित उपाय भी प्रदान किए जा सकते हैं; और
  - द्वितीय स्तर के अंतर्गत न्यायाधीशों को भ्रष्टाचार समेत उनके गंभीर दुर्व्यवहार के लिए पद से हटाया जा सकता है।
- यह भी आवश्यक है कि **न्यायिक जवाबदेही के प्रयोजन** को न्यायिक नैतिकता तथा न्यायिक कदाचार से संबंधित मुद्दों से भी अधिक व्यापक बनाया जाना चाहिए। इसके साथ ही एक नए न्यायिक मानक एवं जवाबदेही विधेयक को अंगीकृत कर **"दक्षता और पारदर्शिता"** संबंधित मुद्दों को भी इसके दायरे में लाया जाना चाहिए।
- **सार्वजानिक महत्व के मामलों से संबंधी कार्यवाहियों का सीधा प्रसारण (लाइव स्ट्रीमिंग):** 2004 से ही संसद के दोनों सदनों (लोकसभा और राज्यसभा) की कार्यवाहियों के सीधे प्रसारण की अनुमति दी गयी है। कनाडा और ऑस्ट्रेलिया के उच्चतम न्यायालयों के साथ-साथ कुछ अंतरराष्ट्रीय न्यायालयों विशेषतः इंटरनेशनल कोर्ट ऑफ़ जस्टिस में भी कार्यवाहियों की वीडियो रिकॉर्डिंग की जाती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सीधे प्रसारण की यह प्रक्रिया न तो नवीन है और न ही इतनी जटिल। अतः न्यायालयों की कार्यवाहियों का भी सीधा प्रसारण किया जाना चाहिए।
- न्यायाधीशों के विरुद्ध शिकायतों को स्वीकार करने तथा कार्यवाही प्रारम्भ करने की शक्ति के साथ एक स्वतंत्र **न्यायिक लोकपाल** गठित किया जाना चाहिए ताकि न्यायपालिका की जवाबदेही सुनिश्चित की जा सके। यह न्यायपालिका तथा सरकार दोनों से स्वतंत्र होना चाहिए।

न्यायिक मानक और जवाबदेही विधेयक, 2010

- इसके तहत **राष्ट्रीय न्यायिक पर्यवेक्षण समिति, शिकायत संवीक्षा (कम्प्लेंट्स स्क्रूटनी) पैनल** तथा एक जांच समिति की स्थापना का प्रावधान किया गया है। कोई भी व्यक्ति न्यायाधीश के विरुद्ध 'कदाचार' के आधार पर पर्यवेक्षण समिति के पास अपनी शिकायत दर्ज कर सकता है।
- कदाचार के आधार पर न्यायाधीश को पद से हटाने के लिए प्रस्ताव को भी संसद में लाया जा सकता है। इस प्रकार के प्रस्ताव को आगे की जांच के लिए पर्यवेक्षण समिति को सौंपा जा सकता है।
- **पर्यवेक्षण समिति** न्यायाधीशों को परामर्श या चेतावनी जारी करने के साथ-साथ उन्हें पद से हटाने के लिए राष्ट्रपति को अनुशंसा कर सकती है।

6.2.1. न्यायिक जवाबदेहिता और सूचना का अधिकार अधिनियम

(Judicial Accountability & RTI Act)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में उच्च न्यायालय द्वारा केंद्रीय सूचना आयुक्त के उस आदेश को निरस्त कर दिया गया जिसमें कहा गया है कि सर्वोच्च न्यायालय के नियम RTI अधिनियम के सन्दर्भ में असंगत है।

न्यायपालिका और RTI अधिनियम

- RTI के अंतर्गत न्यायपालिका से सूचना प्राप्त करने हेतु दायर की गयी अनेक याचिकाओं के संबंध में भी SC के नियमों को लागू करने के लिए कहा गया है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न न्यायालयों द्वारा इस संबंध में स्वयं की नियमावली स्थापित की गयी है जिसके तहत अनेक प्रतिबंधों का प्रावधान किया गया है।
- हालांकि, न्यायपालिका को RTI की धारा 2 (h) के तहत सार्वजनिक प्राधिकरणों (Public Authorities) की परिभाषा में शामिल किया गया था किन्तु अधिनियम के लागू होने के काफी समय बाद भी अधिकांश उच्च न्यायालयों द्वारा जनसूचना अधिकारियों (PIOs) की नियुक्ति नहीं की गई है। जोकि लोगों के सूचना के अधिकार का उल्लंघन है।
- हालांकि, सर्वोच्च न्यायालय के नियमों ने चार प्रमुख आधारों पर RTI को सीमित किया है। RTI अधिनियम के विपरीत, ये नियम निम्नलिखित का प्रावधान नहीं करते:
  - सूचना प्राप्त करने के लिए नियत समय सीमा
  - एक याचिका तंत्र
  - विलम्ब से या गलत सूचना देने के लिए दंड का प्रावधान
  - गुड कॉज शो (Good cause show) के अंतर्गत प्रासंगिक विषयों की सूचना
- संक्षेप में, न्यायपालिका द्वारा अपने विवेक से दी जाने वाली सूचनाओं के कारण निश्चित रूप से RTI के नियमों का उल्लंघन होता है।
- RTI एक्ट की धारा 23 के अनुसार किसी भी न्यायालय को यह अधिकार नहीं है की वह किसी वाद याचिका की सुनवाई करे परन्तु विरोधाभास यह है कि संविधान उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय को ये शक्ति प्रदान करता है की वह किसी भी प्रकार की याचिका पर सुनवाई कर सकते हैं।
- वहीं सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया है कि न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल का निर्णय अंतिम होगा। यह निर्णय केंद्रीय सूचना आयोग को की गई किसी भी स्वतंत्र अपील के अधीन नहीं होगा। इन मुद्दों ने न्यायाधीशों की विश्वसनीयता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिए हैं।

न्यायपालिका को RTI अधिनियम के दायरे में लाने के पक्ष में तर्क:

- इससे न्यायपालिका में भाई-भतीजावाद और स्वेच्छाचारिता की गतिविधियों पर अंकुश लगाकर न्यायाधीशों की नियुक्ति के संबंध में पारदर्शिता में वृद्धि होगी।
- न्यायालय में लंबित मामलों की सदैव आलोचना होती रही है। लंबित मामलों के समयबद्ध निपटान के लिए RTI सहायक सिद्ध हो सकता है।
- इसके माध्यम से न्यायपालिका की जवाबदेही में वृद्धि होगी क्योंकि न्यायाधीश अपने निर्णयों के लिए उत्तरदायी होंगे।
- न्यायपालिका की कार्यपद्धति के विषय में सूचना प्राप्त करने से न्यायपालिका पर जन-सामान्य के विश्वास में वृद्धि होगी।
- प्रसिद्ध राज नारायण बनाम इंदिरा गाँधी मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह निर्देश देते हुए सूचना के अधिकार की नींव रखी गयी कि, 'जन सामान्य को सभी प्रकार के सार्वजनिक विषयों पर सूचना प्राप्त करने का अधिकार है, जो उसे अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की अवधारणा से प्राप्त होता है'। हालांकि, न्यायपालिका द्वारा स्वयं सूचना के अधिकार को सीमित किया गया है। अतः यह आवश्यक है कि सर्वोच्च न्यायालय इस वाद में दिए गये अपने निर्देश के अनुरूप कार्य करे।

विपक्ष में तर्क:

- कुछ विषयों में यह गोपनीयता और सुरक्षा के लिए चुनौती उत्पन्न कर सकता है, जो देश के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकता है।
- यह संविधान द्वारा निर्दिष्ट न्यायपालिका की स्वतंत्रता को सीमित कर सकता है और न्यायपालिका के राजनीतिकरण को बढ़ावा दे सकता है।
- इससे न्यायालयों के कार्य में अतिरिक्त वृद्धि हो सकती है और न्यायिक नियुक्तियों एवं स्थानांतरण में विलम्ब हो सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि संघर्ष से बचने के लिए न्यायपालिका द्वारा अधिक सतर्कतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया जा सकता है।

आगे की राह

- उच्च न्यायपालिका को निम्नलिखित सीमाओं के साथ RTI एक्ट के अंतर्गत लाया जा सकता है:
  - विचाराधीन मामले, जिनके संबंध में दी गई सूचना न्यायाधीश के निर्णय को प्रभावित कर सकती है।
  - राष्ट्र की एकता और अखंडता को बनाए रखने के लिए आवश्यक गोपनीय सूचनाएँ।
  - ऐसी सूचना जो सार्वजनिक महत्व की न हो और जो किसी भी प्रकार से व्यक्ति को प्रभावित न करती हो।

6.3. न्यायिक विलंबन

(Judicial Pendency)

सुर्खियों में क्यों ?

राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार, भारत के न्यायालयों में 3 करोड़ से अधिक मामले लंबित हैं।

विलंबन संबंधी महत्वपूर्ण तथ्य

- राष्ट्रीय न्यायिक डेटा ग्रिड (NJDG) के अनुसार, उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक संख्या में लंबित मामले (61.58 लाख) हैं।
- कुल लंबित मामलों में से 60% दो वर्ष से अधिक पुराने हैं, जबकि 40% पांच वर्ष से अधिक पुराने हैं। उच्चतम न्यायालय में, 30% से अधिक लंबित मामले पांच वर्ष से अधिक पुराने हैं, जबकि इलाहाबाद उच्च न्यायालय में 15% अपीलें 1980 के दशक से लंबित हैं।
- नवीनतम **इज ऑफ़ डूइंग बिजनेस रिपोर्ट में**, अनुबंध को लागू करने संबंधी संकेतक में भारत की रैंकिंग (172 से घटकर 164 वें स्थान पर) में मामूली सुधार हुआ है।
- 2009 की विधि आयोग की एक रिपोर्ट में कहा गया है कि न्यायाधीशों की मौजूदा संख्या के साथ लंबित मामलों का निपटारा करने में 464 वर्ष लगेंगे।

विलंबन का कारण

- **दायर याचिकाओं में सर्वाधिक सरकार द्वारा** : न्यायालयों में दायर कुल याचिकाओं का 46% राज्य या केंद्र सरकारों द्वारा दायर मामले या अपीलें हैं।
- **जनसंख्या के अनुपात में न्यायाधीशों की कम संख्या:** भारत में प्रत्येक दस लाख लोगों पर केवल 18 न्यायाधीश हैं, जबकि अमेरिका में न्यायाधीश-जनसख्या अनुपात 107 का है। 1987 में विधि आयोग ने सिफारिश की थी कि भारत को प्रत्येक दस लाख आबादी के लिए न्यायाधीशों की संख्या 50 तक बढ़ा दी जानी चाहिए।
- **रिक्ति:** भारत में 1.7 अरब लोगों के लिए, उच्चतम न्यायालय में 31 न्यायाधीश और उच्च न्यायालयों में 1,079 न्यायाधीश हैं। इनमें से उच्च न्यायालयों में कभी भी 600 से ज्यादा न्यायाधीश नहीं होते अर्थात शेष सीटें रिक्त रहती हैं। इसके अतिरिक्त, प्रक्रिया ज्ञापन (MoP) पर विवादों के कारण विभिन्न उच्च न्यायालयों में रिक्तियों की स्वीकृत संख्या के लगभग 50% पर ही नियुक्ति होती है।
- **अत्यधिक कार्यभार:** उच्च न्यायालयों में न्यायाधीश प्रत्येक दिन 20 से 150 मामलों की सुनवाई करते हैं, या प्रतिदिन औसतन 70 मामले की सुनवाई करते हैं। प्रत्येक सुनवाई के लिए न्यायाधीशों के पास औसत समय 2 मिनट से भी कम हो सकता है।
- साक्ष्यों के वैज्ञानिक संग्रह के लिए पुलिस प्रशिक्षण का अभाव है तथा पुलिस और जेल अधिकारी भी अपने ड्यूटी को पूरा करने में असफल रहते हैं जिससे मामलों के विचारण में देरी होती है।
- **न्यायाधीशों हेतु अवकाश:** उच्चतम न्यायालय एक वर्ष में औसतन 188 दिन कार्य करता है, जबकि इसके नियमों में न्यूनतम 225 दिनों का कार्य निर्दिष्ट किया गया है।
- **अवसंरचना का अभाव:** जैसेकि न्यायाधीशों के लिए अपर्याप्त सहायक कर्मचारी और मूलभूत न्यायालय कक्ष सुविधाओं का अभाव। उच्चतम न्यायालय द्वारा प्रकाशित 2016 की एक रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि विद्यमान अवसंरचना अखिल भारतीय स्तर पर स्वीकृत 20,558 न्यायिक अधिकारियों की तुलना में केवल 15,540 न्यायिक अधिकारियों को सुविधा प्रदान कर सकती है।
- **न्यायालयों के प्रबंधकों की क्षमता का उपयोग न करना:** न्यायालयों ने न्यायालय प्रबंधकों के पदों का सृजन किया है ताकि न्यायालयी प्रक्रियाओं में सुधार, मामलों की गति और न्यायिक समय को अनुकूलित किया जा सके। किन्तु अधिकांशतः उनके कार्य न्यायालयीय आयोजनों और संचालन संबंधी कार्यों को व्यवस्थित करने तक सीमित होते हैं।
- **रणनीति निर्माण हेतु डेटा की अनुपलब्धता:** कई अधीनस्थ न्यायालयों में अभी भी "डेट फिल्ड" कॉलम के तहत डेटा उपलब्ध नहीं रहता है, जो विलंबन को चिह्नित करने और इसे सुधारने हेतु सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

VISION IAS

इसका प्रभाव

- **सामाजिक-आर्थिक पतन:** एक कमजोर न्यायपालिका (सुनवाई परिणामों की गति और पूर्वानुमेयता द्वारा परिभाषित) के कारण प्रति व्यक्ति आय कम हो सकती है तथा उच्च निर्धनता दर; निजी आर्थिक गतिविधि में कमी; खराब सार्वजनिक अवसंरचना; और उच्च अपराध दर और अधिक औद्योगिक झगड़े आदि हो सकते हैं।
- **व्यवसाय की लागत में वृद्धि:** निम्न प्रवर्तन के कारण, ऋणदाता द्वारा जोखिम प्रीमियम को शामिल करने के कारण, ऋणों पर ब्याज दर बढ़ जाएगी और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था की लागत संरचना में वृद्धि होगी।
- **मौलिक अधिकार का उल्लंघन:** उच्चतम न्यायालय के अनुसार संविधान का अनुच्छेद 21 कैदियों को उनके जीवन और स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के भाग के रूप में निष्पक्ष और तीव्र सुनवाई का अधिकार प्रदान करता है।
- **निर्णय की गुणवत्ता प्रभावित होती है:** एक दिन में किसी न्यायाधीश के समक्ष 100 से अधिक मामले सूचीबद्ध होने के कारण, प्रत्येक तथ्य के विश्लेषण हेतु बहुत कम समय उपलब्ध होता है।

आगे की राह

- **आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18** में इज ऑफ़ डूइंग बिजिनेस (EODB) में सुधार और आर्थिक गतिविधियों को प्रोत्साहित करने के लिए वाणिज्यिक याचिकाओं के विलम्बन में कमी लाने हेतु **सरकार और न्यायपालिका के मध्य समन्वित कार्रवाई की मांग** की गयी है।
- **उच्चतर न्यायपालिका में नियुक्ति सम्बन्धी मुद्दों का शीघ्र** ही समाधान किया जाना चाहिए। न्यायपालिका और कार्यपालिका को एक सामान्य आधार तक पहुंचना चाहिए और प्रक्रिया सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञापन-पत्र तैयार करना चाहिए।
- **वैकल्पिक विवाद समाधान तंत्र** को सुदृढ़ बनाया जाना चाहिए और लोगों को इसके संबंध में अवगत कराया जाना चाहिए।
- मामलों को समय पर, पारदर्शी और कुशल तरीके से निपटाने हेतु एक **केस मैनेजमेंट सिस्टम** (प्रत्येक मामले को दायर करने से लेकर निपटान तक की निगरानी हेतु एक तंत्र) की स्थापना के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) उपकरण का प्रयोग करना।
- **आर्थिक प्रोत्साहन:** यह अनुमान लगाया गया है कि यदि न्यायालयों के निर्णय में तीव्रता लाई जाए और विलम्बन को कम किया जाए, तो सकल घरेलू उत्पाद में 1-2% की वृद्धि करके आर्थिक विकास को बढाया जा सकता है।
- न्यायिक अधिकारियों के लिए पुराने मामलों (जहां आरोपी दो वर्ष से अधिक समय तक हिरासत में है) का निपटान करने के लिए वार्षिक लक्ष्य और कार्य योजना सुनिश्चित की जानी चाहिए।
- जिला न्यायाधीशों की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु **न्यायिक भर्ती परीक्षाओं के मानकों को निर्धारित करना।**
- सांध्यकालीन न्यायालयों की संकल्पना को कार्यान्वित करना। इसके तहत विधि स्नातकों के साथ-साथ सेवानिवृत्त न्यायाधीशों की सेवाएँ लेकर युवा न्यायाधीशों को प्रशिक्षित किया जा सकता है और विलंबन में कमी लायी जा सकती है।
- 2009 में **230वें विधि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में** "न्यायपालिका में सुधार" के अंतर्गत निम्नलिखित अनुशंसाएँ प्रस्तुत की हैं :
  - न्यायालय के कामकाजी घंटों का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए और स्थगन आदेश को सिविल दण्ड संहिता (CPC) के आदेश 17 के प्रावधानों द्वारा कठोरता पूर्वक निर्देशित किया जाना चाहिए।
  - **तकनीक की सहायता से समान प्रकृति के मामलों को** एकत्र किया जाना चाहिए और प्राथमिकता के आधार पर ऐसे अन्य मामलों का निपटारा करना चाहिए;
  - न्यायाधीशों को नागरिक और आपराधिक मामलों, दोनों में उचित समय के भीतर निर्णय देना चाहिए।
  - उच्चत्तर न्यायपालिका में अवकाश को कम से कम 10 से 15 दिनों तक कम किया जाना चाहिए और अदालत के कामकाजी घंटों को कम से कम आधे घंटे के लिए बढ़ाया जाना चाहिए।
  - अधिवक्ताओं को अतिविस्तृत और दोहराव युक्त तर्कों को कम करना चाहिए तथा किसी भी मामले में मौखिक तर्क की लंबाई एक घंटे और तीस मिनट से अधिक नहीं होनी चाहिए (जब तक कि मामला कानून के जटिल प्रश्न या संविधान की व्याख्या से संबंधित न हो)।
  - निर्णय स्पष्ट ,निर्णायक और अस्पष्टता से मुक्त होना चाहिए, और आगे इससे संबंधित याचिकाएं नहीं उत्पन्न होनी चाहिए।

6.4. न्यायाधिकरण

(Tribunals)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- विधि आयोग ने "भारत में न्यायाधिकरणों के वैधानिक ढांचों का आकलन" (असेसमेंट ऑफ स्टैचुटरी फ्रेमवर्क्स ऑफ ट्रिब्यूनल्स इन इंडिया) शीर्षक से एक रिपोर्ट जारी की है।
- हाल ही में उच्चतम न्यायालय ने स्वतंत्रता के मुद्दों का हवाला देते हुए केन्द्रीय न्यायाधिकरण, अपीलीय न्यायाधिकरण और अन्य प्राधिकरण (अर्हता, अनुभव और सदस्यों की सेवा शर्तें) नियम 2017 की व्यवहार्यता पर रोक लगा दी है। ध्यातव्य है कि ये नियम NGT सहित सभी प्राधिकरणों में प्रमुख नियुक्तियां करते समय सरकार को प्राथमिकता देते हैं।

VISION IAS

भारत में न्यायाधिकरण

- न्यायाधिकरण एक **अर्द्ध-न्यायिक निकाय** होता है। न्यायाधिकरण की स्थापना संसद या राज्य विधायिका के एक अधिनियम द्वारा **अनुच्छेद 323A** या **323B** के अंतर्गत इसके समक्ष प्रस्तुत किये गए विवादों को निपटाने के लिए की जाती है।
- **अनुच्छेद 323A** और **323B** को सरदार स्वर्ण सिंह समिति की अनुशंसा पर 1976 के 42वें संशोधन अधिनियम के माध्यम से समाविष्ट किया गया था।
  - **अनुच्छेद 323A** प्रशासनिक न्यायाधिकरणों से संबंधित है।
  - **अनुच्छेद 323B** अन्य मामलों हेतु न्यायाधिकरणों से संबंधित है।
- **तकनीकी विशेषज्ञ:** ये न्यायाधिकरण **विवादों के अधिनिर्णयन** में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, विशेषकर उन विषयों में जो तकनीकी विशेषज्ञता की मांग करते हैं।
- इन न्यायाधिकरणों को सिविल प्रक्रिया संहिता एवं भारतीय साक्ष्य अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित किसी भी समान प्रक्रिया का अनुपालन नहीं करना पड़ता है बल्कि **उन्हें केवल प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना होता है।**
- इन्हें सिविल अदालतों की कुछ शक्तियाँ प्राप्त हैं जैसे, समन जारी करना और गवाहों को साक्ष्य प्रस्तुत करने की अनुमति देना। **इनका निर्णय दलों पर विधिक रूप से बाध्यकारी होता है और साथ ही इसके निर्णय के विरुद्ध अपील भी की जा सकती है।**

न्यायाधिकरणों के लाभ

- **लचीलापन:** प्रशासनिक न्यायनिर्णयन से न्याय प्रक्रिया में लचीलापन और अनुकूलता आई है क्योंकि ये न्यायाधिकरण प्रक्रिया के कठोर नियमों से नियंत्रित नहीं हैं और सामाजिक एवं आर्थिक जीवन के परिवर्तनशील चरणों से सामंजस्य स्थापित करते हुए कार्य करते हैं।
- **कम खर्चीले:** पारंपरिक न्यायालय प्रणाली के उपयोग के स्थान पर इन न्यायाधिकरणों को अपेक्षाकृत कम औपचारिकताओं के साथ विवादों के कम खर्च में तथा शीघ्र निपटारे के लिए स्थापित किया गया है।
- **न्यायालयों की भारमुक्ति:** यह सामान्य न्यायालयों को अत्यधिक आवश्यक राहत प्रदान करता है, जिन पर पहले से ही अनेकों मुकदमों का अतिरिक्त बोझ है।

न्यायाधिकरणों से संबंधित समस्याएं

- **न्यायाधिकरणों पर अति-निर्भरता:** विवादों का समाधान करने के लिए न्यायाधिकरण पर अधिक निर्भरता की निम्नलिखित कारणों से आलोचना की गई है:
  - **शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत का उल्लंघन:** न्यायाधिकरण, न्यायालय नहीं है और इसे कार्यपालिका द्वारा आंशिक रूप से नियंत्रित और व्यवस्थित किया जाता है। यह शक्तियों के पृथक्करण के सिद्धांत के विरुद्ध है और कार्यपालिका को अधिनिर्णयन जैसे न्यायिक प्रकृति के कार्य करने की अनुमति देता है।
  - **न्यायपालिका के प्राधिकार को कमजोर करना:** यह अपीलीय न्यायालयों के रूप में उच्च न्यायालयों की भूमिका को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है और उन्हें न्यायिक समीक्षा की अपनी शक्ति से वंचित करता है। सांविधिक न्यायालयों (न्यायाधिकरण) पर संवैधानिक न्यायालयों (उच्च न्यायालयों) की सर्वोच्चता के सिद्धांत से समझौता किया गया है।
  - **हितों का संघर्ष:** संविधान अर्हता, नियुक्ति की शर्तें, कार्यकाल और पद से हटाने की रीति के मामले में न्यायपालिका की स्वतंत्रता की रक्षा करता है किन्तु यह स्वतंत्रता न्यायाधिकरणों के सदस्यों के लिए उपलब्ध नहीं है। ये कार्यपालिका के नियंत्रण के अधीन हैं जो स्वयं देश में सर्वाधिक संख्या में याचिकाएं दायर करती है। इसके फलस्वरूप हितों में संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है।
  - **वादों के लंबित रहने की अवधि में वृद्धि:** सभी न्यायाधिकरणों में वादों के लंबित रहने की औसत अवधि 3.8 वर्ष है, साथ ही अनिर्णीत मामलों में 25% की वृद्धि हुई है। जबकि उच्च न्यायालयों में वादों के लंबित रहने की औसत अवधि 4.3 वर्ष है।
  - **उच्चतम न्यायालय का महज अपीलीय न्यायालय के रूप में कार्य करना:** न्यायाधिकरण से सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार ने उच्चतम न्यायालय को संवैधानिक न्यायालय से महज एक अपीलीय न्यायालय बना दिया है। उच्चतम न्यायालय द्वारा निपटाए जाने वाले संवैधानिक मामलों की संख्या में धीरे-धीरे कमी आ रही है। 2014 में 884 निर्णय दिए गए जिनमें से केवल 64 निर्णय संवैधानिक मामलों से संबंधित थे।
  - न्यायाधिकरण **अनेक बार त्वरित न्याय देने में अक्षम सिद्ध हुए हैं** जो शीर्ष न्यायालय में वादी के विश्वास को कमजोर करता है।

उच्च न्यायालय की उपेक्षा से उत्पन्न समस्याएं-

- न्यायाधिकरण को उच्च न्यायालयों के समान संवैधानिक संरक्षण प्राप्त नहीं है क्योंकि उच्च न्यायालय के **न्यायाधीशों की नियुक्ति प्रक्रिया और सेवा शर्तें** कार्यपालिका के नियंत्रण में नहीं होती हैं। कई न्यायाधिकरण अभी भी अपने मूल मंत्रालयों के प्रति निष्ठा रखते हैं।
- **भौगोलिक रूप से देशभर में पर्याप्त उपलब्धता न होने** के कारण उच्च न्यायालयों के समान न्यायाधिकरण भी सुलभ नहीं हैं। यह न्याय को महँगा और न्याय तक पहुँच को मुश्किल बनाता है।

VISION IAS

- जब उच्च न्यायालय के सेवानिवृत्त न्यायाधीश प्रत्येक न्यायाधिकरण की अध्यक्षता करते हैं, इससे न्यायाधिकरण की स्थापना के पीछे का यह तर्क निरस्त हो जाता है कि न्यायाधिकरण **विशेषज्ञ अभियोजन** के उद्देश्य से स्थापित किए गए हैं।
- न्यायाधिकरण से सीधे उच्चतम न्यायालय में अपील करने के अधिकार ने उच्चतम न्यायालय को संवैधानिक न्यायालय से महज एक अपीलीय न्यायालय बना दिया है तथा इस कारण से उच्चतम न्यायालय में हजारों मामले लंबित हो गये हैं। अत्यधिक मामलों के लंबित होने का दबाव न्यायालय के निर्णयों की गुणवत्ता को भी प्रभावित करता है।
- न्यायाधिकरण के निर्णयों के विरुद्ध अपील की सुनवाई करने वाले उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों को कानून के विशिष्ट क्षेत्रों के तहत उत्पन्न विवादों की सूक्ष्म बारीकियों का एकदम पहली बार सामना करना पड़ता है। यह स्थिति अंतिम विकल्प के रूप में देखे जाने वाले न्यायालय के लिए उपयुक्त नहीं है।

आगे की राह

भारतीय विधि आयोग ने अपनी 272वीं रिपोर्ट में देश में न्यायाधिकरण प्रणाली की कार्य पद्धति में सुधार करने के लिए एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की है:

- **न्यायाधीशों की अर्हता -** उच्च न्यायालय (या जिला न्यायालय) के न्यायाधिकार क्षेत्र को एक न्यायाधिकरण में स्थानांतरित करने के मामले में, नए गठित न्यायाधिकरण के सदस्यों को उच्च न्यायालय (या जिला न्यायालय) के न्यायाधीशों के समान अर्हता धारण करनी चाहिए।
- **न्यायाधिकरण के अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति-**
    - विधि आयोग ने न्यायाधिकरण के कामकाज की निगरानी के लिए यथासंभव कानून मंत्रालय के तहत एक कॉमन नोडल एजेंसी स्थापित करने का प्रस्ताव दिया है। न्यायाधिकरण के कामकाज की निगरानी के साथ-साथ यह एजेंसी न्यायाधिकरण में नियुक्त सभी सदस्यों की नियुक्ति, कार्यकाल और सेवा शर्तों में एकरूपता सुनिश्चित करेगी।
    - नियुक्ति की प्रक्रिया को समय से प्रारंभ करके न्यायाधिकरण में होने वाली रिक्तियों को शीघ्रता से भरा जाना चाहिए। नियुक्ति की प्रक्रिया को रिक्ति से लगभग छः महीने पूर्व प्रारंभ करना ज्यादा उचित होगा।
- **न्यायाधिकरणों के सदस्यों का चयन-**
    - आयोग द्वारा कहा गया है कि **सदस्यों का चयन निष्पक्ष** तरीके से होना चाहिए। चयन में सरकारी एजेंसियों की न्यूनतम भागीदारी होनी चाहिए, क्योंकि सरकार अभियोजन में एक पक्ष के रूप में शामिल होती है।
    - न्यायिक और प्रशासनिक, दोनों सदस्यों के लिए **पृथक चयन समिति** गठित की जानी चाहिए।
- **कार्यकाल-** अध्यक्ष को 3 वर्ष के लिए या 70 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो, के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए। जबकि उपाध्यक्ष और सदस्यों को 3 वर्ष के लिए या 67 वर्ष की आयु तक, जो भी पहले हो, के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए।
- न्यायाधिकरण के किसी भी आदेश को उस उच्च न्यायालय की खंड पीठ के समक्ष चुनौती दी जा सकती है, जिसके क्षेत्राधिकार के अधीन वह न्यायाधिकरण या उसका अपीलीय मंच आता है, क्योंकि न्यायिक समीक्षा भारतीय संविधान की मूलभूत विशेषता है। ऐसी ही अनुशंसा **एल. चंद्रकुमार बनाम भारत संघ** वाद में की गई थी।
- देश के विभिन्न भागों में न्यायाधिकरण की बेंचों की स्थापना की जानी चाहिए, जिससे लोगों की न्याय तक आसान पहुँच हो सके। वस्तुतः आदर्श रूप में जहाँ-जहाँ उच्च न्यायालय स्थित हैं, उन स्थानों पर न्यायाधिकरण की बेंचों की स्थापना की जानी चाहिए।

6.5. वैकल्पिक विवाद समाधान

(Alternative Dispute Redressal: ADR)

सुर्ख़ियों में क्यों?

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने हाल ही में संसद में **मध्यस्थता और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2018** को लागू करने की स्वीकृति प्रदान की है जो संस्थागत मध्यस्थता को सुगम बनाएगी और भारत को सुदृढ़ वैकल्पिक विवाद समाधान (ADR) तंत्र का केंद्र बनाने में सहायक होगा।

ADR क्या है?

- जैसा कि नाम से पता चलता है, ADR असहमत पक्षों को मुकदमेबाजी की प्रक्रिया में पड़े बिना किसी विवाद के समाधान हेतु स्थापित तंत्र है।
- ADR प्रक्रिया केवल दीवानी विवादों के मामले में स्वीकार्य है, जिसे कानून द्वारा स्पष्ट रूप से निर्धारित किया जाता है। ADR के तरीकों को न्यायालय और औपचारिक कानून प्रणाली का विकल्प घोषित किया गया है तथा इसे विवाद को शीघ्रता से और सौहाद्रपूर्ण तरीके से सुलझाने के लिए अपनाए जाने वाले सर्वोत्तम तरीकों में से एक माना गया है।
- **वैकल्पिक विवाद समाधान (ADR) के विविध प्रकार**
    - **पंचाट (Arbitration)**: यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक तटस्थ तृतीय पक्षकार या पक्षकारों का समूह मामले के गुण-दोषों के आधार पर निर्णय प्रस्तुत करता है। विवाचन की प्रक्रिया केवल तब ही आरंभ की जा सकती है जब विवाद के उद्भव के पहले ही दोनों पक्षों के बीच एक विधिमान्य पंचाट समझौता किया गया हो।

VISION IAS

- **मध्यस्थता (Mediation):** मध्यस्थता की प्रक्रिया का लक्ष्य विवादित पक्षों को आपसी सहमति के माध्यम से समाधान तक पहुँचने में सहायता करना है। मध्यस्थता की प्रक्रिया का निरीक्षण एक निष्पक्ष तृतीय पक्ष अर्थात् एक मध्यस्थ द्वारा किया जाता है। मध्यस्थ का प्राधिकार दोनों पक्षों की आपसी सहमति में निहित होता है।
- **सुलह (Conciliation):** यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विवादों का समाधान समझौते या स्वैच्छिक करार द्वारा प्राप्त किया जाता है। पंचाट के विपरीत, सुलह की प्रक्रिया में बाध्यकारी निर्णय नहीं दिए जाते हैं। दोनों पक्ष इस प्रक्रिया से प्राप्त निर्णय को स्वीकार करने या अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र होते हैं।
- **लोक अदालत:** इनका गठन विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 के अंतर्गत किया जाता है। यह सार्वजनिक सुलह का एक रूप है। इसकी अध्यक्षता 2 या 3 लोगों के द्वारा की जाती है जो न्यायाधीश या अनुभवी अधिवक्ता होते हैं। उन्हें सीमित रूप में सिविल न्यायालय की शक्तियाँ प्रदान की गई है।
- **न्याय पंचायत:** ये ग्रामीण न्यायालय ग्रामीण समुदाय की स्थानीय परंपराओं, संस्कृति और व्यवहार प्रतिरूप द्वारा निर्देशित होते हैं और इस प्रकार ये न्याय के प्रशासन में लोगों के विश्वास को स्थापित करते हैं। इनमें 200 रुपये तक के मौद्रिक दावे विचारण हेतु लिए जा सकते हैं। इसका आपराधिक क्षेत्राधिकार लापरवाही, अनधिकृत प्रवेश, उपद्रव आदि के साधारण मामलों तक विस्तृत है। इन पंचायतों में सुलह पर बल दिया जाता है।

ADR के विभिन्न प्रावधान

- **ऐतिहासिक दृष्टिकोण:** भारत में पंचायत सर्वाधिक प्राचीन ज्ञात ADR तंत्र हैं। निर्णय तक पहुँचने हेतु निष्पक्ष तृतीय पक्ष की सहायता लेना दीर्घ काल से ही भारतीय संस्कृति का अंग रहा है।
- **संवैधानिक प्रावधान:** तंत्र को अपना आधार अनुच्छेद 14 (विधि के समक्ष समता), अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार) और अनुच्छेद 32 (संवैधानिक उपचार का अधिकार) के अंतर्गत प्राप्त होता है जो लोगों को न्याय पाने का अधिकार प्रदान करते हैं। इसे अनुच्छेद 39A के तहत समान न्याय और नि:शुल्क विधिक सहायता के लिए DPSP से भी संबंधित किया जा सकता है।
- **अन्य प्रावधान :** न्यायालय के बाहर विवादों का निपटारा सिविल प्रक्रिया संहिता (धारा 89), ग्राम न्यायालय अधिनियम, 2009, विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (लोक अदालत प्रणाली की स्थापना का आधार) का एक भाग है।
- जस्टिस मलिमथ समिति (1989-90) की रिपोर्ट ने भी ADR तंत्र को व्यवहार्य विकल्प के रूप में स्थापित करने की आवश्यकता का भी सुझाव दिया है।

वैकल्पिक विवाद समाधान के लाभ

- **समय की कम खपत:** न्यायालयों की तुलना में लोग अल्प अवधि में अपने विवादों को निपटा लेते हैं।
- **लागत प्रभावी पद्धति:** यह मुकदमेबाजी की प्रक्रिया की तुलना में अत्यधिक धन की बचत करता है।
- यह न्यायालयों की तकनीकी जटिलताओं से मुक्त है क्योंकि यहाँ विवाद का समाधान करने में अनौपचारिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है।
- लोग न्यायालय के भय के बिना स्वयं को अभिव्यक्त करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। वे किसी भी न्यायालय में इसे प्रकट किए बिना यहाँ सही तथ्यों को उजागर कर सकते हैं।
- **कुशल तरीका:** यह आगे संघर्ष को रोकता है और अच्छे संबंधों को बनाए रखता है। इसमें संबंधों को पुनर्स्थापित करने की संभावना सदैव बनी रहती है क्योंकि सभी पक्ष एक ही मंच पर अपने मुद्दों पर चर्चा करते हैं।
- **ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस :** 2017 के लिए विश्व बैंक के **ईज़ ऑफ़ डूइंग बिज़नेस रैंकिंग** से पता चलता है कि प्रवर्तन के लिए 1,420 दिनों के औसत के साथ भारत की अनुबंधों के प्रवर्तन के मामले में निम्न स्थिति बनी हुई है। प्रवर्तन में सुधार विदेशी और घरेलू निवेश को आकर्षित करेगा।
- **ADR का संस्थानीकरण:** भारत के विदेशी मुद्रा भंडार की बचत होगी क्योंकि भारतीय कंपनियां मध्यस्थता में पर्याप्त विदेशी मुद्रा व्यय कर देती हैं जो सामान्यतः सिंगापुर जैसे बाहरी देशों में संपन्न होती है।

सीमाएं

- पारंपरिक न्यायपालिका के विपरीत इसमें समाधान की कोई गारंटी नहीं है।
- न्यायालयों में लंबित मुकदमों को समाप्त करने के लिए मामलों का बलपूर्वक हस्तांतरण।
- मध्यस्थता के निर्णय अंतिम होते हैं और किसी भी न्यायालय में निरस्त नहीं किए जा सकते हैं। ऐसी स्थिति में पक्षपातपूर्ण मध्यस्थ के मामले में एक पक्ष द्वारा छला हुआ महसूस करने की संभावना अधिक रहती है। हालांकि, संबंधित पक्ष उपयुक्त क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय में निर्णय के खिलाफ अपील कर सकते हैं।
- प्रक्रिया से अपरिचित होना तथा जागरूकता का अभाव।
- अनौपचारिक और शक्ति के दुरूपयोग की अधिक संभावना क्योंकि प्रक्रिया के दौरान कई पक्ष अनुपस्थित होते हैं।

VISION IAS

निष्कर्ष

भारत में ADR को सुदृढ़ करने हेतु विधायी अंतराल को भरने के लिए मध्यस्थता और सुलह (संशोधन) विधेयक, 2018 को अधिनियमित करने की आवश्यकता है। यह लागत प्रभावी और समयबद्ध मध्यस्थता को सुगम बनाएगा। इसके अतिरिक्त, निम्नलिखित कदम उठाए जाने चाहिए:

- वर्तमान में अधिकांश मध्यस्थता एवं सुलह केन्द्रों में वाणिज्यिक विवादों का ही निपटारा किया जाता है जबकि इसके विपरीत गैर-वाणिज्यिक विवादों के लिए सुलह और मध्यस्थता केंद्र स्थापित किए जाने आवश्यक हैं।
- ऐसे तंत्र की उपलब्धता के बारे में विशेष रूप से कमजोर निर्धन वर्गों को जागरूक करने की आवश्यकता है।
- मध्यस्थता को पेशे के रूप में लोकप्रिय किया जाना चाहिए और नैतिक मानकों, गुणवत्ता नियंत्रण एवं मध्यस्थ की जवाबदेही सुनिश्चित करने के लिए सुधार किए जाने चाहिए।
- मुकदमे से पूर्व के चरणों में ADRs की भूमिका का विस्तार करना चाहिए, क्योंकि वर्तमान में, अधिकांश ADRs पक्षों द्वारा मुकदमा दायर करने के बाद प्रयुक्त किए जाते हैं।

VISION IAS

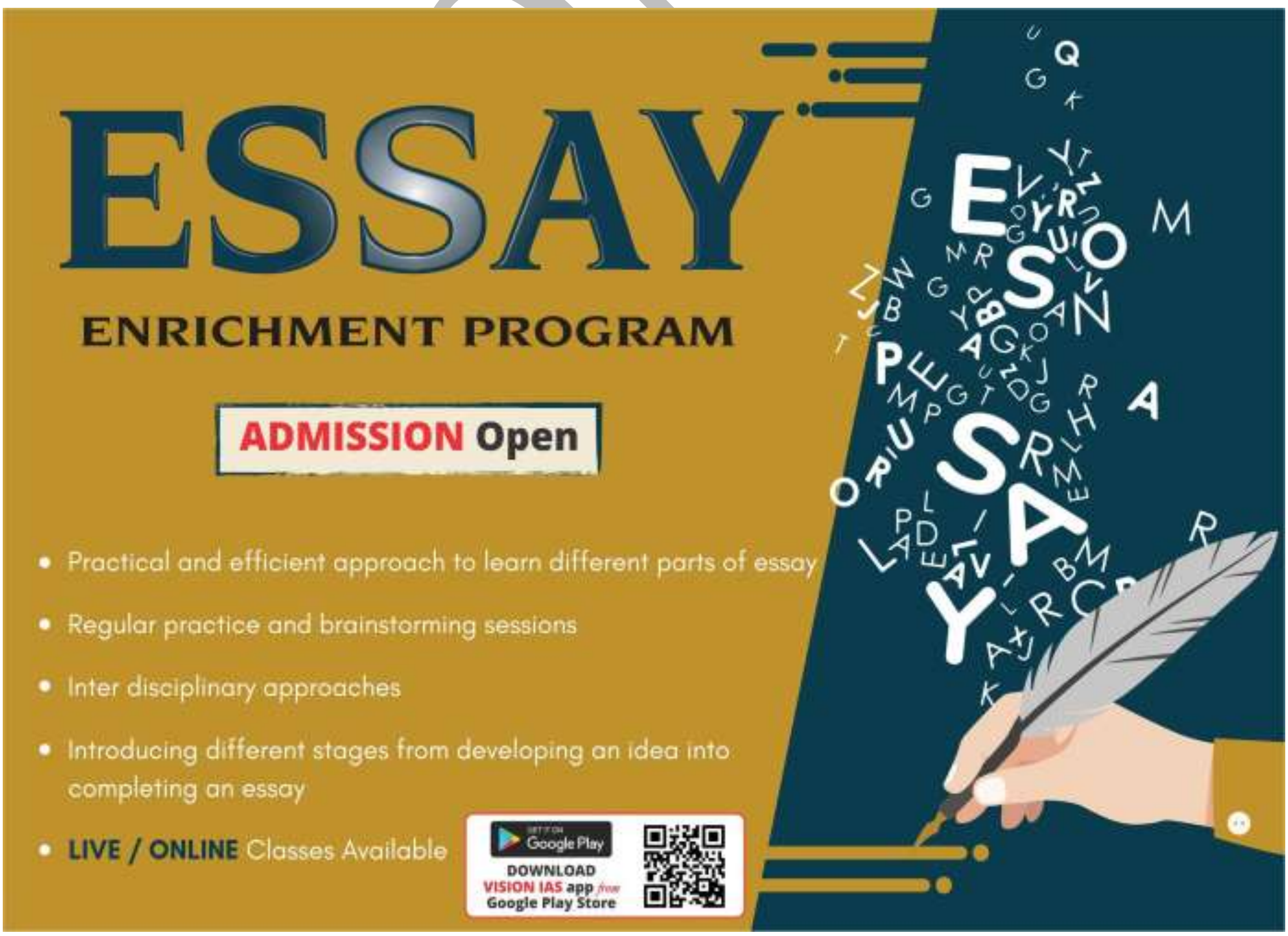

7. पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व

(Transparency & Accountability)

हाल ही में, **'ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल'** द्वारा जारी 'करप्शन परसेप्शन इंडेक्स, 2017' में भारत को 180 देशों में से 81वें स्थान पर रखा गया था। यह सरकार के कार्यों में उच्च अपारदर्शिता और गोपनीयता को दर्शाता है।

पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व का महत्व (T&A)

- **भ्रष्टाचार में कमी-** पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व (T&A) संभावित रूप से सरकार के कार्य करने के तरीके को परिवर्तित करता है तथा सरकार द्वारा किए जाने वाले कार्यों के संबंध में नागरिकों को सूचनाएं प्रदान करता है; जिससे भ्रष्टाचार में कमी आती है।
- **नागरिकों का सशक्तिकरण-** T&A संभावित रूप से लोगों और सरकारी अधिकारियों के मध्य संबंधों को परिवर्तित करता है। यह करदाताओं को स्पष्ट रूप से यह जानने की अनुमति प्रदान करता है कि सरकारी कर्मचारी कर से प्राप्त राशि का किन कार्यों में व्यय कर रहे हैं और नागरिकों को अपने निर्वाचित अधिकारियों को उत्तरदायी बनाए रखने की क्षमता प्रदान करता है।
- **सहभागी शासन-** T&A समूहों को सक्षम बनाता है, अन्यथा वे प्रक्रिया के एक भाग के रूप में शासन प्रणाली में भाग लेने में सक्षम नहीं होंगे। पारदर्शिता एवं उत्तरदायित्व सुशासन के मुख्य घटक हैं, जबकि सुशासन मानव विकास को प्राप्त करने की एक पूर्व शर्त है।
- **लोकतंत्र की समृद्धता-** T&A लोक उत्तरदायित्व की प्रभावी प्रणाली विकसित करके लोकतांत्रिक स्थानीय शासन की पहल को प्रोत्साहन प्रदान करता है। जिससे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि सरकारी कर्मचारी, जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी हैं और शासन प्रक्रिया में जनता को शामिल करते हैं।

पारदर्शिता के प्रोत्साहन हेतु उठाए गए कदम

- नागरिकों को सशक्त बनाने, सरकार के कार्यों में उत्तरदायित्व एवं पारदर्शिता को बढ़ावा देने और भ्रष्टाचार को नियंत्रित करने के लिए 2005 में संसद द्वारा **सूचना का अधिकार (RTI) अधिनियम** लागू किया गया था। पारदर्शी सरकार एक सुविज्ञ जनता के लिए महत्वपूर्ण है और सुविज्ञ जनता लोकतंत्र के लिए महत्वपूर्ण है।
- **उच्चतम न्यायालय** ने निर्दिष्ट किया है कि सूचना का अधिकार **संविधान के अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 21** के तहत प्रदत्त मूल अधिकार है। किसी लोकतंत्र में लोक अधिकारियों के कार्यप्रणाली में पारदर्शिता महत्वपूर्ण है।
- **लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम, 2013**
- यह अधिनियम भ्रष्टाचार विरोधी ओम्बड्समैन की स्थापना की अनुमति प्रदान करता है।
  जिसे केंद्र स्तर पर लोकपाल और राज्य-स्तर पर लोकायुक्त कहा जाएगा।
- यह अधिनियम अभियोजन के लंबित होने के बावजूद भ्रष्ट माध्यमों से प्राप्त संपत्ति के अधिग्रहण और जब्ती के प्रावधानों को शामिल करता है।
- इस अधिनियम के तहत, सरकारी कर्मचारियों के लिए अपनी परिसंपत्तियों और देनदारियों की घोषणा करना अनिवार्य कर दिया गया है। साथ-साथ उन्हें अपने पति/पत्नी और आश्रित बच्चों की परिसंपत्तियों एवं देनदारियों की जानकारी भी देनी होगी। यह अधिनियम व्हिसल ब्लोअर के रूप में आगे आने वाले लोकसेवकों को सुरक्षा प्रदान करना सुनिश्चित करता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक पृथक **व्हिसल ब्लोअर प्रोटेक्शन बिल** पारित किया गया था।
- **भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988** (संशोधनों को शामिल करते हुए)
- यह एक लोक सेवक द्वारा किए गए आपराधिक दुर्व्यवहार को परिभाषित करता है और दंड प्रावधानों को निर्दिष्ट करता है, जिसमें सात वर्ष का कारावास शामिल है।

यद्यपि, भ्रष्टाचार को भारत जैसे विकासशील देश के लिए प्रगति की दिशा में सबसे बड़ी बाधा माना जाता है। हालांकि, भारत में भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए विभिन्न उपाय किए गये हैं, परन्तु अभी भी इसके लिए महत्वपूर्ण कदम उठाए जाने की आवश्यकता है।

पारदर्शिता को प्रोत्साहन देने हेतु महत्वपूर्ण सरकारी निकाय

- **केन्द्रीय सतर्कता आयोग (CVC):** CVC प्रशासन में सत्यनिष्ठा को बनाए रखने से संबंधित सभी मामलों पर केंद्र सरकार को सलाह प्रदान करता है।
- **भारत सरकार में सतर्कता इकाइयां:** केंद्र सरकार के सभी मंत्रालयों / विभागों में एक **मुख्य सतर्कता अधिकारी (CVO)** होते हैं, जो संबंधित संगठन के सतर्कता प्रभाग का अध्यक्ष होता है।
- कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग का **प्रशासनिक सतर्कता विभाग,** सतर्कता और भ्रष्टाचार से निपटने के लिए नोडल एजेंसी है।
- **केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो (CBI):** यह भ्रष्टाचार विरोधी मामलों में केंद्र सरकार की प्रमुख जांच एजेंसी है। यह दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम, 1946 (DSPI Act) से अपनी शक्तियां प्राप्त करता है।

VISION IAS

7.1. निवारक सतर्कता

(Preventive Vigilance)

सुर्खियों में क्यों?

- हाल ही में CVC की सतर्कता पुस्तिका का 7वां संस्करण जारी किया गया।

निवारक सतर्कता के बारे में

- **भ्रष्टाचार को समाप्त करने/कम करने**, पारदर्शिता को बढ़ावा देने और व्यवसाय में सुगमता लाने के लिए प्रणाली एवं प्रक्रियाओं में सुधार के उपायों को अपनाना ही निवारक सतर्कता है। सतर्कता को सावधानी और सजगता के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार, सतर्कता प्रशासन में प्रायः निवारक और दंडकारी भ्रष्टाचार रोधी उपायों को अपनाने और प्रणाली का प्रभावी रूप कार्य करना सुनिश्चित करने के लिए एक निरीक्षण तंत्र शामिल होता है।
- जैसा कि संथानम समिति की रिपोर्ट (1964) में भी उल्लेख किया गया है, "भ्रष्टाचार को तब तक समाप्त या पर्याप्त रूप से कम नहीं किया जा सकता है जब तक निवारक उपायों को सतत और प्रभावी रूप से नियोजित एवं क्रियान्वित नहीं किया जाता है। निवारक कार्रवाई में प्रशासनिक, विधिक, सामाजिक, आर्थिक और इस सम्बन्ध में शिक्षित करने वाले उपायों को शामिल करना चाहिए।".

संबंधित तथ्य

- **संथानम समिति रिपोर्ट (1964)** ने भ्रष्टाचार के निम्नलिखित चार प्रमुख कारणों की पहचान की -
  - प्रशासनिक विलंब
  - सरकार विनियामक कार्यों के माध्यम से अपनी प्रबंधन क्षमता की तुलना में अधिक कार्यों की ज़िम्मेदारी ले रही है
  - सरकारी कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों में शक्तियों के प्रयोग में स्वेच्छा के प्रयोग की अन्तर्निहित संभावना और
  - नागरिकों के लिए उनके दैनिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण विभिन्न मामलों के समाधान की दुष्कर प्रक्रियाएं।

भ्रष्टाचार के संभावनाओं वाले कुछ क्षेत्र हैं -

- **सरकारी खरीद** एक बृहद क्षेत्र है जिसकी परिधि में स्टोर सामग्री और सेवाओं की खरीद से लेकर अवसंरचना परियोजनाएँ तक सम्मिलित हैं ।
- दुर्लभ और/या बहुमूल्य प्राकृतिक संसाधनों के आवंटन के साथ **माल और सेवाओं की बिक्री** भी भ्रष्टाचार का एक क्षेत्र है।
- **मानव संसाधन प्रबंधन** सभी संगठनों के लिए सामान्य है और भर्ती, पदोन्नति, स्थानान्तरण और पोस्टिंग से संबंधित प्रक्रियाएं हेर-फेर और भ्रष्टाचार के प्रभाव में आ सकती हैं।
- **सार्वजनिक रूप से सेवाओं का वितरण भी भ्रष्टाचार का संभावित क्षेत्र है हालांकि** सभी लोक सेवा क्षेत्रों के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है।
- मुख्यतः नागरिकों के मध्य जागरूकता की कमी और अप्रभावी शिकायत निवारण तंत्र के कारण **अधिनियमों, नियमों और विनियमों का प्रवर्तन** भी भ्रष्टाचार के लिए सुभेद्य क्षेत्र है।

निवारक सतर्कता के उपाय

चूंकि भ्रष्टाचार के विभिन्न संभावित क्षेत्र हैं, जैसे कि खरीद, मानव संसाधन प्रबंधन, सेवाओं का वितरण, वस्तुओं और सेवाओं की बिक्री, नियमों और विनियमों का प्रवर्तन आदि। अतः निम्नलिखित निवारक सतर्कता उपाय अपनाने की आवश्यकता है:

- वर्तमान नियमों और विनियमों की पूरी समीक्षा कर नियमों का **सरलीकरण और मानकीकरण** करने से स्पष्टता और उत्तरदायित्व में सुधार आएगा और विवेकाधिकार और स्वेच्छाचारिता का उन्मूलन होगा, इस प्रकार भ्रष्टाचार में कमी आएगी।
- **तकनीक का लाभ उठाना -** जैसे ई-खरीद, ई-भुगतान, सूचना प्रसार और जागरूकता पैदा करने के लिए विभिन्न वेबसाइट, पब्लिक डीलिंग वाले स्थानों पर CCTV, GPS क्षम युक्तियां / RFID, धोखाधड़ी आदि पता लगाने के लिए कंप्यूटर सहायतित लेखा परीक्षण तकनीकें आदि।
- **पारदर्शिता, जवाबदेही और जागरूकता:** पारदर्शिता से जनता और लोक अधिकारियों के बीच सूचना अंतराल समाप्त हो जाता है, जिससे भ्रष्टाचार कम होता है। कदाचार की स्थिति में प्रभावी दण्डात्मक कार्रवाई के साथ स्पष्ट उत्तरदायित्व की प्रणाली सुचारु कामकाज और दक्षता के लिए आवश्यक है। साथ ही लोक अधिकारियों को भी उनके कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों, आचार संहिता, नियमों, प्रक्रियाओं आदि से अवगत कराया जाना चाहिए।
- **नियंत्रण और पर्यवेक्षण:** नियमित और नित्य निरीक्षण, औचक निरीक्षण, लेखापरीक्षण और समीक्षाएं निरंकुश और भ्रष्ट व्यवहार पर नियंत्रण रखते हैं। साथ ही कदाचार का शीघ्र पता लगने से हानि की क्षतिपूर्ति करना संभव हो सकता है। आगे और भी नुकसान नियंत्रित करने में सहायता मिल सकती है
- **सहायक कार्य वातावरण -** संवेदनशील पदों की पहचान करना और ऐसे पदों पर सत्यनिष्ठा वाले व्यक्ति को रखना, व्हिसल ब्लोअर का संरक्षण करना आदि।

VISION IAS

- **नैतिक मूल्य पैदा करना -** जनता, विशेष रूप से युवा पीढ़ी के बीच नैतिक व्यवहार पैदा करना निवारक सतर्कता का महत्वपूर्ण उपकरण है।
- **सत्यनिष्ठा समझौता -** सरकार/ सरकारी विभागों/ सरकारी कंपनियों आदि के द्वारा स्वयं को रिश्वतखोरी, टकराव आदि से दूर रखने के लिए सहमत सभी बोली लगाने वालों (Bidders) के बीच लिखित समझौता। इसे CVC द्वारा कार्यान्वित किया जाता है और समझौते का उल्लंघन करने पर प्रतिबंध लगाया जाता है। निगरानी CVC द्वारा नामित IEM (स्वतंत्र बाहरी निगरानीकर्ता) के माध्यम से की जाती है।
- **इंटीग्रिटी इंडेक्स** (इसे शीघ्र ही आरम्भ किया जाएगा) के माध्यम से CVC सार्वजनिक संगठनों की दीर्घकालिक दक्षता, लाभप्रदता और संधारणीयता के साथ सतर्कता के अनिवार्य संचालकों को जोड़कर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों, वित्तीय संस्थानों, विभागों और मंत्रालयों की **वार्षिक स्कोर/रैंकिंग** प्रस्तुत करेगा। यह किसी संगठन के अंदर **आंतरिक प्रक्रियाओं और नियंत्रणों की बेंच मार्किंग के** साथ-साथ बाह्य हितधारकों के साथ संबंधों एवं उनकी अपेक्षाओं के प्रबंधन पर आधारित होगी।

7.2 सूचना का अधिकार अधिनियम

(Right to Information Act)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

- भारतीय विधि आयोग (Law Commission of India: LCI) ने अपनी 275वीं रिपोर्ट में BCCI को RTI अधिनियम के दायरे में लाने की अनुशंसा की है।
- हाल ही में, निर्वाचन आयोग ने एक आदेश में कहा कि राजनीतिक दल RTI अधिनियम के दायरे से बाहर हैं। यह केंद्रीय सूचना आयोग के राजनीतिक दलों को लोक प्राधिकारी के रूप में घोषित किये जाने के निर्देश के विपरीत है।

RTI अधिनियम के अंतर्गत 'लोक प्राधिकारी' का अर्थ:

- RTI अधिनियम की **धारा 2 (h)** में वर्णित "लोक प्राधिकारी" से आशय ऐसे किसी भी प्राधिकारी या निकाय या स्वायत्त सरकारी संस्था से है जिसकी स्थापना या गठन-
  - संविधान द्वारा या उसके अधीन;
  - संसद द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि द्वारा;
  - राज्य विधानमंडल द्वारा बनाई गई किसी अन्य विधि द्वारा;
  - समुचित सरकार द्वारा जारी की गई अधिसूचना या किए गए आदेश द्वारा किया गया हो।
- इसमें सम्मिलित हैं-
  - कोई निकाय जो केंद्रीय सरकार के स्वामित्वाधीन, नियंत्रणाधीन हो और उसके द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधि से वित्तपोषित हो (RTI अधिनियम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध निधि से वित्तपोषण को परिभाषित नहीं करता है। परिणामतः, न्यायालयों को प्रायः यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता होती है कि वित्तीय सहायता का कोई विशेष स्वरूप या मात्रा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधि का गठन करती है या नहीं)।
  - कोई ऐसा गैर-सरकारी संगठन जो समुचित सरकार द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध कराई गई निधियों द्वारा वित्तपोषित हो।

RTI अधिनियम नागरिकों को 'लोक प्राधिकारियों' के नियंत्रण में उपलब्ध सूचना तक पहुंच के अधिकार की शक्ति प्रदान करता है और धारा 2 (f) में परिभाषित 'सूचना' को प्रकट करने में विफल होने पर लोक प्राधिकरणों के प्राधिकारियों पर अर्थदंड आरोपित करता है।

RTI ACT, 2005 की प्रमुख विशेषताएं

- इसमें जनता के अनुरोध पर सूचना उपलब्ध कराने के लिए प्रत्येक विभाग में **एक सूचना अधिकारी की नियुक्ति** का प्रावधान किया गया है।
- इसमें **सूचना उपलब्ध कराने के लिए 30 दिन का समय निर्धारित** किया गया है। ऐसी स्थिति के लिए जब सूचना व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता से संबंधित हो, 48 घंटे की समय सीमा निश्चित की गयी है।
- गरीबी रेखा से नीचे के लोगों के लिए सूचना निःशुल्क होगी। अन्य लोगों से उचित शुल्क लिया जाएगा।
- अधिनियम में सूचनाओं के अनुरोधों को कम करने के लिए सार्वजनिक एजेंसियों पर स्वतः प्रेरणा से सूचना प्रकट करने का दायित्व आरोपित किया गया है।
- इसमें **केंद्रीय सूचना आयोग (CIC) और राज्य सूचना आयोग की स्थापना के लिए प्रावधान** किया गया है। वे अपीलीय प्राधिकारी के रूप में कार्य करने हेतु स्वतंत्र उच्चस्तरीय निकाय होंगे और उनमें सिविल न्यायालय की शक्तियां निहित होंगी।

VISION IAS

- आयोग का अधिकार क्षेत्र सभी केंद्रीय लोक प्राधिकरणों पर विस्तारित है।
- RTI अधिनियम के सन्दर्भ में CIC ही **एकमात्र अपीलीय प्राधिकरण** है जो निकाय को लोक प्राधिकरण के रूप में घोषित कर सकता है, विशेष रूप से यदि वह आश्वस्त हो जाता है कि संगठन RTI अधिनियम के दायरे में आने के लिए आवश्यक मानदंडों को पूरा करता है।

- अधिनियम सरकारी **गोपनीयता अधिनियम, 1923** पर अधिभावी है। यदि सूचना के प्रकटीकरण से प्राप्त होने वाला लोक हित संरक्षित व्यक्ति को होने वाली हानि की तुलना में अधिक बड़ा है तो सूचना आयोग सूचना तक पहुंच की अनुमति दे सकता है।
- मंत्रिमंडल की विवेचना और वह सूचना जो सुरक्षा, रणनीतिक, वैज्ञानिक या आर्थिक हितों, विदेशी राज्यों के साथ संबंधों को प्रभावित करती है या अपराध को उकसाती है, को छोड़कर उन्मुक्ति प्राप्त सूचना की सभी श्रेणियों को 20 वर्षों के पश्चात प्रकटीकरण से छूट प्राप्त नहीं होगी।

RTI की धारा 8 के तहत निम्नलिखित विषयों से सम्बंधित सूचना को प्रकटीकरण से छूट प्रदान की गयी है -

- राष्ट्रीय सुरक्षा या संप्रभुता
- राष्ट्रीय आर्थिक हित
- विदेशी राज्यों के साथ संबंध
- विधि प्रवर्तन और न्यायिक प्रक्रिया
- मंत्रिमंडल और अन्य निर्णय निर्माण सम्बन्धी दस्तावेज
- व्यापार सम्बन्धी गोपनीय जानकारी और वाणिज्यिक गोपनीयता
- व्यक्तिगत सुरक्षा
- व्यक्तिगत निजता

हालांकि, भ्रष्टाचार के आरोप या इन संगठनों द्वारा मानवाधिकारों के उल्लंघन से संबंधित सूचना को छूट प्राप्त नहीं होगी।

RTI अधिनियम की धारा 2 (f) के अनुसार "सूचना" का तात्पर्य किसी भी रूप में किसी भी सामग्री से है जिसमें रिकाड्र्स, दस्तावेज, ज्ञापन, ई-मेल, मत, सलाह, प्रेस विज्ञप्ति, परिपत्र, आदेश, लॉगबुक्स, संविदाएं, रिपोर्ट, कागज़ात, नमूने, मॉडल, किसी इलेक्ट्रॉनिक रूप में धारित डेटा सामग्री और किसी निकाय से संबंधित ऐसी सूचनाएं शामिल हैं जिन तक तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन किसी लोक प्राधिकारी की पहुँच हो सकती है।

लोक प्राधिकारी के रूप में BCCI

- राष्ट्रीय खेल विकास विधेयक, 2013 का प्रारूप तैयार करने हेतु गठित **मुकुल मुद्गल पैनल** और **न्यायमूर्ति आर.एम.लोढ़ा** ने BCCI को RTI के तहत लाने का सुझाव दिया।
- 'BCCI बनाम बिहार क्रिकेट संघ एवं अन्य' के वाद में उच्चतम न्यायालय ने LCI से इस बात की जांच करने के लिए कहा था कि BCCI को RTI के दायरे में आना चाहिए या नहीं। LCI ने इसे RTI के अंतर्गत समाविष्ट करने की अनुशंसा की है। ये अनुशंसाएं निम्नलिखित हैं;
- संविधान के अनुच्छेद 12 के संदर्भ में BCCI को **राज्य के अंग** के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है क्योंकि सरकार इसकी कार्य पद्धति एवं गतिविधियों पर नियंत्रण रखती है। उदाहरणस्वरूप तनावपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के संदर्भ में भारत और पाकिस्तान के बीच क्रिकेट मैचों के लिए सरकार के अनुमोदन की आवश्यकता होती है।
- इसे **"लोक प्राधिकारी"** समझा जाएगा क्योंकि इसके कार्य सार्वजनिक प्रकृति के हैं और यह अनेक वर्षों से समय-समय पर विभिन्न सरकारों से **प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वित्तीयन** (कर छूट, भूमि अनुदान आदि के रूप में) प्राप्त करता आ रहा है।
- यह एक **राष्ट्रीय स्तर की 'अनुमोदित'** संस्था है जिसे देश में क्रिकेट कार्यक्रम आयोजित कराने का वास्तविक एकाधिकार प्राप्त है। यह भारतीय क्रिकेट टीम का भी चयन करती है।
- यह वस्तुतः **राष्ट्रीय खेल संघ (National Sports Federation)** के रूप में कार्य करता है और NSFs के रूप में सूचीबद्ध अन्य सभी खेल निकायों के समान BCCI को भी RTI के अंतर्गत शामिल किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, अधिनियम को BCCI के सभी घटक सदस्य क्रिकेट संघों पर भी लागू किया जाना चाहिए।

लोक प्राधिकारी के रूप में राजनीतिक दल

- छह राष्ट्रीय दलों - BJP, कांग्रेस, BSP, NCP, CPI और CPI(M) को 2013 में केन्द्रीय सूचना आयोग की एक पूर्ण खंडपीठ द्वारा **RTI अधिनियम के दायरे में लाया गया था**। (2016 में तृणमूल कांग्रेस को **सातवें राष्ट्रीय दल** के रूप में मान्यता प्राप्त हुई)।

VISION IAS

- हालाँकि, राजनीतिक दलों ने उन पर निर्देशित RTI आवेदनों पर विचार करने से इंकार कर दिया है।
- कई कार्यकर्ताओं द्वारा CIC आदेश के उल्लंघन के आधार पर उच्चतम न्यायालय में अपील की गयी जो अभी लंबित है।

राजनीतिक दलों को RTI के अंतर्गत लाने के पक्ष में तर्क

- **वित्तपोषण संबंधी पारदर्शिता सुनिश्चित करने की आवश्यकता-**
  - **एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR)** के अनुसार, वित्त वर्ष 2004-05 और 2014-15 के मध्य राजनीतिक दलों की कुल आय का केवल 31.55% स्वैच्छिक अंशदान/दान के माध्यम से प्राप्त हुआ था। शेष 68.45% के लिए ये जनप्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 29(C) का लाभ उठाकर कोई भी विवरण घोषित करने से बच गए। यह धारा राजनीतिक दलों को 20,000 से कम के किसी भी अंशदान को घोषित करने से छूट प्रदान करती है।
  - **क्रोनी कैपिटलिज्म:** वित्त वर्ष 2004-05 से वित्त वर्ष 2014-15 तक छह राष्ट्रीय दलों ने 20,000 करोड़ रुपये से अधिक के कुल दान का 88% कॉर्पोरेट या व्यापारिक घरानों से प्राप्त किया है। इसके बदले में कॉर्पोरेट को लाभ मिलना स्वाभाविक है।
  - **कालाधन:** ADR के अनुसार, अंशदान का 34% दाता के बिना किसी पते या अन्य विवरण के एवं 40% अंशदान बिना PAN विवरण के प्राप्त किया गया है।
  - **अवैध विदेशी अंशदान:** विदेशी अंशदान (विनियमन) अधिनियम (FCRA), 1976 के बावजूद राष्ट्रीय दल विदेशी अंशदान स्वीकार करते हैं। इस अधिनियम ने राजनीतिक दलों को विदेशी कंपनियों या विदेशी कम्पनियों द्वारा नियंत्रित भारत में स्थित कंपनियों से अंशदान स्वीकार करने को प्रतिबंधित किया है।
- **राजनीतिक दल राज्य के महत्त्वपूर्ण अंग हैं:** CIC के अनुसार, इन राजनीतिक दलों द्वारा निभाई गई महत्त्वपूर्ण भूमिका इनकी लोक प्रकृति को इंगित करती है। ये सरकारी निकायों की भांति कार्यों का निष्पादन करते हैं और अपने उम्मीदवारों के चयन पर उनका एकाधिकार है जो अंततः सरकार का गठन करते हैं। अतः, ये अपने कार्यों के लिए जनसामान्य के प्रति उत्तरदायित्व से बच नहीं सकते हैं।
- **राजनीतिक दल लोक प्राधिकारी हैं:** CIC ने कहा है कि राजनीतिक दल प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से विभिन्न लाभ प्राप्त करते हैं जैसे राजनीतिक दलों के कार्यालयों की स्थापना हेतु रियायती दरों पर भूमि, दूरदर्शन/ऑल इंडिया रेडियो पर खाली समय का आवंटन और चुनाव के दौरान मतदाता सूची की प्रतियों की निःशुल्क आपूर्ति, इत्यादि। अतः ये धारा 2(h) के तहत लोक प्राधिकारी हैं और RTI अधिनियम के दायरे में शामिल हैं।
- **बृहद लोकहित:** सूचना का प्रकटीकरण बृहद लोकहित में है। यहाँ तक कि निर्वाचन कानूनों में सुधार पर भारतीय विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट द्वारा भी राजनीतिक दलों की कार्यपद्धति में आंतरिक लोकतंत्र, वित्तीय पारदर्शिता और उत्तरदायित्व को लागू करने की अनुशंसा की गई थी।

राजनीतिक दलों को RTI के अंतर्गत लाने के विपक्ष में तर्क

- **दल की कार्यप्रणाली को बाधित करना:** राजनीतिक दल सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत अपनी आंतरिक कार्यप्रणाली और वित्तीय सूचना का प्रकटीकरण नहीं कर सकते हैं क्योंकि यह उनकी कार्यप्रणाली के संचालन में बाधा उत्पन्न करेगा।
- **RTI का दुरुपयोग किया जा सकता है:** RTI का दुरुपयोग करते हुए प्रतिद्वंद्वी दुर्भावनापूर्ण उद्देश्य से इसका लाभ उठा सकते हैं।
- **लोक प्राधिकारी नहीं:** राजनीतिक दलों को संविधान के द्वारा या उसके अधीन अथवा संसद द्वारा निर्मित किसी भी अन्य विधि के द्वारा स्थापित या गठित नहीं किया जाता है। यहाँ तक कि 1951 के अधिनियम के तहत एक राजनीतिक दल का पंजीकरण भी सरकारी निकाय की स्थापना के समान नहीं है।
- आयकर अधिनियम, 1961 और जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के तहत दलों के लिए **पारदर्शिता संबंधी उपबंध पहले से ही शामिल किये गए** हैं। ये उपबंध "राजनीतिक दलों के वित्तीय पहलुओं के संबंध में आवश्यक पारदर्शिता" की मांग करते हैं।
- **सार्वजनिक डोमेन में सूचना:** सरकार का मत है कि किसी राजनीतिक निकाय के सम्बन्ध में सूचना निर्वाचन आयोग की वेबसाइट पर पहले से ही सार्वजनिक डोमेन में उपलब्ध है।
- **RTI अधिनियम में उल्लेख नहीं है:** कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग (DoPT) के अनुसार, RTI अधिनियम लागू करते समय राजनीतिक दलों को पारदर्शिता कानून के दायरे में लाने को परिकल्पित नहीं किया गया था।

अधिनियम के कार्यान्वयन से सम्बंधित अन्य मुद्दे और बाधाएं

- **लोगों की कम जागरुकता:** यद्यपि अधिनियम के बारे में जागरुकता उत्पन्न करने से संबंधित सरकार के उत्तरदायित्व को अधिनियम में स्पष्ट रूप से परिभाषित किया गया है तथापि सरकार की ओर से पहल की कमी रही है। सम्बंधित सरकारों और लोक प्राधिकरणों द्वारा किए गए प्रयास वेबसाइटों पर नियमों और प्रायः पूछे जाने वाले प्रश्नों (FAQs) तक ही सीमित हैं। ये प्रयास RTI के विषय में जन जागरुकता उत्पन्न करने में सहायक सिद्ध नहीं हुए हैं।

VISION IAS

- **निर्दिष्ट समय के अंदर सूचना उपलब्ध कराने में विफलता -** यह एक ज्ञात तथ्य है कि सरकार के भीतर रिकॉर्ड रखने की प्रक्रिया एक बड़ी चुनौती है। इसलिए, लोक प्राधिकरणों में अपर्याप्त रिकॉर्ड प्रबंधन प्रक्रियाओं के कारण ये प्राधिकरण निर्दिष्ट 30 दिनों के अंदर सूचना उपलब्ध कराने में विफल रहते हैं। प्रशिक्षित PIOs और सक्षम अवसंरचना (कंप्यूटर, स्कैनर, इंटरनेट कनेक्टिविटी, ज़ेरॉक्स मशीनों इत्यादि) की अनुपलब्धता के कारण यह स्थिति और भी विकट हो गयी है।
- **निगरानी और समीक्षा तंत्र की कमी-** सूचना आयोग की सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिकाओं में से एक लोक प्राधिकरणों की निगरानी और समीक्षा करना तथा उन्हें अधिनियम की भावना के संगत बनाने के लिए कार्रवाई प्रारंभ करना है। हालांकि, यह अधिनियम के कार्यान्वयन में सर्वाधिक कमजोर कड़ियों में से एक रहा है। सूचना आयोग की भूमिका का एक महत्वपूर्ण पक्ष अधिनियम के अनुपालन के लिए लोक प्राधिकरणों की निगरानी करना भी है, जिसके परिणामस्वरूप अपीलों की संख्या में कमी आ सकती है।
- **अपीलों का अत्यधिक समय तक लंबित रहना :** सूचना आयोग में अपीलों का लंबित रहना एक बड़ी चुनौती है। जब तक इसे नियंत्रणीय स्तर पर सीमित नहीं किया जाता, तब तक अधिनियम का उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा। अपील करने और शिकायतों का निपटान करने के लिए गैर-इष्टतम प्रक्रियाओं के कारण अपीलों का समय पर निस्तारण नहीं हो पाता है।

आगे की राह

- RTI और इसके संचालन के बारे में जनता में जागरूकता बढ़ाने, नागरिकों की सहभागिता बढ़ाने और सरकार के भीतर पारदर्शिता बढ़ाने के लिए केंद्र और राज्य, दोनों स्तरों पर जन जागरूकता बनाए रखना।
- लोक प्राधिकरणों द्वारा सूचना का अधिक मात्रा में स्वैच्छिक प्रकटीकरण। पारदर्शिता व्यवस्था को विस्तृत और गहन बनाने के लिए यह एक आवश्यक घटक है।
- रिकॉर्ड प्रबंधन और सूचना के प्रसार के लिए इलेक्ट्रॉनिक साधनों का उपयोग करना। वास्तव में पारदर्शी शासन के केंद्र में एक सुदृढ़ रिकॉर्ड प्रबंधन ही अवस्थित होता है।
- सूचना के अधिकार के बारे में सार्वजनिक अधिकारियों को संवेदनशील बनाना चाहिए और सभी सरकारी प्रशिक्षण कार्यक्रमों में RTI पर प्रशिक्षण मॉड्यूल को सम्मिलित करना चाहिए।
- RTI के तहत सूचना मांगने वाले व्यक्ति को प्रोत्साहित और सुरक्षित किया जाना चाहिए। राज्यों में पुलिस अधिकारियों को इस बात के प्रति संवेदनशील होना चाहिए और इन लोगों पर होने वाले किसी भी प्रकार के हमले की घटनाओं को रोकने के लिए प्रभावी कदम उठाने चाहिए।

7.3. सामाजिक लेखा परीक्षा कानून

(Social Audit Law)

सुर्ख़ियों में क्यों?

मेघालय, **सामाजिक लेखा परीक्षा कानून- 'मेघालय सामुदायिक भागीदारी एवं लोक सेवा सामाजिक लेखा परीक्षा, अधिनियम 2017'** ('The Meghalaya Community Participation and Public Services Social Audit Act, 2017') को लागू करने वाला भारत का प्रथम राज्य बन गया है।

अधिनियम की महत्वपूर्ण विशेषताएँ

- एक **सोशल ऑडिट फैसिलिटेटर (social audit facilitator)** की नियुक्ति की जाएगी जो प्रत्यक्ष रूप से जनता से ऑडिट करके ऑडिट के परिणामों को ग्राम सभा के समक्ष प्रस्तुत करेगा। तत्पश्चात ग्राम सभा के इनपुट को शामिल करके उसे लेखा परीक्षक के पास भेजा जाएगा।
- सरकारी कार्यक्रमों की उनके कार्यान्वयन के दौरान समीक्षा हेतु एक पैनल के रूप में **सोशल ऑडिट काउंसिल (SAC)** की स्थापना की गई है।
- इस अधिनियम के अंतर्गत ऑडिट किये जाने वाले कार्यक्रमों, योजनाओं और परियोजनाओं की एक सूची सम्मिलित की गयी है।

सोशल ऑडिट काउंसिल (SAC) के प्रमुख कार्य

- एक व्यवस्थित लेखा परीक्षा से संबंधित नियमों का निर्धारण।
- इस अधिनियम के कार्यान्वयन से संबंधित सभी विषयों पर राज्य सरकार को सलाह देना।
- समय-समय पर निगरानी एवं शिकायत निवारण तंत्र की समीक्षा करना और आवश्यक सुधारों की सिफारिश करना।
- कार्यक्रमों और योजनाओं के कार्यान्वयन की स्थिति पर विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत होने वाली वार्षिक रिपोर्ट तैयार करना।
- इस अधिनियम के कार्यान्वयन की निगरानी।

इस कदम का महत्व

- इसके माध्यम से किसी योजना की दिशा और कार्यवाही में सरलता और तीव्रता से सुधार किया जा सकेगा क्योंकि इसे योजना के साथ संचालित किया जाएगा।
- अब तक, सोशल ऑडिट नागरिक समाज संगठनों की पहल के आधार पर किये जाते थे, जिन्हें आधिकारिक स्वीकृति प्राप्त नहीं थी।

VISION IAS

- यह अधिनियम विकास की योजनाओं और अन्य विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों में नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए एक वैधानिक ढाँचा प्रदान करता है।
- यह सोशल ऑडिट कानून के निर्माण हेतु अन्य राज्यों के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत करता है।

सामजिक लेखा परीक्षा क्या है ?

- सामाजिक लेखा परीक्षा सामान्यतः सरकारी संगठनों (विशेषकर जो विकास लक्ष्यों से संबंधित हैं) की किसी भी या सभी गतिविधियों द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति को मापने में हितधारकों की भागीदारी को संदर्भित करती है।
- यह समाज में लोगों के परिप्रेक्ष्य से किसी गतिविधि को समझने में सहायता करती है। लोगों के लिए ही संस्थागत/प्रशासनिक प्रणाली तैयार की जाती है अतः इस फीडबैक इन प्रणालियों के सुधार में सहायक हो सकता है।
- इस प्रक्रिया का उद्देश्य सामाजिक भागीदारी, पारदर्शिता और सूचना के संप्रेषण का एक माध्यम प्रदान करना है। यह निर्णय निर्माताओं, प्रतिनिधियों और प्रबंधकों की जवाबदेही में वृद्धि करती है। यह एक सतत प्रक्रिया हो सकती है जो इसे लक्षित गतिविधि/कार्यक्रम के सभी चरणों को कवर करती हो।

सामाजिक लेखा परीक्षा का महत्व

- 14वें वित्त आयोग की अनुशंसा पर PRIs , ULBs को केंद्रीय निधि के अधिक हस्तांतरण के पश्चात् सामाजिक लेखा परीक्षा अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि इस प्रकार की संस्थाओं पर CAG का लेखापरीक्षा क्षेत्राधिकार अस्पष्ट है।
- इनपुट, प्रक्रियाओं, वित्तीय और भौतिक रिपोर्टिंग, अनुपालन, भौतिक सत्यापन, दुरुपयोग, धोखाधड़ी एवं दुर्विनियोग के विरुद्ध सुरक्षा तथा संसाधनों और संपत्तियों के उपयोग के लिए प्रत्यक्ष साक्ष्य प्रदान करने हेतु इस पद्धति की उपयोगिता सुस्थापित है।
- लोकतांत्रिक प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाना: लोग प्रत्यक्ष रूप से अपने क्षेत्र में सरकारी कार्यक्रमों के कार्यान्वियन का निरीक्षण करते हैं जिससे प्रक्रिया सहभागितापूर्ण बनती है। दीर्घकाल में यह लोगों को सशक्त और विकास की प्रक्रिया को अधिक समावेशी बनाता है।
- इसमें विकास पहलों के लिए सार्वजनिक एजेंसियों द्वारा प्रयुक्त वित्तीय और गैर-वित्तीय, दोनों प्रकार के साधनों का आलोचनात्मक मूल्यांकन सम्मिलित है।

सामाजिक लेखा परीक्षा की सीमाएं

- सामाजिक लेखा परीक्षा का दायरा गहन परंतु अत्यधिक स्थानीयकृत है और वित्तीय, अनुपालन एवं निष्पादन लेखा परीक्षाओं में लेखा-परीक्षा से संबंधित एक विस्तृत श्रृंखला में से केवल कुछ चयनित पहलुओं को ही कवर करता है।
- सामाजिक लेखापरीक्षा के माध्यम से निगरानी सीमित अनुवर्ती कार्रवाई के साथ अनौपचारिक और अप्रसंस्कृत होती है।
- जमीनी स्तर पर सामाजिक लेखापरीक्षा का संस्थानीकरण अपर्याप्त रहा है और भ्रष्टाचार को रोकने के लिए को इसको संस्थागत बनाने में पर्याप्त प्रशासनिक और राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण इसे स्थापित व्यवस्था की ओर से अत्यधिक प्रतिरोध का सामना करना पड़ा है।
- डेटा तक अपर्याप्त पहुंच और विशेषज्ञता की कमी अन्य बाधाएं हैं।
- मीडिया द्वारा सामाजिक लेखा परीक्षा पर विशेष ध्यान न दिया जाना और जांच-पड़ताल कम किया जाना।
- जहाँ MNREGA के लिए औपचारिक सामाजिक लेखा परीक्षा व्यवस्था उपलब्ध कराई गई है, वहीं PDS, NRHM जैसे अन्य कार्यक्रमों में जमीनी स्तर की निगरानी के लिए भिन्न-भिन्न व्यवस्थाएं विद्यमान हैं। इससे सामाजिक लेखा परीक्षा की उपयोगिता सीमित होती है।

अनुशंसाएँ

- द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग ने निम्नलिखित अनुशंसाएं की हैं -
  - सभी कार्यक्रमों के लिए अनिवार्य सामाजिक लेखापरीक्षा का प्रावधान किया जाना चाहिए।
  - सहयोग और समन्वय के औपचारिक फ्रेमवर्क: सभी योजनाओं और नागरिक केंद्रित कार्यक्रमों के संचालनात्मक दिशा-निर्देशों में सामाजिक लेखा परीक्षा तंत्र का प्रावधान किया जाना चाहिए।
  - संगठनों को लोगों के अधिक अनुकूल बनाने हेतु प्रक्रियाओं में आवश्यक परिवर्तनों की अनुशंसा करने के लिए पब्लिक इंटरफ़ेस के क्षेत्रों की जांच हेतु एक सामाजिक लेखा परीक्षा पैनल का गठन किया जाना चाहिए।
- सामाजिक लेखा परीक्षा CAG की लेखा परीक्षा का पूरक है और इसलिए सभी सामाजिक क्षेत्र के कार्यक्रमों की लेखा परीक्षा के लिए इसे हमारी मुख्यधारा की प्रक्रियाओं में शामिल किया जाना चाहिए।
- आंध्र प्रदेश और राजस्थान में सामाजिक लेखापरीक्षा के लिए अलग निदेशालयों की स्थापना में सिविल सोसाइटी समूहों और ग्राम सभा द्वारा की गई प्रगति से सीख लेते हुए अन्य राज्य भी ऐसे उपाय लागू कर सकते हैं।
- सभी सामाजिक क्षेत्र के कार्यक्रमों के लिए ग्रामीण स्तर पर सामाजिक लेखापरीक्षा में एकरूपता लायी जानी चाहिए ताकि समुदायिक सहभागिता की व्यवस्था बेहतर रूप से संस्थागत हो सके।
- ग्राम सभा की शिक्षा और जागरूकता की दिशा में पहल की जानी चाहिए जिससे वे अपने अधिकारों को बेहतर तरीके से समझने में सक्षम हो सकें।

VISION IAS

7.4 अभियोजन से पूर्व स्वीकृति

(Prior Sanction To Prosecute)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, राजस्थान सरकार द्वारा आपराधिक कानून (राजस्थान संशोधन) विधेयक, 2017 प्रस्तुत किया गया। जिसके तहत न्यायाधीश, मजिस्ट्रेट तथा लोक सेवकों को पूर्व स्वीकृति के बिना जांच से उन्मुक्ति प्रदान की गयी है।

पूर्व स्वीकृति की अवधारणा से सम्बंधित विवाद

पूर्व स्वीकृति लोक सेवकों को उनके द्वारा किए गए सार्वजनिक कार्य के लिए विधिक उत्पीड़न से संरक्षण प्रदान करने हेतु अनिवार्य है। हालांकि यहाँ विवाद का विषय यह है कि पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता अन्वेषण प्रारंभ करने से पूर्व होनी चाहिए अथवा न्यायालय में मुकदमा दर्ज करने से पूर्व?

- **सरकार का पक्ष:** पूर्व स्वीकृति ईमानदार अधिकारियों पर किसी के हितों के लिए लगाए गए दुर्भावनापूर्ण आरोपों से संरक्षण प्रदान कर नीतिगत जड़ता (Policy Paralysis) की परिस्थिति से भी सुरक्षा प्रदान करेगी।
- **उच्चतम न्यायालय का पक्ष:** पूर्व स्वीकृति के मुद्दे पर उच्चतम न्यायालय के विचार परस्पर-विरोधी रहे हैं-
  - **2013 के एम.के.अय्यप्पा वाद** तथा 2016 के नारायण स्वामी वाद में उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि CrPC की धारा 156(3) के तहत भी पूर्वानुमति के बिना अन्वेषण का आदेश नहीं दिया जा सकता है।
  - जबकि कुछ अन्य वादों में उच्चतम न्यायालय ने विपरीत विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि अन्वेषण हेतु पूर्व स्वीकृति निष्पक्ष एवं कुशल अन्वेषण में व्यवधान उत्पन्न करती है।
- **वर्तमान वैधानिक स्थिति:** वर्तमान में CrPC के तहत न्यायालय में मुकदमा दर्ज करने के लिए 'पूर्व स्वीकृति' प्राप्त करना आवश्यक है। भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम की धारा 19 भी रिश्वत लेने या आपराधिक कदाचार जैसे अपराधों में लोक सेवकों के विरुद्ध मुकदमा दर्ज करने के लिए पूर्व स्वीकृति को आवश्यक बनाती है।
- **अन्य समान कानून:** इससे पूर्व, महाराष्ट्र के द्वारा निर्मित विधान के तहत भी अन्वेषण के लिए पूर्व स्वीकृति संबंधी प्रावधान शामिल किए गए हैं। हालांकि इस मामले में स्वीकृति को 3 माह के भीतर दिया जाना चाहिए तथा यह दोषी लोक सेवकों के नामों को भी प्रकाशित करने से प्रतिबंधित नहीं करता है।

आगे की राह

- **दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान अधिनियम की धारा 6 A** का सत्यापन करते हुए उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट किया कि पूर्व स्वीकृति का प्रावधान भ्रष्टाचार विरोधी कानूनों के उद्देश्य को नष्ट करने के साथ-साथ स्वतंत्र अन्वेषण प्रक्रिया को भी बाधित करता है। इसके अतिरिक्त यह, भ्रष्ट अधिकारियों को सचेत करता है तथा अनुच्छेद 14 के मूल भाव का उल्लंघन करता है। अतः उपर्युक्त निर्णय को अन्वेषण के लिए पूर्व स्वीकृति की आवश्यकताओं की संवैधानिकता का निर्धारण करने के लिए कसौटी माना जाना चाहिए।
- इसके अतिरिक्त सार्वजनिक कार्यालयों के उच्च विभागों में भ्रष्टाचार की जांच करने के लिए **लोकपाल अधिनियम** को कार्यान्वित करने की आवश्यकता है।
- **द्वितीय प्रशासनिक आयोग (2nd ARC) ने अपनी चौथी रिपोर्ट 'शासन में नैतिकता'** (Probity in Governance) में उल्लिखित किया है कि-
  - संविधान के तहत एक सिविल सेवक के अधिकार **लोक हित की समग्र आवश्यकता** तथा राज्य के संविदात्मक अधिकार के अधीन होने चाहिए।
  - अंततः लोक सेवक राज्य का एक एजेंट है तथा वह सर्वोच्च नहीं हो सकता है। उसका मौलिक कर्त्तव्य है कि वह समग्रता, निष्ठा, ईमानदारी, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता, पारदर्शिता तथा उत्तरदायित्व के साथ राज्य की सेवा करें।
  - अतः इसने संविधान के अनुच्छेद 310 तथा अनुच्छेद 311 को निरस्त करने की अनुशंसा की है।
  - इसने भर्ती एवं सेवा और यहाँ तक कि बर्खास्तगी, निष्कासन अथवा रैंक में कटौती के संबंध में सभी पहलुओं को सम्मिलित करने के लिए अनुच्छेद 309 के तहत उपयुक्त और व्यापक कानून के निर्माण मांग की है।

भारत में सिविल सेवकों को प्रदत्त संरक्षण

- **संवैधानिक संरक्षण**
  - **अनुच्छेद 310** प्रावधान करता है कि संघ की सिविल सेवाओं तथा अखिल भारतीय सेवाओं के सभी सदस्य कोई सिविल पद राष्ट्रपति के प्रसादपर्यन्त धारण करते हैं। इसी प्रकार राज्य लोक सेवाओं के सभी सदस्य उस राज्य के राज्यपाल के प्रसादपर्यन्त पद धारण करते हैं।
  - **अनुच्छेद 311-** यह लोक सेवकों को पदच्युत करने, पद से हटाए जाने या रैंक में अवनत करने की स्थिति से संरक्षण प्रदान करता है।

VISION IAS

- **भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम:** भारतीय दंड संहिता (IPC) अधिनियम की धारा 19 सरकार द्वारा पूर्व स्वीकृति लेने की स्थिति को छोड़कर, सामान्यतः न्यायालय को एक लोक सेवक द्वारा किए गए किसी अपराध को संज्ञान में लेने से प्रतिबंधित करती है।
  - यह सीमा न्यायालय द्वारा विचारण (ट्रायल) के प्रयोजन हेतु मामले को संज्ञान में लेने के विरुद्ध है।
- **भ्रष्टाचार निरोधक संशोधन विधेयक, 2016**
  - आधिकारिक कृत्यों का निर्वहन करते हुए लोक सेवकों द्वारा लिए गए निर्णयों या अनुशंसाओं पर भ्रष्टाचार के संबंध में शिकायतों का अन्वेषण **लोकपाल या लोकायुक्तों की पूर्व स्वीकृति के बिना** (मामले के अनुसार) नहीं किया जाएगा।
  - पूर्व स्वीकृति को सेवानिवृत्त अधिकारियों तक विस्तारित किया जाएगा।

अनुच्छेद-311 पर, होता समिति

- संविधान के अनुच्छेद 311 को संशोधित करने की अनुशंसा की।
- एक भ्रष्ट अधिकारी को सेवा से तत्काल हटाने का प्रावधान करना;
- सामान्य जनता के मध्य यह विश्वास उत्पन्न किया जाना चाहिए कि लोक सेवा के सदस्यों/लोक सेवा का पद धारण करने वाले व्यक्तियों के भ्रष्ट आचरण को सहन नहीं किया जाएगा;
- इस प्रकार अपदस्थ किये गए अधिकारी के लिए भी सुनवाई के माध्यम से न्याय सुनिश्चित किया जाना चाहिए।

VISION IAS

8. शासन (GOVERNANCE)

परिचय

शासन वह तरीका एवं कार्यप्रणाली है जिसके द्वारा किसी संगठन या देश का सर्वोच्च स्तर पर प्रबंधन किया जाता है। एक शांतिपूर्ण और उत्पादक समाज प्रभावी राज्य संस्थाओं पर आधारित होता है।

- इस अर्थ में सुशासन का आशय एक ऐसी प्रभावी और कुशल संरचना से है जो नागरिकों को उनकी इच्छाओं और अवसरों के अनुरूप एक सुरक्षित और उत्पादक जीवन जीने में अधिकतम सहयोग प्रदान करती है। इसके अंतर्गत लोकतंत्र, कल्याणकारी राज्य और विधि का शासन सम्मिलित है।
- इसका उद्देश्य एक ऐसा परिवेश प्रदान करना है जिसमें जाति और लिंग की विविधता के बावजूद सभी नागरिक अपनी पूर्ण क्षमता का विकास कर सकें। इसका उद्देश्य नागरिकों को प्रभावपूर्ण, कुशल और समान सार्वजनिक सेवाएं प्रदान करना भी है।
- राज्य व्यक्तिगत क्षमताओं के निर्माण और निजी पहल को प्रोत्साहित करने के लिए एक अनुकूल राजनीतिक, वैधानिक और आर्थिक परिवेश सृजित करने के लिए उत्तरदायी है।
- सुशासन की अवधारणा चार स्तंभों पर आधारित है। संक्षेप में ये चार स्तंभ निम्नलिखित हैं-
    - लोकाचार (Ethos): नागरिकों की सेवा की भावना,
    - नैतिकता (Ethics): ईमानदारी, सत्यनिष्ठा और पारदर्शिता
    - समता (Equity): सभी नागरिकों के साथ समान व्यवहार करना तथा कमजोर वर्गों के प्रति सहानुभूति, तथा
    - दक्षता (Efficiency): नागरिकों को बिना उत्पीड़न के सेवाओं का तीव्र और प्रभावी वितरण सुनिश्चित करना तथा ICT का उत्तरोत्तर उपयोग।

सुशासन के समक्ष बाधाएं

- **सिविल सेवकों की अभिवृत्ति संबंधी समस्याएं:** इसे उनके कठोर, स्वयं को स्थायी बनाए रखने (self-perpetuating) और अंतर्मुखी दृष्टिकोण (inward-looking approaches) के संदर्भ में देखा जा सकता है।
- **उत्तरदायित्व की कमी:** जटिल अनुशासनात्मक प्रक्रिया और अक्षम प्रदर्शन मूल्यांकन प्रणाली के कारण दोषी सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध शायद ही कभी कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही आरंभ की जाती है या उन्हें दंड दिया जाता है।
- **लालफीताशाही:** नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों प्रति जागरूकता का अभाव।
- **नागरिकों द्वारा नियमों का अनुपालन न किया जाना:** इसे भी सुशासन के समक्ष बाधा माना जाता है। अपने अधिकारों के साथ-साथ अपने कर्तव्यों से भी पूर्णतया अवगत एक जागरूक नागरिक यह सुनिश्चित करने का सबसे बेहतर तरीका हो सकता है कि अधिकारियों के साथ-साथ अन्य नागरिक भी अपने कर्तव्यों का प्रभावी और ईमानदार तरीके से निर्वहन करें।
- **नियमों और कानूनों का अप्रभावी क्रियान्वयन:** हालांकि विधायिका द्वारा निर्मित कानून प्रभावी और प्रासंगिक हो सकते हैं, लेकिन प्राय: इनका सरकारी अधिकारियों द्वारा उचित रूप से क्रियान्वयन नहीं किया जाता है।

निम्नलिखित कदम उठाए जाने की आवश्यकता है:

- **प्रभावी कानूनी ढांचा-** संविधान हमारे वैधानिक ढांचे का आधार है, हालांकि एक गतिशील समाज को मौजूदा **कानूनों को निरंतर अद्यतन करने** और उभरती आवश्यकताओं और चुनौतियों का सामना करने हेतु नए कानूनों के अधिनियमन की आवश्यकता होती है ताकि नागरिकों की कल्याण, सुरक्षा और विकास की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।
- **विधि का शासन (जीरो टॉलरेंस स्ट्रेटेजी) -** विकेंद्रीकरण और शक्तियों के प्रत्यायोजन के माध्यम से स्थानीय निकायों को सुदृढ़ बनाने के साथ-साथ लोक व्यवस्था को बनाए रखने और कानूनों के अनुपालन हेतु एक परिवेश का निर्माण करने के लिए सभी सार्वजनिक एजेंसियों को अपराध के प्रति जीरो टॉलरेंस स्ट्रेटेजी को अपनाना चाहिए।
- **पारदर्शिता और सूचना का अधिकार** सुशासन के लिए एक पूर्व आवश्यक शर्त है। नागरिकों की सूचना तक पहुंच, उन्हें लोक नीतियों एवं कार्यक्रमों से संबंधित सूचनाओं की माँग करने और इन सूचनाओं को प्राप्त करने हेतु सशक्त बनाती है। इस प्रकार यह सरकार को अधिक उत्तरदायी बनाती है और सहभागी लोकतंत्र एवं नागरिक केंद्रित शासन को सुदृढ़ बनाने में सहायता करती है।

VISIONIAS

- **आवधिक निगरानी और शासन की गुणवत्ता का स्वतंत्र मूल्यांकन -** सामाजिक और आर्थिक लोक सेवाओं के प्रभावी और दक्षतापूर्ण तरीके से वितरण करने में सरकार को दक्ष होना चाहिए, जो इसका प्राथमिक उत्तरदायित्व है। इसके लिए कार्यक्रमों के डिजाइन की निरंतर निगरानी और उस पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

8.1 राजनीति का अपराधीकरण

(Criminalization of Politics)

कुछ व्यक्तियों द्वारा राजनीतिक शक्तियों का विशेषाधिकारों की प्राप्ति हेतु अनुचित प्रयोग किया जाता है। जब यह प्रवृत्ति राजनीति के क्षेत्र में व्यापक रूप से प्रचलित हो जाती है तो इसे राजनीति के अपराधीकरण के रूप में वर्णित किया जाता है।

महत्वपूर्ण आंकड़े (Association of Democratic Reforms: ADR)- (2014 लोक सभा चुनाव)

- 542 विजेताओं के संबंध में की गयी जाँच से ज्ञात हुआ कि इनमें से 185 (34%) विजयी उम्मीदवारों के विरुद्ध **आपराधिक मामले दर्ज थे।**
- इन उम्मीदवारों में से 112 (21%) पर हत्या, हत्या के प्रयास, साम्प्रदायिक विद्वेष, अपहरण, महिलाओं के विरुद्ध अपराध इत्यादि जैसे **गंभीर आपराधिक मामले** दर्ज थे।
- चुनावों में एक आपराधिक पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवार के विजयी होने की सम्भावना 13% थी, जबकि एक स्वच्छ छवि वाले उम्मीदवार के जीतने के अवसर मात्र 5% थे।

राजनीति के बढ़ते अपराधीकरण के लिए उत्तरदायी कारण:

- **बाहुबल:** भारतीय राजनीति में बाहुबल का प्रभाव दीर्घकाल से राजनीतिक जीवन का एक महत्वपूर्ण तथ्य बना हुआ है। अनेक राजनेताओं द्वारा अपने वोटबैंक में वृद्धि हेतु अपराधियों के बाहुबल का उपयोग किया जाता है।
- **धनबल:** आपराधिक गतिविधियाँ विशाल चुनावी व्यय हेतु धन उपलब्ध कराती हैं।
- **चुनाव की कार्यप्रणाली में कमियां:** मतदाता सामान्यतया एक उम्मीदवार के इतिहास, योग्यता तथा उसके विरुद्ध लम्बित मामलों के प्रति जागरूक नहीं होते।
- **दुर्बल न्यायिक प्रणाली तथा न्याय की अस्वीकृति:** जिला न्यायालयों, उच्च न्यायालयों तथा उच्चतम न्यायालय में इन अपराधी-सह-राजनेताओं के विरुद्ध हजारों मामले लम्बित हैं।

राजनीति के अपराधीकरण पर गठित विभिन्न समितियों का पर्यवेक्षण

संथानम समिति रिपोर्ट 1963

- इस समिति ने संदर्भित किया कि राजनीतिक भ्रष्टाचार अधिकारियों के भ्रष्टाचार से अधिक हानिकारक हैं। इसने केंद्र तथा राज्य दोनों स्तरों पर सतर्कता आयोग की स्थापना की अनुशंसा की थी।

वोहरा समिति रिपोर्ट (1993)

- इसने भारत में राजनीति के अपराधीकरण की समस्या तथा अपराधियों, राजनेताओं तथा नौकरशाहों के मध्य गठजोड़ का अध्ययन किया था।
- हालांकि, 25 वर्ष पूर्व प्रस्तुत की गई रिपोर्ट को गृह मंत्रालय द्वारा अभी तक सार्वजनिक नहीं किया गया है।

पुलिस सुधारों पर पद्मनाभैया समिति

- इस समिति ने पाया कि पुलिस के राजनीतिकरण तथा अपराधीकरण का मूल कारक भ्रष्टाचार है।
- पुलिस के अपराधीकरण को राजनीति के अपराधीकरण से पृथक नहीं किया जा सकता है। राजनीति के अपराधीकरण ने दंडाभाव की संस्कृति को सृजित एवं प्रोत्साहित किया है। यह संस्कृति एक अनैतिक पुलिसकर्मी को उसके किए गए कृत्यों एवं न किये गए कृत्यों के लिए अपराधों से संरक्षण प्रदान करती है।

इस दुर्बलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

- **राजनीतिक दलों का संस्थानीकरण का अभाव:** राजनीतिक दलों की गतिविधियों को विनियमित करने, किसी दल के राष्ट्रीय या क्षेत्रीय दल के रूप में पंजीकरण हेतु मानदंड निर्धारित करने तथा दलों की मान्यता रद्द करने जैसे व्यापक विधानों का अभाव है।
- **राजनीतिक दलों द्वारा नियमित खातों का निर्माण नहीं करना-** राजनीतिक दलों के ऑडिटेड खाते मुक्त निरीक्षण हेतु उपलब्ध नहीं हैं।
- **संरचनात्मक एवं संगठनात्मक सुधार न होना -** दलों में आंतरिक लोकतंत्र, नियमित दलीय चुनाव, दलों में कार्यकर्ताओं की भर्ती तथा सामाजीकरण, विकास और प्रशिक्षण, अनुसंधान, चिंतन एवं नीति नियोजन जैसी गतिविधियों का अभाव है।

VISION IAS

अपराधीकरण का प्रभाव

- **कानून तोड़ने वालों का विधि निर्माता के रूप में चयन:** विभिन्न अपराधों में संलिप्त व्यक्तियों को सम्पूर्ण देश के लिए विधि निर्माण का अवसर प्रदान कर दिया जाता है। यह संसद की पवित्रता को भंग करता है।
- **न्यायिक प्रणाली के प्रति जन विश्वास में कमी:** यह स्पष्ट है कि राजनीतिक प्रभुत्व वाले लोग सुनवाई में विलम्ब, पुनरावृत्त स्थगन प्राप्त करके और किसी भी सार्थक प्रगति को रोकने हेतु विभिन्न अंतर्वादीय याचिकाएं (interlocutory petitions) दायरकर अपनी शक्ति का लाभ उठाते हैं। यह न्यायिक प्रणाली की विश्वसनीयता को संदेह के दायरे में लाता है।
- **विकृत लोकतंत्र:** जहाँ विधि का शासन अप्रभावी तथा सामाजिक विभाजन अधिक प्रभावी एवं अनियंत्रित है, वहां एक उम्मीदवार की आपराधिक प्रतिष्ठा एक गुण के रूप में स्वीकार की जाती है। यह राजनीति के अपराधीकरण तथा राजनीति में धन एवं बाहुबल के प्रयोग की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देता है।
- **संसद की कार्य क्षमता को प्रभावित करता है:** ऐसी आपराधिक पृष्ठभूमि वाले व्यक्ति संसद की कार्य प्रणाली में बाधा उत्पन्न करते हैं, जो दीर्घावधि में इसकी क्षमता को प्रभावित करती है।
- **अपराधिक प्रवृत्ति का स्थायीकरण :** चूंकि राजनीतिक दलों द्वारा केवल उम्मीदवारों की जीतने की क्षमता (**दल के आंतरिक लोकतंत्र में बाधा पंहुचाने** पर भी) पर अधिक ध्यान दिया जाता है अतः वे अधिक से अधिक प्रभावशाली तत्वों को दल में शामिल करते हैं। इस प्रकार, राजनीति का अपराधीकरण स्वयं को स्थायी बनाए रखता है तथा सम्पूर्ण चुनावी संस्कृति को विकृत करता है।
- **निजी कल्याण बनाम लोक कल्याण:** कुछ सदस्य अवैध गठजोड़ में संलग्न हो जाते हैं जिससे क्रोनी कैपिटलिज्म का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। इस प्रकार **संसद सदस्य स्थानीय क्षेत्र विकास योजना (MPLADs) के लिए प्रदत्त निधि के अपर्याप्त उपयोग** द्वारा लोक कल्याण की उपेक्षा करते हैं। केन्द्रीय सूचना आयोग के आंकड़ों के अनुसार 2016-17 में लोकसभा सांसदों हेतु MPLADs के तहत अधिकृत 2,725 करोड़ रूपए की कुल निधि में से केवल 1,620 करोड़ रूपए जारी किए गए।

8.2. नेताओं से सम्बंधित मुकदमों की सुनवाई हेतु विशेष न्यायालय

(Special Courts for Trying Politicians)

सुर्ख़ियों में क्यों?

- उच्चतम न्यायालय ने 12 फास्ट ट्रैक न्यायालयों की स्थापना के लिए केंद्र सरकार की योजना को स्वीकार कर लिया है। इन न्यायालयों की स्थापना का उद्देश्य एक वर्ष के भीतर सांसदों और विधायकों के विरुद्ध लंबित 1,581 आपराधिक मामलों पर विशेष रूप से मुकदमा चलाना और उनका निपटान करना है।

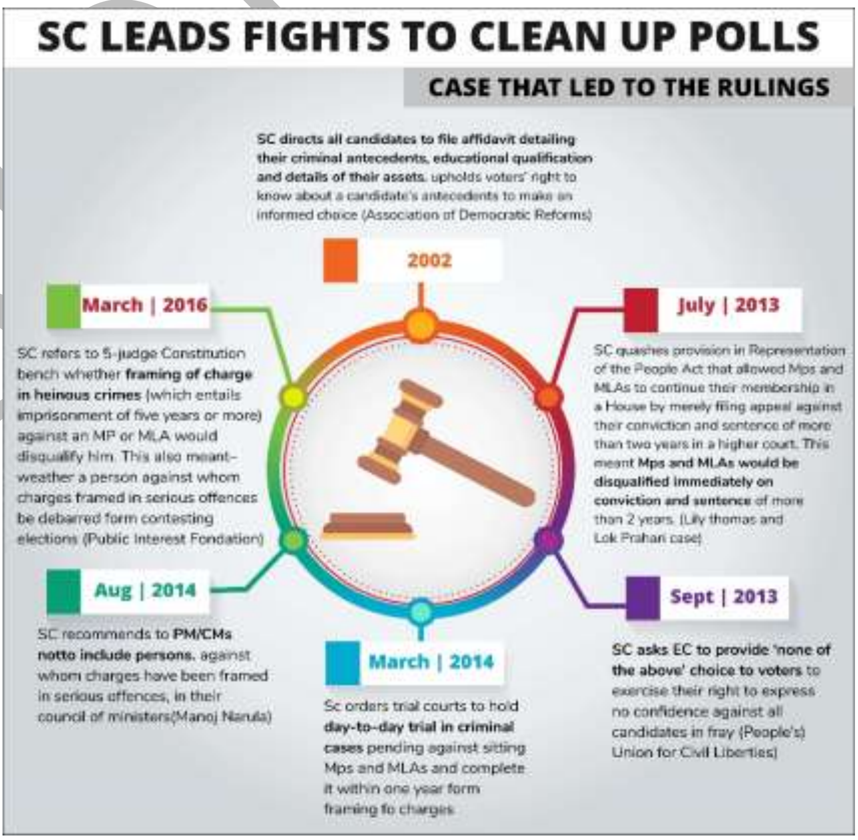

विश्लेषण

- नेताओं के लिए विशेष न्यायालयों की स्थापना करने का उच्चतम न्यायालय का निर्णय एक सकारात्मक प्रयोजन से लिया गया निर्णय है। इनके द्वारा प्रभावशाली राजनेताओं के मामलों में शीघ्रता से न्याय सुनिश्चित किया जा सकेगा, जिनमें अन्यथा अनेक वर्ष लगते हैं। इसके अतिरिक्त, यह नेताओं के हित में भी होगा, क्योंकि मामलों में शीघ्रता से निर्णय दिए जाने से निर्दोष नेताओं की छवि में सुधार होगा।
- इस योजना का समयबद्ध स्वरूप मतदाताओं को भी उनके प्रतिनिधियों के बारे में बेहतर जानकारी प्रदान करेगा।
- हालांकि, व्यक्ति की किसी विशिष्ट श्रेणी यथा नेताओं के लिए एक पृथक न्यायालय की स्थापना करना एक भेदभावपूर्ण कदम है। इसके अतिरिक्त, ऐसे कदम से नियमित न्यायालयों की विश्वसनीयता पर भी प्रश्न चिन्ह लगेगा, क्योंकि ऐसा समझा जायेगा कि नियमित न्यायालयों द्वारा न्याय नहीं प्रदान किया जा सकता है।

- चिंता का एक विषय यह भी है कि ऐसे विशेष न्यायालयों के निर्णयों को अपील के बाद पलट दिया जाना एक अतिसंवेदनशील स्थिति उत्पन्न करेगा।
- भारत में फास्ट ट्रैक न्यायालयों की स्थापना पहले भी की गई है, लेकिन इससे न्याय वितरण की गुणवत्ता में वास्तविक परिवर्तन नहीं किया जा सका है।

राजनेताओं से जुड़े मामलों की सुनवाई में तेज़ी लाने के अतिरिक्त चुनावी सुधारों (ऊपर की गई चर्चा के अनुरूप) और राजनीतिक दलों में सुधारों की भी आवश्यकता है।

8.3. राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र

(Inner Party Democracy)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, प्रधानमंत्री ने देश में राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र की आवश्यकता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए।

दलों में आंतरिक लोकतंत्र के बारे में

- राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र से आशय दलों की संरचना के अंतर्गत निर्णय लेने और विचार-विमर्श करने में दल के सदस्यों को शामिल करने के स्तर और प्रणाली से है।
- स्वतंत्रता के बाद से, संगठनात्मक मामलों में प्राधिकारिता अधिकतर उच्च से निम्न स्तर के रूप में व्यवस्थित है। इस प्रकार, भारत में अधिकतर राजनीतिक दलों में नेतृत्व दिखने में तो लोकतांत्रिक हो सकता है लेकिन वास्तविकता में यह अत्यधिक कुलीन तंत्र आधारित है।
- कुछ देशों जैसे जर्मनी और पुर्तगाल के विपरीत भारत में जनप्रतिनिधित्व अधिनियम (RPA) की धारा 29A में कुछ संबंधित प्रावधानों और निर्वाचन आयोग के दिशा-निर्देशों के अतिरिक्त राजनीतिक दलों में आंतरिक लोकतंत्र को लागू करने से सम्बंधित कोई कानूनी प्रावधान नहीं है।

इससे संबंधित प्रगति

- निर्वाचन कानूनों में सुधार पर **भारतीय विधि आयोग की 170वीं रिपोर्ट** (1999) "दलों में आंतरिक लोकतंत्र से संबंधित कानून प्रदान करने की आवश्यकता" पर केंद्रित थी।
- **ARC की 2008 की एथिक्स एंड गवर्नेंस रिपोर्ट** में अत्यधिक केंद्रीकरण के कारण भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में चर्चा की गयी थी।
- भारत के पूर्व मुख्य न्यायाधीश **एम.एन. वेंकटचलैया** की अध्यक्षता वाली एक **समिति** ने राजनीतिक दलों की कार्य प्रणाली को विनियमित करने के लिए एक विधेयक का प्रारूप तैयार किया था।

दलों में आंतरिक लोकतंत्र के पक्ष में तर्क

- यह नेताओं को जवाबदेह बनाने और नीति निर्णय प्रक्रियाओं में सार्थक ढंग से शामिल करने में दल के सदस्यों की सहायता करेगा, क्योंकि इससे दल के अंदर प्रतियोगिता, भागीदारी और प्रतिनिधित्व को बढ़ावा मिलता है।
- इससे **भाई-भतीजावाद और वंशवादी राजनीति** (पारिवारिक पृष्ठभूमि, जाति, धर्म आदि पर आधारित संबद्धता) का उन्मूलन करना संभव हो सकता है।
- यह दल के अंदर **असहमति को उचित स्थान** देगा जिससे राजनीतिक दलों के भीतर विभिन्न धड़ों के गठन की संभावना कम हो जाएगी।
- यह दल के **कोष के रखरखाव में पारदर्शिता को बढ़ावा** दे सकता है, जिससे **धन और बल के प्रभाव में कमी** आएगी।
- चूँकि नीतिगत निर्णयों में पार्टी के भीतर विचार-विमर्श और बहस शामिल हो सकेगी, अतः यह देश के समक्ष बड़े मुद्दों में स्थानीय राजनेताओं के भीतर स्वामित्व की भावना उत्पन्न कर सकता है।

दलों में आंतरिक लोकतंत्र के विरुद्ध कुछ मत-

- यह राजनीतिक दलों के भीतर आंतरिक कलह को बढ़ाकर दलीय संगठनों की दक्षता के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता है।
- यह माना जाता है कि राजनीतिक दलों को अपनी आंतरिक संरचनाओं और प्रक्रियाओं को शासित करने की अनुमति दी जानी चाहिए। उनके कामकाज में किसी भी प्रकार का बाहरी हस्तक्षेप बहुदलीय प्रतियोगिता के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता है।

आगे की राह

- वस्तुतः एक ऐसे **व्यापक कानून** की आवश्यकता है जो विशेष रूप से दलों में आंतरिक लोकतंत्र के ढाँचे और प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान केंद्रित करता हो।
- दलों द्वारा गैर-अनुपालन के विरुद्ध कुछ दंडनीय प्रावधानों के माध्यम से मौजूदा आंतरिक लोकतंत्र के उपायों के बेहतर कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए ECI को सक्षम बनाया जाना चाहिए।
- एक बाहरी संगठन द्वारा आंतरिक चुनावों को मान्यता देना उन्हें अधिक वैधता प्रदान करेगा तथा दल के सदस्यगण भी प्रतिकूल परिणाम स्वीकार करने के प्रति अधिक सहज होंगे।

VISION IAS

- दल-बदल कानून में संशोधन किया जाना चाहिए, क्योंकि वर्तमान में यह किसी विधायिका के निर्वाचित सदस्यों को उनके दल के आदेश के विरुद्ध मतदान करने से रोकता है। यह भारतीय लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व और असहमति की बुनियादी विशेषताओं के विरुद्ध है।

8.4. आपराधिक न्याय प्रणाली

(Criminal Justice System)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

सरकार द्वारा आपराधिक न्याय प्रणाली (CJS) में सुधारों से संबंधित **मलिमथ समिति की रिपोर्ट** पर पुनर्विचार की आवश्यकता पर विचार किया जा रहा है।

इस समिति से संबंधित तथ्य

- वर्ष 2000 में सरकार द्वारा मौजूदा आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार संबंधी सुझाव देने के लिए केरल और कर्नाटक के पूर्व मुख्य न्यायाधीश वी.एस. मलिमथ की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया।
- यह प्रथम अवसर था जब सरकार द्वारा देश में मौजूद समग्र आपराधिक न्याय प्रणाली की संपूर्ण और व्यापक समीक्षा हेतु ऐसी समिति का गठन किया गया।
- समिति ने वर्ष 2003 में अपनी 158 अनुशंसाएं प्रस्तुत कीं।
- हालांकि, इसकी अनुशंसाओं पर कोई कार्यवाही नहीं की गयी।

आपराधिक न्याय प्रणाली (CJS)

- आपराधिक न्याय प्रणाली से आशय सरकार की उन संस्थाओं से है जो कानून का प्रवर्तन करने, आपराधिक मामलों पर निर्णय देने और आपराधिक आचरण में सुधार करने हेतु कार्यरत हैं।
- इसके **तीन घटक** पुलिस, न्यायालय और कारागार हैं। ये एक एकीकृत लक्ष्य की प्राप्ति हेतु परस्पर सम्बद्ध, परस्पर निर्भर और प्रयासरत हैं।
- **भारतीय आपराधिक विधि** के अंतर्गत भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 के कुछ भागों सहित भारतीय दंड संहिता (IPC) 1860 एवं दंड प्रक्रिया संहिता (CrPC) 1973 सम्मिलित हैं। इसके साथ ही बड़ी संख्या में मौजूद विशेष और स्थानीय कानून, विभिन्न अन्य असामाजिक गतिविधियों को नियंत्रित करते हैं।

CJS की समीक्षा की आवश्यकता

- IPC और CrPC को अपनाये जाने के बाद से **देश में अपराधों की प्रकृति और स्थितियों में अनेक परिवर्तन** हुए हैं।
- देश में होने वाले तथा दर्ज किए गए **अपराधों की संख्या में वृद्धि** हुई है, जिनका भार स्पष्ट रूप से पुलिस पर है।
- राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के अनुसार प्रति वर्ष की गयी लगभग 60 प्रतिशत गिरफ्तारियाँ **अनावश्यक और अनुचित** होती हैं, जिसका मुख्य कारण जमानती न्याय एवं कारावास संबंधी न्याय प्रणाली है।
- वर्तमान न्यायिक प्रणाली **आपराधिक मामलों के लंबित होने** एवं दोषसिद्धि की दर अत्यधिक कम होने जैसी समस्याओं का सामना कर रही है। इससे न्यायिक प्रणाली की विश्वसनीयता में कमी आती है।
- आपराधिक न्याय प्रणाली के व्यापक उद्देश्यों को कहीं भी संहिताबद्ध नहीं किया गया है। हालांकि इन्हें संविधान और न्यायिक निर्णयों सहित विभिन्न विधियों के आधार पर निर्धारित किया जा सकता है।
- इस प्रकार इन सभी तत्वों के कारण न्यायिक प्रणाली की क्षमता में कमी हुई है। यह न केवल **इस प्रणाली के औचित्य के लिए गंभीर चुनौती** है, बल्कि सामाजिक व्यवस्था पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालती है।
- **अन्य मुद्दों** में, जांच और अभियोजन के मध्य समन्वय की कमी, गवाह की अपर्याप्त सुरक्षा, पीड़ितों के अधिकारों के प्रति असंवेदनशीलता आदि शामिल हैं।

इन्क्विज़िटोरीअल सिस्टम (Inquisitorial System)

- यह **एक कानूनी प्रणाली** है, जहां न्यायालय या न्यायालय का एक भाग किसी वाद के तथ्यों की जांच में सक्रिय रूप से शामिल होता है।
- यह एडवर्सेरियल सिस्टम (सामान्यतः भारत में लागू) के विपरीत है, जिसमें न्यायालय की भूमिका मुख्य रूप से अभियोजन पक्ष और बचाव पक्ष के मध्य एक निष्पक्ष निर्णयकर्ता की होती है।

VISION IAS

रिपोर्ट की कुछ महत्वपूर्ण अनुसंशाएं

- जर्मनी और फ्रांस जैसे देशों से **इन्क्विज़िटोरीअल सिस्टम** को ग्रहण किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त, यदि आवश्यक हो तो न्यायालयों को किसी भी व्यक्ति को समन करने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए, चाहे वह जाँच हेतु साक्षी के तौर पर सूचीबद्ध हो या न हो।
- **चुप रहने का अधिकार (राइट टू साइलेंस)-** संविधान के अनुच्छेद 20(3) में सुधार किया जा सकता है। अनुच्छेद 20(3), स्वयं के विरुद्ध गवाही देने के लिए विवश करने से अभियुक्त की रक्षा करता है। इस सन्दर्भ में न्यायालय को अभियुक्त से जानकारी प्राप्त करने और यदि वह उत्तर देने से मना करे तो उसके विरुद्ध प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने की स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए।
- **अभियुक्त के अधिकार-** संहिता की एक सूची सभी क्षेत्रीय भाषाओं में प्रस्तुत की जानी चाहिए ताकि अभियुक्त अपने अधिकारों के साथ-साथ यह भी जान सकें कि उनका कैसे प्रयोग किया जाये और उन अधिकारों के हनन की स्थिति में किससे संपर्क किया जाए।
- **अपराध पीड़ित को न्याय -**
  - गंभीर अपराधों से संबंधित मामलों में पीड़ित को कार्यवाही में भाग लेने की अनुमति और पर्याप्त क्षतिपूर्ति प्रदान की जानी चाहिए।
  - गंभीर अपराधों के मामलों में पीड़ित की मृत्यु हो जाने पर **कानूनी प्रतिनिधि** को स्वयं को एक पक्षकार के रूप में प्रस्तुत करने का अधिकार हो।
  - राज्य को पीड़ित का पक्ष रखने के लिए **उसकी रूचि के अनुरूप अधिवक्ता** उपलब्ध करवाना चाहिए। साथ ही यदि पीड़ित उसका शुल्क देने में सक्षम नहीं है तो उसे राज्य द्वारा वहन किया जाना चाहिए।
  - सभी गंभीर अपराधों में **पीड़ित को क्षतिपूर्ति** राज्य का दायित्व है, चाहे अपराधी को गिरफ्तार किया गया हो या नहीं या चाहे आरोपी दोषी हो या निर्दोष।
  - पीड़ित क्षतिपूर्ति कानून के अंतर्गत एक **पीड़ित क्षतिपूर्ति कोष** बनाया जा सकता है और संगठित अपराधों में जब्त संपत्ति को कोष का एक भाग बनाया जा सकता है।
- **पुलिस जांच-** जांच की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा आयोग और राज्य सुरक्षा आयोग का गठन किया जा सकता है। संगठित अपराधों से निपटने हेतु विशेषीकृत दस्तों का गठन और आपराधिक आंकड़ों का अनुरक्षण करने के लिए प्रत्येक जिले में एक अतिरिक्त पुलिस अधीक्षक को नियुक्त किया जाना चाहिए।
- **न्यायालय और न्यायाधीश-** यह भारतीय न्यायिक प्रणाली में और अधिक न्यायाधीशों की आवश्यकता को निर्दिष्ट करती है।
  - साथ ही, उच्चतर न्यायालयों में पृथक आपराधिक विभाग होना चाहिए जो ऐसे न्यायाधीशों से गठित हो जो आपराधिक कानूनों के विशेषज्ञ हों।
  - राष्ट्रीय न्यायिक आयोग का गठन किया जाना चाहिए और न्यायाधीशों के महाभियोग की प्रक्रिया को सरल बनाने के लिए अनुच्छेद 124 में संशोधन किया जाना चाहिए।
- **गवाह की सुरक्षा-** समिति ने एक सुदृढ़ गवाह सुरक्षा तंत्र के प्रावधान पर बल दिया है। इसने कहा है कि यदि क़ानूनी पूछताछ के दौरान गवाह को परेशान किया जाता है तो न्यायाधीश द्वारा आवश्यक कदम उठाये जाने चाहिए।
- **महिलाओं के विरुद्ध अपराध-** महिलाओं के विरुद्ध अपराध के संदर्भ में इसने विभिन्न परिवर्तनों की अनुशंसा की है। उदाहरण के लिए- यह अनुच्छेद 498A (दहेज उत्पीड़न) को जमानती और प्रशमनीय (compoundable) अपराध बनाने का समर्थन करती है।
- **संगठित अपराध और आतंकवाद-** यद्यपि कानून एवं व्यवस्था एक राज्य सूची का विषय है, तथापि संगठित अपराध, संघीय अपराध और आतंकवाद से निपटने हेतु एक केंद्रीय कानून लागू किया जाना चाहिए।
- **आवधिक समीक्षा-** आपराधिक न्याय प्रणाली की कार्यपद्धति की समय-समय पर समीक्षा हेतु प्रेजिडेंशल कमीशन (Presidential Commission) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधारों के तीन महत्वपूर्ण घटक हैं-

1. न्यायिक सुधार (ऊपर इस टॉपिक को कवर किया गया है)
2. पुलिस सुधार (मेन्स 365 के सुरक्षा सम्बन्धी नोट्स में कवर किया जाएगा)
3. जेल सुधार (जैसी कि नीचे चर्चा की गई है)

8.4.1. भारत में गवाहों का संरक्षण

(Witness Protection in India)

सुर्ख़ियों में क्यों ?

हाल ही में बॉम्बे हाईकोर्ट ने CBI से गवाहों को प्रदान की जाने वाली सुरक्षा के बारे में सवाल किया क्योंकि उनमें से अधिकांश अपने बयानों से मुकर गए थे।

VISION IAS

भारत में गवाहों की सुरक्षा के लिए प्रावधान-

भारत में गवाहों की सुरक्षा के लिए कोई पृथक कानून नहीं है। इन प्रावधानों का विभिन्न कानूनों में उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त, गवाहों या उनके संबंधियों की सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए ये कानून प्रभावी नहीं हैं। इनमें से कुछ क़ानून निम्नलिखित हैं -

- साक्ष्य अधिनियम की धारा 151 और 152
- राष्ट्रीय जांच एजेंसी अधिनियम, 2008 की धारा 17

मॉडल उदाहरण: दिल्ली गवाह सुरक्षा योजना (Delhi Witness Protection Scheme)

- दिल्ली स्टेट लीगल सर्विसेज अथॉरिटी (DSLSA) द्वारा जोखिमों के आकलन के बाद प्रत्येक मामले में सुरक्षा संबंधी आदेश दिए जाते हैं।
- गवाह सुरक्षा संबंधी आदेश के समग्र कार्यान्वयन के लिए पुलिस आयुक्त उत्तरदायी होते हैं।
- सुरक्षा उपायों में सशस्त्र पुलिस संरक्षण, गवाहों के घर के आसपास नियमित गश्त, क्लोज़्ड-सर्किट टेलीविज़न कैमरे लगाना और गवाहों का स्थानांतरण आदि शामिल हो सकते हैं।

गवाहों की सुरक्षा का महत्व

- गवाह, न्याय व्यवस्था की आंख और कान होते हैं। जब किसी अपराध से संबंधित गवाह को धमकी दी जाती है, उसकी हत्या की जाती है या उसका उत्पीड़न किया जाता है, तब केवल गवाह को धमकी ही नहीं मिलती अपितु किसी नागरिक के स्वतंत्र एवं उचित ट्रायल के मौलिक अधिकार का भी हनन होता है।
- न्याय प्रशासन का मुख्य स्तंभ न्यायालय में बिना किसी पक्षपात या भय के तथा बिना किसी धमकी या प्रलोभन के अपनी गवाही देने वाले गवाहों के अस्तित्व पर निर्भर होता है। यदि गवाह अपनी गवाही किसी भय या धमकी अथवा पक्षपात या प्रलोभन के वशीभूत होकर देता है, तो इससे न केवल न्याय प्रशासन की नींव कमज़ोर होती है बल्कि इसका अस्तित्व भी समाप्त हो सकता है।
- देश में दोषसिद्धि में होने वाले विलम्ब का यह सबसे बड़ा कारण रहा है। उदाहरणस्वरुप, गंभीर अपराधों से संबंधित पीड़ित और गवाह विशेष रूप से तब संकट की स्थिति में होते हैं जब दोषी व्यक्ति शक्तिशाली, प्रभावशाली या समृद्ध वर्ग से संबंधित हो और पीड़ित या गवाह सामाजिक या आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग से संबंध रखता हो।

गवाह संरक्षण विधेयक 2015 (Witness Protection Bill 2015) - प्रस्तावित विधेयक का उद्देश्य गवाहों का संरक्षण सुनिश्चित करना है -

- गवाह संरक्षण कार्यक्रम का निर्माण करने और उसके कार्यान्वियन को सुनिश्चित करने हेतु **राष्ट्रीय गवाह संरक्षण परिषद और राज्य गवाह संरक्षण परिषद का गठन करना।**
- कार्यक्रम में प्रवेश दिए जाने के पश्चात गवाह (जिसे यहाँ "संरक्षित" कहा गया है) से पूछताछ करने एवं उसे संरक्षण प्रदान करने के संबंध में ट्रायल कोर्ट हेतु एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए "गवाह संरक्षण प्रकोष्ठ" का गठन करना।
- गवाहों की पहचान सुरक्षित रखने के लिए रक्षोपाय उपलब्ध कराना।
- यह सुनिश्चित करना कि मूल न्यायिक क्षेत्राधिकार से स्थानांतरित वादों (Cases) के गवाह स्वतंत्र रूप से अपनी गवाही दे सकें।
- कोई व्यक्ति जिसने इन प्रावधानों का उल्लंघन किया हो और झूठी गवाही दी हो उसके लिए कठोर दंड का उपबंध करना।

गवाहों की सुरक्षा से संबंधित चुनौतियां

- **न्यायिक क्षेत्राधिकार में अतिव्यापन (Overlap)-** पुलिस और लोक व्यवस्था संविधान की सातवीं अनुसूची के अंतर्गत राज्य का विषय है, जबकि आपराधिक कानून और आपराधिक प्रक्रिया समवर्ती सूची का विषय हैं। अतः न्यायिक क्षेत्राधिकार में अतिव्यापन के कारण गवाहों के लिए एक सुदृढ़ संरक्षण नीति की समस्या विद्यमान है।
- स्वतंत्रता और जवाबदेहिता के अभाव जैसे **पुलिस विभाग से संबंधित कई मुद्दों** ने गवाहों को सुरक्षा प्रदान करने की उनकी क्षमता को प्रभावित किया है। पुलिस बल की संख्या काफी कम है। एक लाख आबादी में मात्र 136 पुलिसकर्मी ही हैं। विकसित देशों के मानकों की तुलना में यह अनुपात काफी कम है।
- **गवाहों की सुरक्षा और अभियुक्तों के अधिकारों में संतुलन स्थापित करना -** कई मामलों में गवाहों की गुमनामी उनकी सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण हो जाती है लेकिन अपराध प्रक्रिया संहिता (Code of Criminal Procedure) की धारा 327 ने खुली सुनवाई के महत्त्व को भी निर्धारित किया है। खुली सुनवाई के तहत आरोपी के लिए यह जानना आवश्यक हो जाता है कि उसके खिलाफ कौन गवाही दे रहा है। यह प्रक्रिया मुख्यतः उन्हें इस तरह की गवाही के खिलाफ खुद को सुरक्षित करने के लिए होती है।
- **प्रशासन में भ्रष्टाचार-** दूसरी बड़ी समस्या यह है कि प्रशासन और न्यायपालिका में भ्रष्टाचार की जड़ें बहुत गहरी हैं। गवाह संरक्षण कार्यक्रम अप्रभावी पर्यवेक्षण के कारण सुचारु ढंग से कार्यान्वित नहीं किया जा सकेगा।

VISION IAS

- **व्हिसलब्लोवर के संरक्षण से संबंधित मुद्दा:** ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब न्यायालय की कार्यवाही शुरू होने से पहले ही गवाह की पहचान सार्वजानिक रूप से प्रकट हो गयी जिससे उनके जीवन का संकट उत्पन्न हो गया। यह इस तथ्य से देखा जा सकता है कि विगत तीन वर्षों (2015-2017) में भारत में 15 से अधिक **व्हिसलब्लोवर** की हत्या कर दी गई है।
- **वित्तपोषण:** गवाह संरक्षण कार्यक्रम में अत्यधिक व्यय होने की संभावना है जिसका भुगतान राज्यों द्वारा किया जाएगा। वित्तीय अभाव गवाहों की संरक्षण में विलम्ब का कारण बन सकता है, विशेष रूप से उस समय जब CCTV एवं अन्य अवसंरचनाओं की स्थापना की आवश्यकता हो।

भारत में विभिन्न आयोगों के दृष्टिकोण

इस मुद्दे को विगत काल में विभिन्न समितियों और आयोगों द्वारा संबोधित किया गया है। उदाहरण के लिए-

- विधि आयोग ने अपनी विभिन्न रिपोर्टों में गवाहों के संरक्षण के लिए कई सिफारिशें की हैं, जैसे कि गवाहों की पहचान को सुरक्षित रखना बनाम अभियुक्त के अधिकार।
- **न्यायमूर्ति मलिमथ समिति** ने संयुक्त राज्य अमेरिका और अन्य देशों के कानूनों की तर्ज पर गवाह संरक्षण कानून बनाने की सिफारिश की है।
- सरकार द्वारा **गवाह संरक्षण विधेयक 2015** भी प्रस्तुत किया गया, हालांकि इसे अभी तक पारित नहीं किया जा सका है।

निष्कर्ष

गवाह संरक्षण कानून के विकास का प्रथम चरण यह होगा कि यह सुनिश्चित किया जाए कि गवाहों की सुरक्षा राज्य का कर्तव्य है। धमकी के कारण गवाहों के अपने बयानों से मुकरने की समस्या से निपटने के लिए भारत द्वारा निम्नलिखित कदम उठाए जाने की आवश्यकता है:

- **गवाहों को ट्रायल के पहले, उसके दौरान और उसके बाद** सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। देश भर में गवाहों के संरक्षण हेतु दिल्ली मॉडल के समान एक मॉडल विकसित किया जाना चाहिए।
- भारत को गवाहों के संरक्षण हेतु प्रभावी विधान बनाने की आवश्यकता है, जिसमें पुलिस, सरकार तथा न्यायपालिका को सम्मिलित किया जाना चाहिए। सरकार द्वारा आवश्यक अधिनियमों को लागू किया जाना चाहिए, कानूनी पहलुओं की पड़ताल न्यायपालिका द्वारा की जानी चाहिए और पुलिस द्वारा इसका क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।

8.4.2. कारागारों में क्षमता से अधिक कैदी

(Overcrowding of Prisons)

सुर्ख़ियों में क्यों?

उच्चतम न्यायालय ने राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण (NALSA) से कारागारों में कैदियों की अधिसंख्या के संबंध में विवरण और आंकड़े उपलब्ध कराने के लिए कहा है।

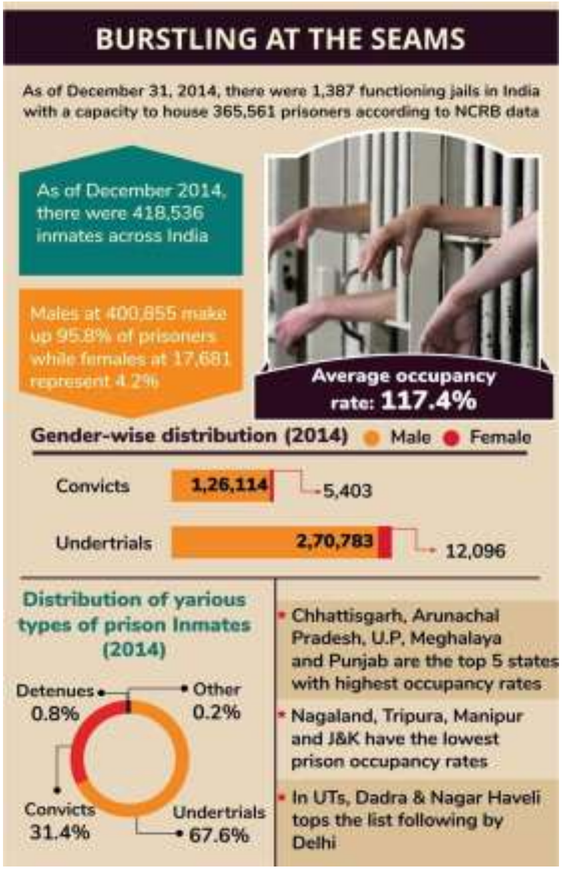

अन्य संबंधित तथ्य

- उच्चतम न्यायालय देशभर की जेलों में अमानवीय परिस्थितियों से संबंधित मामलों की सुनवाई कर रहा है।
- उच्चतम न्यायालय, विचाराधीन कैदियों की समीक्षा समितियों (UTRCs) के मानक परिचालन प्रक्रिया से संबंधित मुद्दों पर तथा खुली जेलों पर राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों से प्राप्त प्रतिक्रियाओं पर भी सुनवाई करने के लिए सहमत हुआ है।
- राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) की **प्रिज़न स्टेटिस्टिक्स इंडिया 2015** रिपोर्ट के अनुसार, भारत की जेलों में उनकी धारण क्षमता से 14% अधिक के धारण अनुपात के कारण अत्यधिक भीड़ विद्यमान है।
- जबकि सरकारी आंकड़ों के अनुसार, देश की 149 जेलों में उनकी क्षमता से 100 फीसदी से अधिक कैदी हैं और इनमें से आठ जेलों में उनकी क्षमता से 500 फीसदी से भी अधिक कैदी हैं।

अत्यधिक भीड़ के कारण

- **विचाराधीन कैदियों की संख्या** - भारत की जेलों में 67% कैदी विचाराधीन हैं जो अंतर्राष्ट्रीय मानकों, जैसे- UK में 11%, US में 20% और फ्रांस में 29% से बहुत अधिक हैं।

- कुल कैदियों में 95.8% (4,00,855) पुरुष और 4.2% (17,681) महिलाएँ हैं।
- **न्यायपालिका में लंबित मामले-** देश के विभिन्न न्यायालयों में 3.1 करोड़ मामले (2016) लंबित हैं, अतः किसी भी प्रभावी प्रणालीगत हस्तक्षेप की अनुपस्थिति में जेलों की अत्यधिक भीड़ यथावत बनी रहेगी।
- **जेलों की अपर्याप्त क्षमता-** अधिकांश भारतीय जेलें औपनिवेशिक काल की हैं। इन जेलों में निरंतर सुधार करने की आवश्यकता है और उनमें से कई जेलें दीर्घावधि के लिए आवास योग्य नहीं हैं।
- **कानूनी प्रतिनिधियों तक सीमित पहुँच-** जेलों में रहने वाले अधिकांश कैदी अपने अधिकारों से अनभिज्ञ हैं और वे क़ानूनी सहायता वहन नहीं कर सकते हैं। जेल परिसर में वकीलों से संवाद की सीमित पहुँच के कारण कैदियों की स्वयं को निर्दोष साबित करने की क्षमता में रूकावट आती है।
- **जमानत लेने में समस्याएं-** निर्धन और हाशिए पर स्थित लोगों के लिए जमानत पाना कठिन होता है जिससे उनके पास जेल में रहने और न्यायालय के अंतिम निर्णय की प्रतीक्षा करने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं रहता है।
- **अनावश्यक गिरफ्तारी-** 60 प्रतिशत से अधिक गिरफ्तारियाँ अनावश्यक थीं और इस प्रकार की गिरफ्तारियों का जेल खर्च में 42.3% का योगदान था।

कारागार से संबंधित अन्य मुद्दें

- स्वास्थ्य और स्वच्छता की उपेक्षा करना और अपर्याप्त भोजन एवं अपर्याप्त वस्त्र प्रदान करना
- निर्भया वृत्तचित्र (डॉक्यूमेंट्री) घटना के कारण नए नियमों के पश्चात् अनुसंधान की जटिल प्रक्रिया लागू की गई है।
- कैदियों की रिहाई के बाद उनकी निगरानी और रचनात्मक रूप से उन्हें संलग्न करने की कोई नीति विद्यमान नहीं है। यह समाज में उनके पुनर्समायोजन में बाधा उत्पन्न करती है।
- जेल प्रबंधन राज्य सूची का विषय है। अतः विभिन्न राज्यों के बीच जेल नियमावली में अत्यधिक भिन्नताएं हैं।

मुद्दे से संबंधित वर्तमान घटनाक्रम

- सर्वोच्च न्यायालय ने 2017 में स्वतः संज्ञान लेते हुए सभी उच्च न्यायालयों से उन कैदियों की पहचान करने के लिए याचिका दायर करने का निर्देश दिया, जिनकी मृत्यु 2012 के पश्चात् अप्राकृतिक रूप से हुई और साथ ही यह निर्देश दिया कि उन्हें उचित क्षतिपूर्ति प्रदान की जाए।
- सर्वोच्च न्यायालय ने सभी राज्य सरकारों को कैदियों के लिए (विशेष रूप से प्रथम बार अपराध करने वालों के लिए) परामर्शदाताओं और सहायकों की नियुक्ति करने हेतु निर्देश दिया है।
- इसने सभी राज्यों को कैदियों की चिकित्सा सहायता की उपलब्धता का अध्ययन करने और जहां भी आवश्यक हो वहां उपचारात्मक कदम उठाने का निर्देश दिया।
- इसने महिला एवं बाल विकास मंत्रालय को राज्य सरकारों के संबंधित अधिकारी के साथ चर्चा करने और चाइल्ड केयर संस्थानों में अप्राकृतिक रूप से मरने वाले बच्चों की संख्या (यदि कोई हो) को सूचीबद्ध करने हेतु प्रक्रिया निर्धारित करने के लिए निर्देश दिया है। इन चाइल्ड केयर संस्थानों में बच्चों को तब हिरासत में रखा जाता है जब वे कानूनी आधार पर किसी विवाद संलिप्त होते हैं अथवा उन्हें देखभाल और सुरक्षा की आवश्यकता होती है।

विचाराधीन कैदी समीक्षा समितियां (Under Trial Review Committees: UTRCs)

- इन समितियों में जिला न्यायाधीश, पुलिस अधीक्षक और जिलाधिकारी शामिल होते हैं।
- ये प्रत्येक जिले में स्थापित की गयी हैं। यह ऐसे विचाराधीन कैदियों और अपराधियों की रिहाई की विवेचना और अनुशंसा करती हैं जो अपनी सजा पूरी कर चुके हैं अथवा जमानत या क्षमा प्राप्ति के कारण रिहा होने के योग्य हैं।

जेलों में अत्यधिक भीड़ का प्रभाव

- **गरिमापूर्ण और बुनियादी जीवन निर्वाह स्थितियों का उल्लंघन** *UN स्टैण्डर्ड मिनिमम रूल्स फॉर द ट्रीटमेंट ऑफ़ प्रिज़नर्स* के विरुद्ध हैं, जो यह सुझाव देते हैं कि जेल आवास में "*मिनिमम फ्लोर स्पेस*', प्रकाश, ऊष्मा और वायु-संचार" का ध्यान रखना चाहिए।
- **लोगों के मूल अधिकारों और मानवाधिकारों का उल्लंघन-** यह उच्चतम न्यायालय की उस ऐतिहासिक व्यवस्था का उल्लंघन है जिसके तहत माना गया है कि संविधान के अनुच्छेद 21 में कैदियों के जीवन और स्वतंत्रता के उनके मूल अधिकार के भाग के रूप में निष्पक्ष और शीघ्र सुनवाई का अधिकार निहित है।
- **निगरानी में कठिनाई-** जेलों में 4,19,623 कैदियों की देखभाल करने के लिए 53,009 अधिकारी हैं। अर्थात् **आठ कैदियों पर एक अधिकारी** उपलब्ध है। इससे अप्रभावी निगरानी की समस्या उत्पन्न होती है।
- **कैदियों के बीच टकराव-** अत्यधिक भीड़ के परिणामस्वरूप जेलों के अन्दर अनियंत्रित हिंसा और अन्य आपराधिक गतिविधियां सामने आती हैं।
- **अपराधियों के सुधार पर सीमित ध्यान-** जेलों की कार्य प्रणाली भी व्यवस्था-उन्मुख हो जाती है। जिससे वहां सुधारात्मक सुविधाओं और सुधारों पर सीमित ध्यान दिया जाता है।

VISION IAS

- **सामाजिक कलंक-** कई कैदी अपना पारिवारिक परिवेश, सामुदायिक संबंध और आजीविका खो देते हैं। इसके अतिरिक्त, जेल की अवधि उन्हें व्यक्तिगत रूप से और समुदाय के सदस्य के तौर पर सामाजिक कलंक बना देती है।

जेल नियमावली (2016)

इसका उद्देश्य देश भर में जेलों के प्रशासन और कैदियों के प्रबंधन को प्रशासित करने वाले कानूनों, नियमों और विनियमों में आधारभूत एकरूपता लाना है। नियमावली के प्रमुख प्रावधानों में शामिल हैं-
- निःशुल्क विधिक सहायता तक पहुंच
- महिला कैदियों के लिए अतिरिक्त प्रावधान
- मृत्युदंड प्राप्त कैदियों के अधिकार
- जेलों का आधुनिकीकरण और कंप्यूटरीकरण
- रिहाई पश्चात् देखभाल सेवाओं पर फोकस
- महिला कैदियों के बच्चों के लिए प्रावधान
- संगठनात्मक एकरूपता और जेल के सुधारक कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि पर ध्यान केंद्रित करना
- जेलों का निरीक्षण आदि

सुधारात्मक उपाय
- **जेल नियमावली 2016** का अनुपालन करने की आवश्यकता है।
- उच्चतम न्यायालय के निर्देशानुसार सरकार द्वारा **खुली जेलों** का परीक्षण और क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।
- **प्रभावी निगरानी के लिए जेल निरीक्षकों** को नियमित रूप से जेलों का दौरा करना चाहिए, कैदियों की शिकायतों को सुनना, विद्यमान समस्याओं की पहचान और उनके समाधान हेतु उपाय प्रस्तुत करना चाहिए।
- UTR समितियों में जेल अधीक्षकों और सिविल सोसाइटी के सदस्यों को शामिल करके **UTRCs में सुधार** करना चाहिए। इसके साथ ही UTR समितियों की कार्यप्रणाली में अधिक पारदर्शिता लाने के लिए इसकी कार्य पद्धति हेतु एक मानक परिचालन प्रक्रिया (SOP) को भी तैयार किया जाना चाहिए।
- **एकरूपता:** गैर सरकारी संगठन (NGO) और जेल प्रशासन के साथ केंद्र सरकार को सम्पूर्ण देश में एक समान जेल नियमावली हेतु पर्याप्त कदम उठाने चाहिए।
- **विधि आयोग की निम्नलिखित अनुशंसाएं हैं। जैसे-**
    - विचाराधीन कैदी जो किए गए अपराध के लिए अधिकतम सात वर्ष तक की सजा का एक तिहाई भाग पूरा कर चुके हैं, उन्हें जमानत पर रिहा किया जाना चाहिए। सात वर्ष से अधिक की कैद वाले दंडनीय अपराधों के लिए मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहे कैदियों को जमानत दी जानी चाहिए यदि वे अपनी सजा का आधा भाग पूरा कर चुके हों।
    - विचारधीन कैदियों की जमानत पर शीघ्र रिहाई पर बल देने के साथ अपराध प्रक्रिया संहिता के जमानत प्रावधानों में संशोधन करना। (268वीं रिपोर्ट 2017)
    - यातना विरोधी कानून के मसौदे के आधार पर व्यापक यातना विरोधी कानून का निर्माण करना चाहिए (273वीं रिपोर्ट द्वारा सुझाव)।
- **कारागार सुधार एवं सुधारात्मक प्रशासन पर राष्ट्रीय नीति प्रारूप, 2007** की अनुशंसाएं-
    - रिहाई के पश्चात् देखभाल और पुनर्वास सेवाओं तथा कैदियों को विधिक सहायता प्रदान करने के लिए अधिकारी की नियुक्ति का प्रावधान करना चाहिए।
    - इसके अतिरिक्त इसमें एक अनुसंधान और विकास शाखा की स्थापना की तथा कैदियों के पुनर्वास के लिए कार्यरत गैर-सरकारी संगठनों को वित्तीय सहायता प्रदान करने की परिकल्पना की गई है।
    - अपेक्षाकृत छोटे अपराधों के दोषी अपराधियों के लिए कारावास हेतु समुदाय-आधारित विकल्प।
- **कारागार सुधारों पर अखिल भारतीय समिति** (न्यायमूर्ति मुल्ला समिति) ने भारत में जेलों के आधुनिकीकरण के लिए एक **राष्ट्रीय कारागार आयोग** की स्थापना करने का सुझाव दिया था। जेलों में विचारधीन कैदियों की संख्या को कम किया जाना चाहिए और उन्हें दोषी कैदियों से अलग रखा जाना चाहिए।

अन्य उपाय
- **सुधार पर ध्यान केंद्रित करना -** 'सुधार' रणनीति का मुख्य उद्देश्य अपराधियों के दृष्टिकोण में सकारात्मक परिवर्तन प्रेरित करना होना चाहिए। इस उद्देश्य से उन्हें व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने, जेल से मुक्ति के पश्चात् उन्हें अर्थपूर्ण ढंग से नियोजित करने, सामान्य अपराधियों के लिए खुली जेल प्रणाली आदि के प्रयास किये जाने चाहिए।
- **बेहतर निगरानी हेतु** जेल पर्यवेक्षक को नियमित रूप से जेलों का दौरा करना चाहिए तथा कैदियों की शिकायतों को सुनना, संबंधित मुद्दों की पहचान करना, और समाधान की तलाश करना चाहिए। निगरानी में सुधार के लिए 2015 में उच्चतम न्यायालय द्वारा देश के सभी जेलों में CCTV कैमरे लगाने का आदेश दिया गया।

VISION IAS

- **मनोवैज्ञानिक:** कैदियों द्वारा हिरासत के दौरान उनके द्वारा भोगे गए कटु अनुभवों से निपटने के लिए उन्हें परामर्श प्रदान करना महत्वपूर्ण है।
- **मामलों का पंजीकरण और रिपोर्टिंग:** प्राथमिकी दर्ज करना और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग (NHRC) को जेल के अंदर होने वाली मौतों के सभी मामलों के 24 घंटों के भीतर रिपोर्ट करना और दोषी जेल अधिकारियों को दंड देना।
- **स्वतंत्र जांच:** जेल के अंदर यातना के मामलों की समय पर और प्रभावी जांच एवं पीड़ितों के पुनर्वास तथा मुआवजे के लिए एक स्वतंत्र तंत्र स्थापित करना क्योंकि पुलिस द्वारा की जाने वाली जांच पक्षपातपूर्ण हो सकती है।
- **जमानत संबंधी कानूनों में सुधार करना:** जिससे जमानत केवल अमीर और समृद्ध लोगों को ही नहीं बल्कि सभी लोगों को मिल सके।
- **व्यापक यातना विरोधी कानून -** उच्चतम न्यायालय तक ने सरकार को एक व्यापक यातना विरोधी कानून पारित करने पर विचार करने के लिए कहा है

8.4.3. खुली जेल

(Open Prisons)

सुर्ख़ियों में क्यों?

सर्वोच्च न्यायालय ने केंद्र को खुली जेलों की स्थापना के संबंध में विचार करने हेतु राज्यों और संघ शासित प्रदेशों के जेल अधिकारियों की एक बैठक आयोजित करने का निर्देश दिया है।

खुली जेल का अर्थ

खुली जेल को न्यूनतम-सुरक्षायुक्त जेल, ओपन कैंप तथा बिना सलाखों वाली जेल के रूप में भी जाना जाता है। इसमें चार प्रकार से खुलापन होता है:

- **कैदियों के लिए खुलापन,** अर्थात कैदी दिन के समय बाहर जा सकते हैं, किन्तु शाम को निर्धारित समय से पूर्व वापस आना अनिवार्य है।
- **सुरक्षा में खुलापन,** अर्थात यहाँ भागने से रोकने हेतु प्रयुक्त सावधानियों, जैसे दीवारें, सलाखें, ताले और सशस्त्र सुरक्षाकर्मी आदि का अभाव रहता है।
- **संगठन में खुलापन** अर्थात इसकी कार्यप्रणाली कैदी के आत्म-उत्तरदायित्व, आत्म-अनुशासन और आत्मविश्वास की भावना पर आधारित है।
- **जनता के लिए खुलापन**, अर्थात लोग जेल में जा सकते हैं और कैदियों से मिल सकते हैं।

भारत में खुली जेलों की स्थिति

- भारत में, पहली खुली जेल 1905 में बंबई प्रेसीडेंसी में तथा स्वतंत्रता के बाद उत्तर प्रदेश में स्थापित की गई थी।
- भारत में जेलें, जेल अधिनियम, 1900 द्वारा प्रशासित होती हैं। 'जेल' राज्य सूची का विषय होने के कारण विभिन्न राज्यों द्वारा स्वयं के लिए जेल नियमों को भी अधिनियमित किया गया है।
- वर्तमान में 17 राज्यों में लगभग 69 खुली जेलें क्रियाशील हैं जहाँ 6000 कैदियों को रखा जा सकता है। इनमें राजस्थान में 29 ऐसे जेल हैं जो किसी भी अन्य राज्य की तुलना में सर्वाधिक हैं। हाल ही में सिर्फ **महिलाओं के लिए प्रथम खुली जेल पुणे, महाराष्ट्र** में स्थापित की गयी।

खुली जेलों से संबंधित सिफारिशें

- **अखिल भारतीय जेल सुधार समिति, 1980** ने सरकार से राजस्थान के सांगानेर ओपन कैंप की तर्ज पर प्रत्येक राज्य और UT में खुली जेलों को स्थापित तथा विकसित करने की सिफारिश की थी।
- **यूनाइटेड नेशन्स स्टैण्डर्ड मिनिमम रूल्स फॉर द ट्रीटमेंट ऑफ़ प्रिजनर्स (नेल्सन मंडेला नियम)** द्वारा रेखांकित किया गया है कि खुली जेलों में सावधानीपूर्वक चयनित कैदियों के पुनर्वास के लिए अनुकूल परिस्थितियां उपलब्ध कराई जाएँ।

खुली जेलों के लिए पात्र कौन हैं?

- प्रत्येक राज्य का कानून कैदियों को खुली जेल में रखने के संदर्भ में आवश्यक पात्रता मानदंड को परिभाषित करता है, किन्तु इस सन्दर्भ में कैदी को एक अपराधी होना चाहिए न कि विचाराधीन (under trial)।
- जिन अपराधियों द्वारा अपनी सजा की अवधि के दौरान अच्छे आचरण का प्रदर्शन किया गया है और वे शारीरिक एवं मानसिक रूप से कार्य करने में सक्षम हैं, उन्हें शेष अवधि के लिए खुली जेल में भेजा जा सकता है। हालांकि बलात्कारी, आतंकवादियों और दोबारा अपराध करने वाले अपराधियों को यह व्यवस्था उपलब्ध नहीं हो सकती।

VISION IAS

खुली जेलों का प्रभाव

- **अत्यधिक भीड़ को कम करना:** दिसंबर 2014 तक जेलों में *ऑक्यूपेंसी रेट (*अधिभोग दर) लगभग 117.4% रही। अतः खुली जेल इस समस्या के निराकरण में सहायक होगी।
- **पुनर्वास संबंधी दृष्टिकोण:** खुली जेल कैदियों के लिए उनके अच्छे आचरण का पुरस्कार होता है और यह उन्हें आत्मनिर्भरता का प्रशिक्षण देता है। इससे दंडात्मकता से पुनर्वास की ओर बढ़ने में सहायता प्राप्त होगी।
- **आर्थिक लाभ:** ये बांध, सड़क निर्माण आदि जैसे सार्वजनिक कार्यों के लिए विश्वसनीय स्थायी श्रम प्रदान कर सकते हैं। साथ ही साथ इससे कैदियों को आय की भी प्राप्ति होती है।
- **मनोवैज्ञानिक लाभ:** इन जेलों में प्रदत्त स्वतंत्रता और खुलापन, दीर्घकालिक कैदियों में कुंठा या निराशा को रोकने और आशा का संचार करने में सहायक होगा। इसके अतिरिक्त यह कैदियों में सकारात्मक आत्मसम्मान की भावना को बढ़ाकर, असुरक्षा की भावना और अपराध बोध को कम करता है। इस प्रकार इससे व्यक्तिगत समस्याओं का बेहतर समायोजन संभव होगा और इसके अन्य कैदियों एवं अधिकारियों के प्रति अधिक सहयोगी रवैया अपनाने की प्रवृति विकसित होगी।
- **कौशल प्रशिक्षण:** यहाँ कैदियों को कृषि, उद्योग या किसी अन्य व्यावसायिक क्षेत्र में प्रशिक्षण प्रदान किया जा सकता है ताकि वे जेल से स्वतंत्र होने पर उपयुक्त रोजगार प्राप्त कर सकें।
- **जेल से स्वतंत्र होने के लिए उपयुक्तता:** खुली ज़ेल, अपनी सजा की अवधि समाप्त होने से पूर्व अपराधियों को स्वतंत्र करने की उपयुक्तता की जाँच करने में सहायक होंगी।
- पारंपरिक जेल प्रणाली की तुलना में इसकी निर्माण और परिचालन लागत कम होती है, क्योंकि इनका निर्माण और रख-रखाव करना अपेक्षाकृत सरल होता है।

सुझाव

सभी राज्यों में खुली जेलों में अपराधियों के लिए प्रवेश, रियायत और सुविधाएं प्रदान करने के लिए सामान्य नियम तैयार किए जाने चाहिए।

- अधीक्षक द्वारा खुली जेलों में भेजे जाने वाले कैदियों की सूची तैयार करने में पक्षपात, दबाव और भ्रष्टाचार से संबंधित गतिविधियों पर नियंत्रण रखा जाना चाहिए।
- कुछ प्रकार के अपराधियों को सीधे खुली जेलों में भेजने के लिए अदालतों को अधिकार प्रदान करना।

8.4.4. यातना निरोधक कानून का प्रस्ताव

(Anti Torture Legislation)

पृष्ठभूमि

- यद्यपि भारत द्वारा यूनाइटेड नेशन कन्वेंशन अगेंस्ट टॉर्चर पर 1997 में ही हस्ताक्षर कर दिए गये थे, लेकिन अभी तक इसकी पुष्टि नहीं की गयी है। भारत विश्व के उन नौ देशों में शामिल है, जिनके द्वारा अभी तक इसकी पुष्टि नहीं की गयी है।
- यातना विरोधी कानून को अपनाने के लिए **राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग** के प्रबल समर्थन के बावजूद, **यातना निरोधक विधेयक 2010 के समाप्त** हो जाने बाद से सरकार द्वारा इस प्रकार के कानून की उपेक्षा की गयी है।
- इसके प्रमुख कारण हैं- ऐसे कानूनों के लिए राज्यों के बीच सहमति का अभाव है (क्योंकि पुलिस एवं लोक व्यवस्था राज्य के विषय हैं)। दूसरा प्रमुख कारण यह है कि, हिरासत में यातनाओं के मामलों से निपटने के लिए **IPC और CrPC** में पर्याप्त प्रावधान हैं।
- हाल ही में, उच्चतम न्यायालय ने एक जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए कहा था कि, 'हिरासत के दौरान दी जाने वाली यातना, राज्य द्वारा प्रयुक्त "मानवीय गरिमा को अपमानित" करने वाला एक उपकरण है।'
- इसके बाद इस मुद्दे को विधि आयोग को भेजा गया। विधि आयोग ने अपनी 273वीं रिपोर्ट में, **यातना निरोधक विधेयक, 2017** की सिफारिश की है।

यूनाइटेड नेशन कन्वेंशन अगेंस्ट टॉर्चर (UNCAT)

यह एक अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार पहल है। इसका उद्देश्य विश्व भर में यातना और क्रूर, अमानवीय, अपमानजनक व्यवहार या सजा को समाप्त करना है। यह कन्वेंशन 1987 से लागू है।

मुख्य प्रावधान:

- किसी ऐसे राज्य में **व्यक्ति के निर्वासन/प्रत्यर्पण** का निषेध करना, जहाँ उन्हें यातना का सामना करना पड़ सकता है।
- जिन मामलों में कथित उत्पीड़क को प्रत्यर्पित नहीं किया जा सकता, उन मामलों की सुनवाई के लिए **सार्वभौम न्यायाधिकार (Universal Jurisdiction)** की स्थापना की जानी चाहिए।

VISION IAS

- **यातना के लिए आपराधिक दायित्व:** सभी देशों को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि सभी प्रकार की यातनाएं उनके आपराधिक कानून के अंतर्गत अपराध की श्रेणी में सूचीबद्ध हों।
- विधि प्रवर्तन, नागरिक व सैन्य तथा सार्वजनिक पदाधिकारियों आदि को यातना की रोकथाम के सम्बन्ध में **शिक्षा और सूचनाएं** प्रदान करना।
- यातना से पीड़ितों या आरोपों की त्वरित जांच के लिए **प्रक्रियाएं** होनी चाहिए। न्यायालयों को उन साक्ष्यों के उपयोग को प्रतिबंधित करना चाहिए जिनको यातना के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है।
- पीड़ितों और गवाहों के लिए **संरक्षण, मुआवजा और पुनर्वास** तथा प्रभावी उपचार प्रणाली प्रदान करना।

यातना निरोधक कानून की आवश्यकता

- मानवाधिकारों के उल्लंघन, अल्पसंख्यक अधिकारों, जम्मू-कश्मीर और पूर्वोत्तर में AFSPA के उपयोग, निर्दोषों को यातना देने के लिए पुलिस द्वारा आतंक-रोधी कानूनों के दुरुपयोग तथा व्यवसाय से संबंधी मानवाधिकारों के संदर्भ में, इस प्रकार का कानून महत्वपूर्ण है।
- इसके अतिरिक्त, IPC हिरासत के दौरान दी जाने वाली यातनाओं के विभिन्न पहलुओं को विशेष और व्यापक रूप से संबोधित नहीं करता है। साथ ही IPC हिरासत के दौरान हुई हिंसा की बढ़ती घटनाओं से निपटने के लिए अपर्याप्त है।
- NHRC ने स्पष्ट किया है कि, हालांकि पुलिस को हिरासत के दौरान हुई मौत की रिपोर्ट करना अनिवार्य है लेकिन मौजूदा प्रावधानों के तहत हिरासत के दौरान हुई हिंसा की रिपोर्ट करना आवश्यक नहीं होता है।
- यातना निरोधक कानून के अभाव में प्रत्यर्पण सुनिश्चित करने में कठिनाई होती है, क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय में भय है कि आरोपी व्यक्तियों को भारत में यातना का सामना करना पड़ सकता है। उदाहरण के लिए डेनमार्क ने भारत में "यातना या अन्य अमानवीय व्यवहार" के जोखिम के कारण पुरुलिया शस्त्र मामले में किम डेवी के प्रत्यर्पण से मना कर दिया था।
- यह कानून भारत की **जीवंत लोकतांत्रिक परंपरा** तथा **अनुच्छेद 21** (जीवन और गरिमा के मौलिक अधिकार) को मजबूत करने में सहायता प्रदान करेगा।

यातना निरोधक विधेयक, 2017

- यातना की विस्तृत परिभाषा शारीरिक चोट तक ही सीमित नहीं है अपितु इसके अंतर्गत जानबूझकर या अनजाने में किसी भी शारीरिक, मानसिक या मनोवैज्ञानिक चोट पहुँचाने का प्रयास करना भी सम्मिलित है।
- **राज्य के एजेंट के लिए संप्रभु प्रतिरक्षण नहीं-** राज्य को अपने एजेंटों के द्वारा लोगों को चोट पहुँचाए जाने की ज़िम्मेदारी लेनी होगी क्योंकि संप्रभु प्रतिरक्षण का सिद्धांत (principle of sovereign immunity) संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों को प्रत्यादिष्ट (override) नहीं कर सकता।
- यातना देने वाले सरकारी अधिकारियों के लिए यातना हेतु सजा का प्रावधान।

विधि आयोग की अन्य महत्वपूर्ण अनुशंसाएँ

- **अपराध का अनुमान:** IPC में एक नई **धारा 114B** को शामिल किया जाना चाहिए, जिसके तहत यदि कोई व्यक्ति पुलिस हिरासत में घायल अवस्था में पाया जाता है, तो यह माना जाएगा कि उसे पुलिस द्वारा चोट पहुंचाई गयी है। किसी मुकदमे में विचाराधीन कैदी को लगी चोटों के संबंध में स्पष्टीकरण का दायित्व पुलिस पर होना चाहिए।
- **मुआवजा और पुनर्वास:** IPC की धारा 357B में संशोधन करके, पीड़ितों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि, चिकित्सीय उपचार और पुनर्वास व्यय को ध्यान में रखते हुए "न्यायसंगत मुआवजा" प्रदान किया जाना चाहिए। मुआवजे और साक्ष्यों के दायित्व सम्बन्धी प्रावधानों को समायोजित करने के लिए CrPC और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 का भी संशोधन किया जाना चाहिए।
- **पीड़ितों, शिकायतकर्ताओं और गवाहों को संरक्षण:** यातना के पीड़ितों, शिकायतकर्ताओं और गवाहों को संभावित खतरों, हिंसा या अमानवीय व्यवहार के विरुद्ध संरक्षण प्रदान करने के लिए प्रभावी तंत्र को लागू किया जाना चाहिए।

भारतीय दंड संहिता की धारा 357- यदि कोई व्यक्ति, किसी अन्य व्यक्ति को अनधिकृत रूप से बंधक बनाने के प्रयत्न में उस पर हमला या आपराधिक बल का प्रयोग करता है, तो उसे एक वर्ष की अवधि तक के कारावास, अथवा एक हजार रुपए तक के जुर्माने, अथवा दोनों से दण्डित किया जाएगा।

8.5. लेटरल एंट्री

(Lateral Entry)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में केंद्र सरकार ने लैटरल एंट्री के माध्यम से वरिष्ठ स्तरीय पदों हेतु आवेदन आमंत्रित किए हैं।

VISION IAS

अन्य महत्वपूर्ण तथ्य

- कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग ने आर्थिक कार्य, राजस्व, वाणिज्य और राजमार्ग तथा अन्य विभागों में 10 **संयुक्त सचिव स्तरीय पदों** हेतु आवेदन आमंत्रित किए हैं।
- **चयन हेतु मानदंड-** स्नातक डिग्री, न्यूनतम 40 वर्ष आयु तथा राजस्व, वित्त, परिवहन, नागरिक विमानन और वाणिज्य जैसे क्षेत्रों में 15 वर्ष का अनुभव।
- यह भर्ती कार्य-निष्पादन के आधार पर **तीन से पांच** वर्ष हेतु **अनुबंध आधार** पर की जाएगी।

लैटरल एंट्री के पक्ष में तर्क

- **नीति निर्माण में सहायक-** महत्वपूर्ण पदों पर **विशिष्ट कौशलों** तथा प्रमुख विशेषज्ञता प्राप्त **व्यक्तियों** का नियुक्त किया जाना आवश्यक है, क्योंकि नीति निर्माण प्रकृति में जटिल हो रहा है।
    - IAS अधिकारी केवल व्यवस्था के भीतर से सरकार को देखते हैं जबकि लैटरल एंट्री सरकार को हितधारकों (निजी क्षेत्र, गैर-सरकारी क्षेत्र तथा समग्र जनता) पर अपनी नीतियों के प्रभाव को समझने में समर्थ बनाएगा।
    - **प्रथम प्रशासनिक सुधार आयोग (ARC)** ने **1965 में विशेषज्ञता की आवश्यकता** को रेखांकित किया था। सुरिंदर नाथ समिति तथा होता समिति ने क्रमशः 2003 और 2004 में इस अनुशंसा को पुनः दोहराया तथा द्वितीय प्रशासनिक आयोग ने भी ऐसी ही आवश्यकता का उल्लेख किया है।
- **शासन और क्षमता में वृद्धि-** पॉलिटिकल एंड इकोनॉमिक रिस्क कंसल्टेंसी लिमिटेड ने अपनी 2012 की रिपोर्ट में भ्रष्टाचार और अक्षमता के कारण भारतीय नौकरशाही को एशिया की निकृष्टतम नौकरशाही के रूप में रैंकिंग प्रदान की थी।
    - IAS में करियर प्रगति लगभग स्वचालित है जो अधिकारियों को आरामदायक स्थिति (कम्फर्ट ज़ोन) में बनाए रखती है। इस प्रकार लैटरल एंट्री से व्यवस्था के अंदर **प्रतिस्पर्धा को प्रेरणा** मिल सकती है।
    - वाई.के.अलघ की अध्यक्षता में सिविल सेवा परीक्षा समीक्षा समिति की एक संघ लोक सेवा आयोग-अधिकृत रिपोर्ट में भी सरकार के मध्य एवं उच्च स्तरों में लैटरल एंट्री की अनुशंसा की गयी थी।
    - नीति आयोग ने 2017-2020 हेतु अपने तीन वर्षीय एजेंडा में कहा था कि क्षेत्रक विशेषज्ञों को लैटरल एंट्री के माध्यम से व्यवस्था में शामिल किया जाना चाहिए, क्योंकि वे "स्थापित करियर वाली नौकरशाही में प्रतिस्पर्धा लाएंगे।"
- **सरकार में प्रतिभा का प्रवेश और प्रतिधारण-** न्यायमूर्ति **बी.एन.श्रीकृष्णा की अध्यक्षता वाले केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट (2006)** में कहा गया था कि लैटरल एंट्री "सरकार में प्रतिभा के प्रवेश और उसके प्रतिधारण को सुनिश्चित" कर सकती है। लेटरल एंट्री वैसी नौकरियों से भी संबंधित हो सकती है जिनकी अत्यधिक मांग है या जो खुले बाजार में अत्यधिक मूल्यवान मानी जाती हैं।
- **अधिकारियों की कमी-** कार्मिक, लोक शिकायत और पेंशन मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार देश में लगभग 1,500 IAS अधिकारियों की कमी है।
    - **बासवान समिति (2016)** ने अधिकारियों की कमी पर विचार करते हुए लैटरल एंट्री का समर्थन किया था।
- **IAS अधिकारियों की कम आयु में भर्ती-** यह उनकी प्रशासनिक एवं न्यायिक क्षमताओं की जांच को कठिन बना देती है। कुछ जो संभावित रूप से बेहतर प्रशासक हैं, वे असफल हो जाते हैं तथा कुछ जो सफल हो जाते हैं उनमें आवश्यक योग्यता की कमी होती है। ऐसे में सिद्ध क्षमताओं से युक्त मिड-करियर लैटरल एंट्री इस कमी को पूरा करने में सहायता करेगी।
- **कोई नई परिघटना नहीं है:** यह **भारतीय रिज़र्व बैंक** तथा पूर्ववर्ती योजना आयोग और साथ ही साथ नीति आयोग में भी **सफल** रही है।
    - **वित्त मंत्रालय** ने शैक्षणिक समुदाय और निजी क्षेत्र से सरकार के लिए **सलाहकारों की नियुक्ति** की प्रथा का संस्थाकरण कर दिया है।
    - इस अवधारणा का पहले से ही यूनाइटेड किंगडम, संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, बेल्जियम, न्यूज़ीलैण्ड इत्यादि देशों द्वारा अनुकरण किया जा रहा है।

लैटरल एंट्री के विपक्ष में तर्क

- निजी क्षेत्र के विशेषज्ञों द्वारा उनकी अल्प सेवा अवधि (विशेषतया 3-5 वर्ष के दिए गए लघु कार्यकाल) में लिए गए निर्णय हेतु **उत्तरदायित्व तथा जवाबदेहिता सुनिश्चित करना कठिन है।**
- **दीर्घकालिक हित नहीं-** वर्तमान सिविल सेवा से लाभ यह है कि नीति-निर्माता सरकार में दीर्घकालिक हित रखते हैं।
- **संवैधानिक प्रणाली की उपेक्षा-** सरकार की हालिया व्यवस्था मंत्रिमंडल सचिव की अध्यक्षता वाली समितियों को पेशेवरों की भर्ती हेतु निर्देश देती है। यह व्यवस्था संघ लोक सेवा आयोग जैसी स्वतंत्र संस्था की उपेक्षा करती है।
- **भर्ती में पारदर्शिता-** चयन प्रक्रिया में राजनीतिक हस्तक्षेप की सम्भावना है तथा यह भाई-भतीजावाद (नेपोटिज्म) को बढ़ावा दे सकती है और तंत्र को हानि पहुंचाती है चूंकि एक विजयी राजनैतिक दल द्वारा कार्यकर्ताओं और समर्थकों को सरकारी पद पर नियुक्त करके या अन्य तरह से पक्ष लेकर प्रतिफल प्रदान किया जा सकता है।

VISION IAS

- **कार्य-क्षेत्र अनुभव का अभाव-** जो अधिकारी नियुक्त होंगे वे ज्ञान के प्रभुत्व पर अंक प्राप्त कर सकते हैं, परन्तु वे "कार्य क्षेत्र (फील्ड)" में अनुभव की दृष्टि से असफल सिद्ध हो सकते हैं।
- **विद्यमान प्रतिभा को प्रतिबंधित करना-** लैटरल एंट्री यह दर्शाती है कि निजी पेशेवरों की तुलना में अनुभवी लोक सेवक कम सक्षम हैं तथा उनकी विशेषज्ञता में कमी है। यह आवश्यक रूप से सत्य नहीं है।
    - सर्वोत्तम प्रतिभा को केवल तभी आकर्षित किया जा सकता है जब उच्चतम प्रबंधकीय पदों तक पहुंचने का यथोचित आश्वासन प्राप्त हो।
    - संयुक्त सचिव तथा उससे उच्च पदों हेतु एक अनुबंध आधारित व्यवस्था के सुझाव द्वारा यह संकेत जा सकता है कि सेवा के 15-18 वर्षों में केवल मिड-करियर प्रस्थिति तक ही पहुंचा जाएगा एवं तत्पश्चात पदोन्नति के संबंध में बड़ी अनिश्चितता बनी रहेगी।
- **पूर्व के अनुभव-** सार्वजनिक उपक्रमों के संचालन हेतु निजी क्षेत्र के प्रबंधकों को शामिल करने के पूर्व अनुभव विशेष रूप से संतोषजनक नहीं रहे थे। उदाहरणार्थ एयर इंडिया, इंडियन एयरलाइन्स इत्यादि।
- **आरक्षण का मुद्दा-** यह अस्पष्ट है कि क्या लैटरल एंट्री के माध्यम से भर्ती हेतु आरक्षण का प्रावधान होगा या नहीं।

आगे की राह

भारतीय सिविल सेवा वेबर की आदर्श नौकरशाही की सभी विशेषताओं को चित्रित करती है जैसे कि **पदसोपान, शक्ति का विभाजन** आदि। संस्थागत लैटरल एंट्री के अतिरिक्त विभिन्न सुधार तत्कालीन समय की आवश्यकता है; जैसे कि:

- **आकांक्षी तथा सेवारत लोक सेवकों हेतु लोक प्रशासन विश्वविद्यालयों की स्थापना:** यह देश की राजनीतिक अर्थव्यवस्था, कार्यक्षेत्र विशेषज्ञता में वृद्धि और बेहतर प्रबंधकीय कौशल का गहन ज्ञान प्राप्त करने हेतु महत्वाकांक्षी सिविल सेवकों के एक वृहद् समूह का सृजन कर सकता है तथा सेवारत नौकरशाहों को सक्षम बना सकता है।
- **निजी क्षेत्र में प्रतिनियुक्ति:** एक संसदीय पैनल ने कार्यक्षेत्र में विशेषज्ञता तथा प्रतिस्पर्धा लाने हेतु निजी क्षेत्र में IAS और IPS की प्रतिनियुक्ति की अनुशंसा की है।
- द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग द्वारा अनुशंसित **केन्द्रीय सिविल सेवा प्राधिकरण** को लैटरल एंट्री हेतु विज्ञापित पदों पर तथा सरकार द्वारा इसे हस्तांतरित अन्य विषयों पर निर्णय लेना चाहिए।
- **मूल्यांकन प्रणाली:** यथा वरिष्ठ नौकरशाहों हेतु सरकार की नवीन "360 डिग्री" निष्पादन मूल्यांकन प्रणाली जिसके अंतर्गत अधिकारियों को उनके वरिष्ठों, कनिष्ठों तथा बाह्य हितधारकों के फीडबैक के आधार पर श्रेणीबद्ध किया जाता है।
    - नौकरशाहों के जिले के वार्षिक विकास संकेतकों से संलग्न प्रोत्साहनों की व्यवस्था भी की जा सकती है।
- **नौकरशाही संबंधी निर्णय-निर्माण को कम केंद्रीकृत तथा अधिक पारदर्शी बनाना:** औपनिवेशिक भारतीय सिविल सेवा को कानून एवं व्यवस्था बनाए रखने तथा राज्य नेतृत्व विकास का अनुकरण करने के एक प्राथमिक उद्देश्य के साथ निर्मित किया गया था। साथ ही इसे जनसामान्य की आवश्यकताओं से पृथक रखा गया था। भारत को इस **टॉप-डाउन अप्रोच** को अवश्य समाप्त करना होगा।
- **प्रत्येक विभाग हेतु लक्ष्य निर्धारण और निगरानी को संस्थागत बनाना:** प्रत्येक मंत्रालय और सरकारी एजेंसी को एक स्पष्ट समय-सीमा के साथ परिणाम आधारित लक्ष्यों का निर्धारण करना चाहिए।
- **सरकारी कर्मचारियों हेतु एक मानव संसाधन प्रणाली लागू करना:** मानव संसाधन प्रबंधन को सरकार में रणनीतिक कार्य करने की आवश्यकता है। इसे एक एकीकृत ऑनलाइन मंच के माध्यम से कार्यान्वित करना चाहिए जो कर्मचारियों के नियुक्ति से सेवा-मुक्ति तक के समय को शामिल करता है।
- **केंद्र और राज्य स्तर पर मंत्रालयों के लिए ई-गवर्नेंस और पेपरलेस गवर्नेंस रैंकिंग:** प्रत्येक सरकारी विभाग और एजेंसी को इलेक्ट्रॉनिक साधनों के माध्यम से ई-ऑफिस सिस्टम को अपनाने, कागज उपयोग को कम करने तथा नागरिक भागीदारी के आधार पर रैंक प्रदान की जानी चाहिए। यह वर्धित क्षमता, फाइलों पर प्रगति की बेहतर निगरानी तथा नागरिकों के साथ बेहतर सम्पर्क प्रदान करेगा।
- **यथासंभव बाह्य स्रोतों से सेवाओं की आपूर्ति:** जहाँ तक संभव हो सरकारी प्रशासनिक प्रणाली पर निर्भरता को कम किया जाना चाहिए। निजी क्षेत्र को सेवाओं को उपलब्ध करवाने हेतु अनुमति प्रदान करने के लिए आधार आधारित पहचान सत्यापन प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है।
- **सचिवों का दीर्घ कार्यकाल:** वर्तमान में जब तक एक अधिकारी की अतिरिक्त सचिव से सचिव पद तक पदोन्नति होती है, तब तक उसके सेवानिवृत होने में केवल दो वर्ष या उससे भी कम समय शेष रह जाता है। यह अवस्था दो महत्वपूर्ण अक्षमताओं का सृजन करती है। प्रथम, दो वर्ष से भी कम समयावधि के कार्यकाल के दौरान एक अधिकारी प्रमुख पहलों को प्रारम्भ करने में सशंकित होता है। द्वितीय, तथा अत्यंत महत्वपूर्ण है कि अधिकारी द्वारा उठाया गया कोई भी गलत कदम सेवानिवृति के पश्चात् पक्षपात या भ्रष्टाचार के आरोप का कारण बन सकता है। इसलिए अधिकारी किसी प्रमुख परियोजना पर निर्णय लेने हेतु दुविधाग्रस्त रहता है।

VISION IAS

8.6. मीडिया का विनियमन (Regulating Media)

- वर्तमान युग में जहां छिपाने के लिए कुछ नहीं है और स्थिति में सुधार की अत्यधिक संभावना उपस्थित है, स्वतंत्र मीडिया का स्वागत एक प्रकाश स्तम्भ के रूप में किया जाना चाहिए। वास्तव में, यह **मीडिया की कार्य पद्धति और सुशासन के मध्य ठोस कड़ी** है - मीडिया लोगों को सरकार के कार्यों की जांच और मूल्यांकन की अनुमति प्रदान करती है और सार्वजनिक मुद्दों और विचारों की स्वतंत्र रूप से चर्चा करने हेतु एक मंच प्रदान करती है।
- यदि मीडिया लोक हित में कार्य करती है, तो सरकारों द्वारा मीडिया की स्वतंत्र कार्य पद्धति की सुरक्षा की जानी चाहिए, ताकि समाज में विभिन्न दृष्टिकोणों का विकास हो सके।

लोकतंत्र में मीडिया की भूमिका

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने मीडिया को **'हमारे लोकतंत्र का रक्षक'** कहा। यह नागरिकों और राज्य के मध्य सम्पर्क का एक प्रमुख माध्यम है।

- **लोकतंत्र को समृद्धशाली बनाना:** एक लोकतांत्रिक समाज तक सूचनाओं की पहुंच आवश्यक है क्योंकि यह सुनिश्चित करती है कि नागरिक, अज्ञानता या गलत सूचना के आधार पर कार्य करने के स्थान पर उत्तरदायी, सूचित निर्णय लें। इसके साथ ही सूचना, कार्य की जांच हेतु भी सहयोग करती है।
- **उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना:** यह विचार-विमर्श, चर्चाओं और सर्वेक्षण इत्यादि के द्वारा अपने मंच के माध्यम से राजनीतिक और स्थायी कार्यपालिका को लोगों के प्रति उत्तरदायी बनाती है।
- ज्ञान के माध्यम से लोगों को सशक्त बनाकर नागरिकों की सोच को विस्तारित करने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारत जैसे देश में जहां निरक्षरता की दर अधिक है, ज्ञान प्रदान करना और लोगों के विचारों को विस्तृत करने का दायित्व मीडिया पर है।
- न्याय की भावना या लोकतंत्र के सार के विरुद्ध किसी भी कार्रवाई की निष्पक्ष आलोचना करना।
- गलत प्रथाओं को इंगित करना और किसी भी असामाजिक गतिविधियों में संलग्न लोगों के विरुद्ध उचित कार्रवाई शुरू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाना, भले ही उनका राजनीतिक संबंध कुछ भी हो।
- यह लोगों के मध्य एकता और भाईचारे की भावना को बढ़ावा देने तथा लोकतंत्र और न्याय में विश्वास स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

वर्तमान समय में मीडिया से संलग्न मुद्दे: इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के आगमन के साथ, मीडिया घरानों के मध्य प्रतिस्पर्धा में तीव्र वृद्धि हुई है जिसके परिणामस्वरूप पत्रकारिता के मानकों में गिरावट आई है। अन्य मुद्दे निम्नलिखित हैं:

- **त्रुटियों का उच्च स्तर:** "फेक न्यूज" जैसी घटनाओं में वृद्धि, रिपोर्टिंग में उच्च स्तर की त्रुटियों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले दोषों में से एक है।
- **सनसनीखेज बनाना**: मीडिया द्वारा महत्वपूर्ण सार्वजनिक मुद्दों को नज़रअंदाज करते हुए सामान्यतः सनसनीखेज खबरों को उजागर करने की कोशिश की जाती है।
- **महत्वपूर्ण मुद्दों के कवरेज में कमी:** TRP और लोकप्रियता प्राप्त करने की अंधी दौड़ में मीडिया द्वारा वही दिखाया जाता है जो लोग देखना चाहते हैं। ऐसे कुछ महत्वपूर्ण समाचार जो वास्तव में सार्वजनिक महत्व के हैं, उन पर ध्यान नहीं दिया जाता है।
- **मीडिया द्वारा महत्वपूर्ण मुद्दों का फॉलो-अप न करना**: यह केवल किसी विशेष घटना के घटित होने के समय ही खबर देती है, किन्तु शायद ही कभी उन खबरों का अनुसरण किया जाता है। जबकि यह अत्यावश्यक है।
- मौद्रिक या अन्य लाभों के बदले किसी विशेष उम्मीदवार के पक्ष में **पेड न्यूज चलाना**।
- फेक न्यूज भी एक बड़ा खतरा बन गया है जो लोकतंत्र को क्षति पहुंचाता है (खंड में आगे चर्चा की गयी है)।
- **मीडिया द्वारा ट्रायल:** मीडिया द्वारा सामान्यतः आपराधिक मामलों में ट्रायल किया जाता है। इसके अंतर्गत मीडिया प्रायः न्यायालयों द्वारा निर्णय दिए जाने से पूर्व या कभी-कभी सुनवाई किए जाने से पूर्व ही अपराध के संबंध में जन-मानस में अभियुक्त के अपराधी या निर्दोषी होने की धारणा का निर्माण करती है। इसके कारण अभियुक्त के निष्पक्ष सुनवाई के अधिकार का अतिक्रमण होता है।

मीडिया को विनियमित करने के लिए न्यूज़ ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (NBA) के दिशानिर्देश:

- **रिपोर्टिंग में निष्पक्षता और वस्तुनिष्ठता:** सत्यता और संतुलन बनाए रखना टीवी समाचार चैनलों का उत्तरदायित्व है।
- **तटस्थता सुनिश्चित करना:** टीवी समाचार चैनलों को किसी भी विवाद या संघर्ष में सभी प्रभावित पक्षों, हितधारकों और अभिकर्ताओं से समानता का व्यवहार कर तटस्थ रहना चाहिए ताकि वे अपना विचार प्रस्तुत कर सकें।
- अपराध और सुरक्षा उपायों पर रिपोर्टिंग करते समय यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि अपराध और हिंसा का महिमामंडन न किया जाए।

VISION IAS

- **महिलाओं और बच्चों के विरुद्ध हिंसा या उत्पीड़न का चित्रण:** समाचार चैनलों को यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि कोई भी महिला या किशोर, जो यौन हिंसा, आक्रामकता, आघात से पीड़ित है अथवा इसका साक्षी रही/रहा है; को टीवी पर दिखाने के दौरान उनकी पहचान को उजागर न किया जाये।
- **निजता का सम्मान करना :** चैनल को व्यक्तियों के निजी जीवन, या व्यक्तिगत मामलों में हस्तक्षेप नहीं करने के नियम का पालन करना चाहिए, जब तक कि इस तरह के प्रसारण के स्पष्ट रूप से स्थापित वृहद और अभिज्ञेय सार्वजनिक हित न हों।

निष्कर्ष

मीडिया को **लोकतंत्र की चौथे स्तम्भ** के रूप में जाना जाता है। लोकतंत्र के सुचारु रूप से संचालन हेतु स्वतंत्र मीडिया आवश्यक है। किन्तु स्वतंत्र मीडिया से तात्पर्य एक अनियंत्रित मीडिया से नहीं है। पत्रकारिता के मानकों का उन्नयन करना ही एक मात्र समाधान हो सकता है। प्रत्येक पत्रकार को ईमानदारी पूर्वक और जानबूझकर किसी संजाल में उलझने के स्थान पर पत्रकारिता के मानक को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

8.6.1. फेक न्यूज़ (भ्रामक समाचार)

(Fake News)

सुर्ख़ियों में क्यों?

हाल ही में, केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय द्वारा फेक न्यूज़ (भ्रामक समाचार) पर अपने दिशा-निर्देश को वापस लेने के पश्चात् समाचार पोर्टलों एवं मीडिया वेबसाइटों को नियंत्रित करने के नियमों को तैयार करने हेतु एक समिति का गठन किया गया है।

फेक न्यूज़ के बारे में

- फेक न्यूज़ उन ख़बरों, वृत्तांत, सूचनाओं, डाटा तथा रिपोर्टों को संदर्भित करते हैं जो पूर्णतः अथवा आंशिक रूप से भ्रामक होते हैं।
- फेक न्यूज़ किसी भी विषय-वस्तु से सम्बंधित हो सकते है:
  - वाणिज्यिक रूप से प्रेरित सनसनीखेज सामग्री,
  - राष्ट्र-राज्य (नेशन स्टेट) द्वारा प्रायोजित गलत सूचना,
  - अत्यधिक पक्षपातपूर्ण न्यूज साइट,
  - स्वयं सोशल मीडिया,
  - व्यंग्य अथवा पैरोडी (नक़ल उतारना)।
- फेक न्यूज़ को मीडिया के विभिन्न माध्यमों, जैसे- प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और सोशल मीडिया के माध्यम से प्रचारित किया जा सकता है।
- यद्यपि फेक न्यूज़ के विरुद्ध कुछ अप्रभावी चेक एवं बैलेंस मुख्य धारा की मीडिया में मौजूद हैं, किन्तु सोशल मीडिया में इस प्रकार की कोई व्यवस्था नहीं है।
- फेक न्यूज़ के संबंध में मानहानि का मुकदमा दायर करना, FIR दर्ज करना, तथा न्यूज़ ब्रॉडकास्टर्स एसोसिएशन (NBA), ब्रॉडकास्टिंग कंटेंट कंप्लेंट काउंसिल (BCCC), प्रेस कॉउन्सिल ऑफ़ इंडिया (PCI) के समक्ष शिकायत दर्ज करना इत्यादि जैसे केवल कुछ ही तंत्र मौजूद हैं।

फेक न्यूज़ से संबंधित मुद्दे

- **लोकतांत्रिक भावना के विरुद्ध :** स्वतंत्र और निष्पक्ष भाषण सुनिश्चित करने वाले लोकतांत्रिक सिद्धांतों से समझौता करके उन्हीं सिद्धांतों का उपयोग दुष्प्रचार के प्रसार के लिए करना विडंबनापूर्ण है।
- **चुनाव प्रक्रिया से समझौता:** भारतीय चुनावी व्यवस्था में राजनीतिक दुष्प्रचार अभियान चुनाव प्रणाली में नागरिक विश्वास में कमी और बुनियादी लोकतांत्रिक सिद्धांतों को कमज़ोर करते हुए मौजूदा सामाजिक विरोध को गहरा कर सकता है।
- **मीडिया में विश्वास:** नागरिक मुख्य धारा के मीडिया द्वारा प्रकाशित किसी भी समाचार को सत्य मानते हैं तथा बहुत कम नागरिक सोशल मीडिया पर प्रसारित समाचारों की प्रामाणिकता को जाँचने का प्रयत्न करते हैं।
- **सामाजिक सद्भाव पर प्रभाव:** फेक न्यूज़ लोकतंत्र में मीडिया को प्राप्त स्वतंत्रता का उपयोग करके गलत सूचना के प्रसारण हेतु अवसर प्रदान करते हैं जो समाज को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इन्हें निम्नलिखित संदर्भों में समझा जा सकता है:
  - कुछ विशिष्ट व्यक्तियों या विरोधियों की छवि एवं चरित्र को हानि पहुँचाने या उन्हें बदनाम करने अथवा लोकप्रियता प्राप्त करने हेतु गलत सूचनाओं के प्रसार के द्वारा **जनमत को विचलित करना।**
  - जनता तथा सरकार के मध्य **अविश्वास की भावना** उत्पन्न करना, जैसे- इलेक्ट्रॉनिक वोटिंग मशीन से छेड़छाड़ संबंधी समाचार जो तथ्यों के गलत प्रस्तुतीकरण पर आधारित थे।
  - दंगों तथा धार्मिक प्रतीकों अथवा ईश्वर को अपमानित करने संबंधी भ्रामक तस्वीरों का उपयोग करके **समुदायों के मध्य हिंसा एवं घृणा को बढ़ावा** देना, उदाहरण स्वरूप - मुजफ्फराबाद के दंगे; बंगलुरु जैसे स्थानों से उत्तर-पूर्वी लोगों का पलायन, आदि।
  - सोशल मीडिया साइटों द्वारा भ्रामक अधिप्रचार के माध्यम से **युवाओं में कट्टरता का प्रसार करना** (Radicalization)।

VISION IAS

फेक न्यूज़ के नियंत्रण से संबद्ध चुनौतियाँ

- **मानक परिभाषा का अभाव:** 'फेक न्यूज़' एक अस्पष्ट शब्द है और वर्तमान समय में इसकी कोई आधिकारिक परिभाषा उपलब्ध नहीं है।
- **विनियमन का अभाव:** मुख्य धारा के मीडिया द्वारा स्व-विनियमन बहुत हद तक अप्रभावी रहा है। फेक न्यूज़ को नियंत्रित करने हेतु सरकार द्वारा किए गए किसी भी प्रत्यक्ष प्रयत्न को मीडिया (लोकतंत्र का चौथा स्तंभ) की स्वतंत्रता का हनन माना जाता है।
- **संतुलन प्राप्ति में कठिनाई:** फेक न्यूज़ को नियंत्रित करने के प्रयासों द्वारा वैधतापरक जाँच-पड़ताल तथा स्रोत-आधारित पत्रकारिता अथवा संविधान के अनुच्छेद 19 में सुनिश्चित अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को क्षतिग्रस्त नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही, समाचारों में जानबूझकर की गयी छेड़छाड़ एवं ऐसे समाचार जिनके सत्य होने का विश्वास है, के मध्य अंतर किया जाना चाहिए।
- **सोशल मीडिया पर फेक न्यूज़ का पता करना:** इंटरनेट उपयोगकर्ताओं (भारत में 35 करोड़ से अधिक) तथा सोशल मीडिया उपयोगकर्ताओं (20 करोड़ से अधिक व्हाट्सएप उपयोगकर्ता) की संख्या अत्यधिक विशाल होने के कारण फेक न्यूज़ की उत्पत्ति का पता लगाना लगभग असंभव है।

आगे की राह

- **नीति का निर्माण करना:** सरकार द्वारा फेक न्यूज़ को नियंत्रित करने के मुद्दों के संबंध में हितधारकों की राय लेकर एक मसौदा तैयार करना चाहिए। 'फेक न्यूज़' से संबंधित भविष्य के दिशा-निर्देशों द्वारा 'फेक न्यूज़' को ही लक्षित करना चाहिए तथा 'फेक न्यूज़' के नाम पर मीडिया को नियंत्रित करने का प्रयत्न नहीं किया जाना चाहिए।
- **विनियामक तंत्र:** PCI में सुधार करने के साथ इसे सशक्त बनाने की आवश्यकता है ताकि यह एक ओर मीडिया और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा दूसरी ओर जानने के अधिकार के मध्य संतुलन स्थापित कर सके।
- **जागरूकता:** लोगों को फेक न्यूज़, उनके प्रसार से उत्पन्न होने वाले खतरों तथा इस प्रकार के किसी भी तथ्य पर विश्वास करने में सावधानी बरतने के विषय में अवगत कराया जाना चाहिए।
- **प्रामाणिक समाचार:** प्रामाणिक समाचार का प्रसार करने हेतु सोशल मीडिया पर सरकारी संगठनों के ऑफीशियल अकाउंट भी मौजूद होने चाहिए।
- फेक न्यूज़ के खतरे की रोकथाम हेतु सोशल मीडिया हाउसों को भी प्रयास करना चाहिए। उदाहरणार्थ- हाल ही में, फेसबुक द्वारा घोषणा की गई है कि कर्नाटक चुनावों के दौरान **फेक न्यूज़ से मुकाबला** करने हेतु उसने एक भारतीय **तथ्य-जांच एजेंसी** बूम लाइव के साथ करार किया है।

अन्य उपाय : इसमें **फेक** न्यूज़ के समाधान हेतु **विकेन्द्रीकृत तीन-विन्दु एजेंडा** सम्मिलित है।

- **महत्वपूर्ण डिजिटल साक्षरता को** एक घटक के रूप में सम्मिलित करते हुए **महत्वपूर्ण मीडिया साक्षरता** को सुनिश्चित करना ताकि व्यक्तियों को इंटरनेट चलाने के लिए आवश्यक कौशल सीखने और इन्टरनेट पर उपलब्ध सामग्रियों पर प्रश्न उठाने हेतु प्रोत्साहित करने पर ध्यान केंद्रित किया जा सके।
- नागरिकों के मध्य सूचना के प्रति संदेह की **एक सामान्य संस्कृति को परिपोषित करना**। इस संबंध में जिला प्रशासन और स्थानीय समुदाय के नेताओं की भूमिका महत्वपूर्ण है।
- लक्षित और आनुपातिक कानूनी हस्तक्षेपों को सीमित स्थितियों मे खोजा जा सकता है, उदाहरणार्थ- उन स्थितियों में जब जीवन या राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए खतरा विद्यमान हो।

8.7 शासन में जन-सहभागिता में सुधार

(Improving People's Participation in Governance)

जन-सहभागिता का आशय उस प्रक्रिया से है जिसके माध्यम से लोग अपनी आवश्यकताओं को पहचानने में सक्षम होते हैं तथा सहभागितापूर्ण कार्रवाई की रुपरेखा, कार्यान्वयन और मूल्यांकन में भाग ले सकते हैं। सक्रिय जन-सहभागिता निम्नलिखित तरीकों से सुशासन में अपना योगदान दे सकती है:

- यह नागरिकों को जवाबदेही की मांग हेतु सक्षम बनाती है।
- सरकारी कार्यक्रमों एवं सेवाओं को अधिक प्रभावी तथा संधारणीय बनाती है।
- समाज के निर्धन एवं हाशिए पर रहने वाले वर्गों को लोक नीति और सेवा वितरण में भागीदारी में सक्षम बनाती है।
- स्वस्थ एवं जमीनी स्तर के लोकतंत्र को प्रोत्साहित करती है।
- लोगों को विकास प्रक्रिया में समान हितधारकों के रूप में देखा जाता है।

8.7.1. विधान-पूर्व संवीक्षा

(Pre-Legislative Scrutiny)

- लोकतान्त्रिक ढांचे के अंतर्गत आने वाले सभी हितधारकों के लिए समान पहुंच और अधिक पारदर्शिता सुनिश्चित करने हेतु नागरिकों और नीति निर्माण प्रक्रिया के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता उत्पन्न होती है।

VISION IAS

- विधान-पूर्व संवीक्षा के अंतर्गत किसी विधेयक को संसद के समक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व उन पर जनसामान्य की सहभागिता प्राप्त की जाती है। इसके तहत, नागरिक आपस में और विधि निर्माताओं के साथ संवाद की प्रक्रिया में भागीदारी करते हैं तथा आने वाले विधेयकों पर चर्चा और विचार-विमर्श करते हैं।

लाभ

- प्रत्यक्ष जन भागीदारी के कारण विधि निर्माण प्रक्रिया की **पारदर्शिता में वृद्धि**।
- **व्यवधान मुक्त प्रक्रिया-** यह किसी प्रस्तावित कानून में परिवर्तन हेतु संसद में उत्तरवर्ती चरण के बजाय प्रारंभिक चरण में ही आसानी से परिवर्तन का अवसर प्रदान करती है जिससे इस प्रकार की प्रक्रिया सुगम हो जाती है।
- विस्तृत विधान बनाने से पहले ही नीति निर्माताओं और विधायिका के सदस्यों को प्रस्तुत **बेहतर और सुविचारित अभिमत** यह सुनिश्चित करेगा कि प्रारूप कानून उन त्रुटियों से मुक्त है जिन्हें आसानी से टाला जा सकता है। साथ ही, इससे विधान में होने वाले संशोधनों की संभावना भी कम हो सकती है।
- **समिति का सुदृढ़ीकरण -** यह देश के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त विभिन्न विचारों के कारण संसदीय समिति की चर्चा को अधिक सूचनापरक बना सकती है।
- **विधि निर्माण प्रक्रिया को लोकतांत्रिक बनाना-** इससे ऐसे कानूनों का निर्माण सुनिश्चित होता है जो अभिजात वर्गों और विशेष हितों को सुदृढ़ बनाने के बजाय आम लोगों की इच्छाओं को बेहतर ढंग से प्रतिबिंबित करते हैं।
- सदनों में व्यवधान की प्रवृत्ति बढ़ने के कारण यह संसद में पर्याप्त **चर्चा और विचार-विमर्श** न हो पाने संबंधी कमी को दूर कर सकती है।

- संसद द्वारा अधिनियमित कानून का नागरिकों के जीवन पर व्यापक प्रभाव हो सकता है। अतः एक सूक्ष्म जन संवीक्षा यह सुनिश्चित करती है कि कानून के उद्देश्यों और प्रस्तावों को व्यापक स्वीकृति प्राप्त हो। सिविल सोसाइटी द्वारा तैयार किए गए सूचना का अधिकार अधिनियम और जन लोकपाल विधेयक इसका उदाहरण हैं।
- 2014 में, भारत सरकार द्वारा **विधान पूर्व परामर्श की नीति** अपनाई गई थी। इसमें यह अधिदेशित किया गया है कि सभी विधानों के प्रारूप (अधीनस्थ विधानों सहित) को 30 दिनों के लिए जन सामान्य की टिप्पणियों को आमंत्रित करने हेतु पब्लिक डोमेन में रखा जाए। साथ ही, कैबिनेट की स्वीकृति के लिए भेजे जाने से पूर्व संबंधित मंत्रालय की वेबसाइट पर टिप्पणियों का सारांश उपलब्ध कराया जाए।
- इसके अतिरिक्त, हालांकि विधेयकों के प्रारूपों के संबंध में जनसहभागिता सांविधिक रूप से अनिवार्य नहीं है, किन्तु भारत सरकार सार्वजनिक सहभागिता में वृद्धि करने हेतु विभिन्न सर्वोत्तम अंतर्राष्ट्रीय प्रथाओं को अपना सकती है; जैसे कि:
  - विधेयक द्वारा संबोधित विधायी प्राथमिकताओं पर एक ग्रीन पेपर तैयार करना और इसे नागरिकों के लिए उपलब्ध कराना।
  - आगामी वर्ष में प्रस्तुत किए जाने वाले प्रस्तावित विधेयकों की एक सूची प्रकाशित करना और इन विधेयकों के प्रारूप संस्करणों को एक संसदीय समिति को भेजना। यह जनसामान्य की टिप्पणियों को स्वीकार करेगी और विशेषज्ञों से परामर्श लेगी (जैसा कि वर्तमान में ब्रिटेन में प्रचलित है)।
- इसके अतिरिक्त, सरकार जन सहभागीदारी के लिए निम्नलिखित कदम उठा सकती है:
  - विधेयक द्वारा निर्मित प्रक्रियाओं/निकायों के लिए बजटीय आवंटन निर्दिष्ट करने वाले प्रत्येक विधेयक हेतु वित्तीय ज्ञापन उपलब्ध कराना।
  - विस्तारित पहुँच के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करना।
  - विधायी प्रस्तावों के संबंध में अपने प्रतिनिधियों को आवेदन प्रस्तुत करने के नागरिकों के अधिकार का विस्तार करना।
  - विधेयक पर सुझाव आमंत्रित करने हेतु Mygov प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग करना।
- अतीत में, सरकार द्वारा सक्रिय जन भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु अनेक कदम उठाए गए हैं, जैसे प्रत्यक्ष कर संहिता के प्रारूप और इलेक्ट्रॉनिक सर्विस डिलिवरी विधेयक के प्रारूप के मामलों में उठाये गए कदम। संविधान की कार्यप्रणाली की समीक्षा हेतु गठित राष्ट्रीय आयोग द्वारा अनुसंशा की गयी है कि प्रारूप विधेयकों का विशेषज्ञों और जनसामान्य द्वारा समग्रता और गहनता से परीक्षण किया जाना चाहिए। इस अनुशंसा को प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए।

8.7.2 सिटीजन चार्टर

(Citizens Charters)

सुर्खियों में क्यों?

- हाल ही में, सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष एक जनहित याचिका दायर की गई है जिसके तहत केंद्र सरकार से प्रत्येक सरकारी विभाग में एक सिटीजन चार्टर और शिकायत निवारण अधिकारी की व्यवस्था करने तथा एक शिकायत निवारण आयोग स्थापित करने की मांग की गयी है।

VISION IAS

- याचिका में कहा गया है कि **सेवाओं** की **समयबद्ध** प्रदायगी के **अधिकार** को संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत जीवन के अधिकार के एक अभिन्न अंग के रूप घोषित किया किया जाना चाहिए।

सिटीजन चार्टर क्या है?

- यह किसी संगठन को पारदर्शी, उत्तरदायी और नागरिकों के प्रति जवाबदेह बनाने हेतु एक आवश्यक उपकरण है।
- यह एक सार्वजनिक दस्तावेज़ है, जो एक विशिष्ट सेवा के संदर्भ में नागरिकों के अधिकारों, सेवा के मानकों, उपयोगकर्ताओं के संबंध में पात्रता की शर्तों, और मानकों का अनुपालन न होने पर उपयोगकर्ताओं के लिए उपलब्ध उपचारों को परिभाषित करता है।

सिटीजन चार्टर के घटक:

- संगठन के लक्ष्य एवं मिशन वक्तव्य:
  - यह वांछित परिणाम एवं परिणामों और लक्ष्यों को प्राप्त करने की व्यापक रणनीति प्रदान करता है।
  - यह उपयोगकर्ताओं को उनके सेवा प्रदाता के मंतव्य से अवगत कराता है और संगठन को जवाबदेह बनाये रखने में सहायता करता है।
- संगठन को स्पष्ट रूप से यह बताना होता है कि यह किस विषय से संबंधित है और इसमें व्यापक रूप से कौन-कौन सी सेवाएं शामिल हैं। यह उपयोगकर्ताओं को किसी विशेष सेवा प्रदाता से अपेक्षित सेवाओं के विषय में जानकारी प्रदान करने में सहायता करता है।
- सिटीजन चार्टर द्वारा चार्टर के संदर्भ में नागरिकों के उत्तरदायित्व को भी निर्धारित किया जाना चाहिए।

सिटीजन चार्टर के लाभ

- नागरिकों को सेवा वितरण मानकों की स्पष्ट समझ प्रदान करके **जवाबदेहिता में वृद्धि** करता है।
- निश्चित मापदंड आधारित सेवा वितरण मानकों का पालन करने के लिए सार्वजनिक प्रतिबद्धता सुनिश्चित करके **संगठनात्मक प्रभावशीलता और प्रदर्शन में वृद्धि** करता है।
- सेवा वितरण प्रदर्शन की निष्पक्ष निगरानी करने के लिए **आंतरिक और बाहरी, दोनों ही अभिकर्ताओं के लिए एक प्रक्रिया** निर्धारित करता है।
- सेवा वितरण के लिए एक अधिक पेशेवर और ग्राहक के प्रति जवाबदेह परिवेश का निर्माण और कर्मचारियों के नैतिक स्तर में वृद्धि करता है।
- सरकार के राजस्व को बढ़ाता है तथा यह सुनिश्चित करता है कि नागरिकों द्वारा सेवाओं के लिए भुगतान की गयी राशि सरकारी कोष में ही संग्रहित हो (कर्मचारियों की जेब में नहीं)।

भारत में सिटीजन चार्टर से सम्बंधित मुद्दे :

- **खराब प्रारूप और सामग्री -** अधिकांश संगठनों में अर्थपूर्ण और संक्षिप्त सिटीजन चार्टर के निर्माण की पर्याप्त क्षमता नहीं है। अंतिम उपयोगकर्ताओं के प्रति एजेंसियों के उत्तरदायित्व के निधारण हेतु आवश्यक जानकारियां अधिकांश चार्टर्स में शामिल नहीं होती हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक चार्टर तैयार करते समय उपभोक्ताओं या गैर सरकारी संगठनों से परामर्श नहीं किया जाता है।
- **जन जागरूकता में कमी-** वितरण सम्बन्धी मानकों के संबंध में जनता को जागरूक और शिक्षित करने के प्रभावी प्रयास नहीं किए गए हैं और अधिकांश लोगों को इसके संबंध में जानकारी उपलब्ध ही नहीं है। इसके अतिरिक्त जन-जागरूकता के प्रसार के लिए किसी प्रकार के धन आवंटन का प्रावधान नहीं है।
- चार्टर में किए गए वादों को पूरा करने के लिए एवं अपनी प्रक्रियाओं का आकलन और सुधार करने के मामले में पर्याप्त प्रयास नहीं किये जाते हैं।
- **चार्टर को अधिकांशतः अद्यतित नहीं किया जाता है** और कुछ चार्टर सिटीजन चार्टर कार्यक्रम की शुरुआत के समय के अर्थात एक दशक से भी अधिक पुराने हैं।
- **परिवर्तन का प्रतिरोध -** नवीन व्यवस्था नागरिकों के प्रति एजेंसी और उसके कर्मचारियों के व्यवहार और दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन की मांग करती है। कभी-कभी, निहित हित सिटीजन चार्टर को पूर्णतः या आंशिक रूप से अप्रभावी बनाने का काम करते हैं।
- चार्टर की व्यवस्था नहीं किये जाने पर **दंड संबंधी प्रावधानों की अनुपस्थिति** के कारण सभी मंत्रालयों/विभागों द्वारा इसे नहीं अपनाया गया है।
- सेवा वितरण सम्बन्धी मापदंडो/मानकों को कदाचित ही चार्टर्स में उल्लिखित किया जाता है, इसलिए यह आकलन करना कठिन हो जाता है कि सेवा का वांछित स्तर प्राप्त हो पाया है अथवा नहीं।

द्वितीय प्रशासनिक सुधार आयोग की अनुशंसाएँ:

- **चार्टर निर्माण से पहले आंतरिक पुनर्गठन होना चाहिए -** संगठन के भीतर मौजूदा तंत्र और प्रक्रियाओं का समग्र विश्लेषण होना चाहिए और यदि आवश्यक हो, तो इन्हें पुनर्गठित किया जाना चाहिए और नई पहलों को अपनाया जाना चाहिए।
- **एक ही मापदंड सभी के लिए अनुकूल नहीं हो सकता,** इसलिए सिटीजन चार्टर्स का निर्माण एक विकेंद्रीकृत गतिविधि के रूप में होना चाहिए तथा सम्बंधित मुख्यालय को केवल व्यापक दिशानिर्देश देने चाहिए।
- **व्यापक परामर्श प्रक्रिया-** संगठन के भीतर व्यापक परामर्श के बाद इसे दृढ़ प्रतिबद्धता से नागरिक समाज के साथ सार्थक विचार-विमर्श के बाद तैयार किया जाना चाहिए।

VISION IAS

- **त्रुटियों के मामले में निवारण तंत्र की व्यवस्था-** इसमें संगठन द्वारा अपेक्षित सेवाओं का वितरण करने में असफल होने की स्थिति में प्रदान की जाने वाली क्षतिपूर्ति को स्पष्ट रूप से वर्णित किया जाना चाहिए और नागरिकों को भी शिकायत निवारण तंत्र का सहारा लेना चाहिए।
- एक बाहरी एवं अधिमान्य एजेंसी के माध्यम से समय-समय पर **सिटीजन चार्टर का आवधिक मूल्यांकन** सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- **अंतिम उपयोगकर्ता के फीडबैक पर आधारित-** पब्लिक डोमेन में रखे जाने के बाद भी इसकी व्यवस्थित निगरानी और समीक्षा आवश्यक है। इस संदर्भ में समय-समय पर अंतिम उपयोगकर्ता की प्रतिक्रिया से सिटीजन चार्टर को लागू करने वाली एजेंसी की प्रगति और परिणामों का आकलन किया जा सकता है।
- **परिणामों के लिए अधिकारियों को उत्तरदायी ठहराना-** निगरानी तंत्र को उन सभी मामलों में उत्तरदायित्व विशेष रूप से निर्धारित करना चाहिए जहां सिटीजन चार्टर का अनुपालन नहीं किया गया हो।

सेवोत्तम मॉडल

- यह एक सेवा वितरण आधारित उत्कृष्टता मॉडल है, जो लोक सेवा वितरण में उत्कृष्टता लाने के लिए एक मूल्यांकन सुधार ढांचा प्रदान करता है।
- सिटीजन चार्टर्स द्वारा लोक सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करने सम्बन्धी वांछित परिणाम प्राप्त करने में असफल होने के कारण सेवोत्तम जैसे मॉडल की आवश्यकता उत्पन्न हुई है।

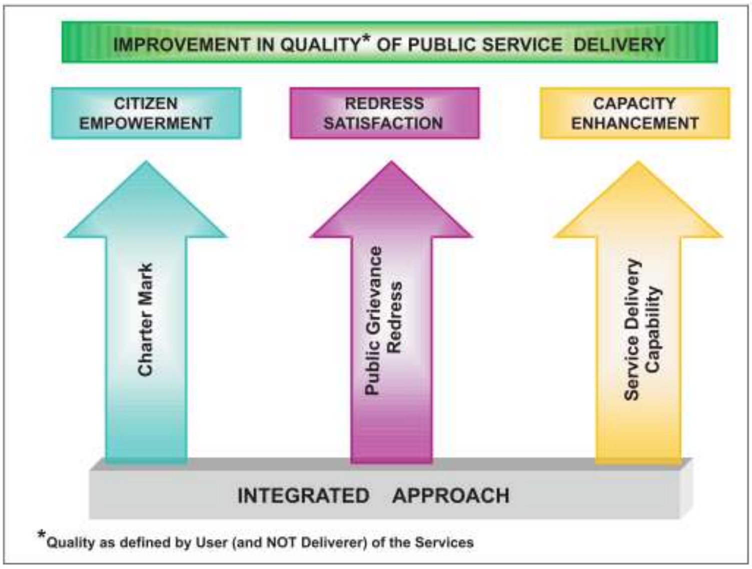

Intended Outcomes of Implementing Sevottam

- यह आंतरिक प्रक्रियाओं की गुणवत्ता एवं सेवा वितरण की गुणवत्ता पर उनके प्रभाव का आकलन करने के लिए एक मूल्यांकन तंत्र के रूप में कार्य करता है।

घटक:

- प्रथम घटक के रूप में एक चार्टर के प्रभावी कार्यान्वयन की आवश्यकता होती है। अतः नागरिकों के इनपुट प्राप्त करने के लिए एक माध्यम की स्थापना की जानी चाहिए जिससे संगठन सेवा वितरण आवश्यकताओं को निर्धारित कर सके।
- लोक शिकायत निवारण के लिए एक प्रभावी शिकायत निवारण प्रणाली की आवश्यकता होती है, जिसमे अंतिम निर्णय भले ही कुछ भी हो, शिकायत के निपटारे की पूरी प्रक्रिया से उपभोक्ता को संतुष्ट होना चाहिए।

सेवा वितरण में उत्कृष्टता, यह निर्धारित करती है कि एक संगठन उत्कृष्ट प्रदर्शन कर सकता है, यदि वह बेहतर सेवा वितरण के लिए महत्वपूर्ण उपकरणों का भलीभांति प्रबंधन करे और वितरण में निरंतर सुधार करने की अपनी क्षमता का निर्माण करे।

8.8 ई-गवर्नेंस: शासन का एक अवयव

(E-Governance as a Component of Governance)

परिचय

- ई-गवर्नेंस (इलेक्ट्रॉनिक गवर्नेंस) का आशय सरल, उत्तरदायी, तीव्र, अनुक्रियाशील और पारदर्शी शासन को प्राप्त करने हेतु सरकारी कार्य पद्धति की प्रक्रियाओं में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी (ICT) का अनुप्रयोग करना है। यह शासन के लक्ष्यों को प्राप्त करने हेतु लोगों, प्रक्रियाओं, सूचना और प्रौद्योगिकी को एकीकृत करता है।
- यह वर्तमान सरकार को परिवर्तित कर रहा है तथा **स्मार्ट गवर्नेंस** को बढ़ावा दे रहा है, जैसे :
    - **S - सरल (Simple):** सरकार के नियमों एवं प्रक्रियाओं का सरलीकरण कर उन्हें उपयोगकर्ताओं हेतु अनुकूल बनाना।
    - **M- नैतिक (Moral):** चूँकि भ्रष्टाचार-विरोधी एवं सतर्कता एजेंसियों में सुधार हो रहा है इसलिए अधिकारियों में नैतिकता और मूल्यों का समावेश किया जाना चाहिए।
    - **A - जवाबदेहिता (Accountability):** सूचना और संचार प्रौद्यौगिकी (ICT) प्रदर्शन के मापदंडों को निर्धारित करने में सहायता करता है तथा कुशलतापूर्वक इनका मापन भी करता है।

- R- अनुक्रियाशील (Responsive): लोगों के अनुरूप कुशल सेवा वितरण प्रणाली और सरकार।
- T- पारदर्शी (Transparent): इसके माध्यम से गोपनीय सूचनाएं पब्लिक डोमेन में आ जाती हैं जिससे सार्वजनिक एजेंसियों में समता और विधि के शासन को बढ़ावा मिलता है।

स्मार्ट (SMART) गवर्नेंस सक्षम करता है:

1. जन सहभागिता
2. जवाबदेहिता तथा कुशलता
3. पारदर्शिता
4. उपयोगकर्ता के अनुकूल सरकारी प्रक्रियाएं
5. पदानुक्रमिक अवरोधों तथा लालफीताशाही की समाप्ति
6. बेहतर सेवा वितरण

ई-गवर्नेंस के उद्भव तथा सेवा वितरण के अन्य मॉडल की उपस्थिति के बावजूद, अभी भी विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन से संबंधित कुछ मुद्दे विद्यमान हैं, जैसे:

- समरूप अथवा समान तरह के मुद्दों को नियंत्रित करने वाले कानूनों की बहुलता।
- अत्यधिक संख्या में अनुमोदन/स्वीकृतियों की आवश्यकता का होना।
- समरूप अथवा समान मुद्दों पर विभिन्न प्राधिकरणों द्वारा स्वीकृति/अनुमोदन की आवश्यकता।
- निवेशक तथा प्राधिकरणों के मध्य विभिन्न अनुबंधों की बहुलता।
- मंजूरी तथा स्वीकृति में पारदर्शिता का अभाव।
- कई विभागों/एजेंसियों को बड़ी संख्या में विवरण और सूचनाएं प्रदान करना।
- संबंधित विभागों के मध्य संचार एवं सूचनाओं को बहुत कम साझा किया जाना।

जवाबदेहिता को बढ़ावा देने और योजनाओं के प्रभावी एवं कुशल क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने हेतु, हाल ही में विभिन्न ई-गवर्नेंस पहलों को लागू कर सरकार द्वारा विभिन्न कदम उठाए गए हैं।

8.8.1. सार्वजनिक वित्त प्रबन्धन प्रणाली

(Public Finance Management System)

- यह एक वेब आधारित सॉफ़्टवेयर एप्लीकेशन है, जिसे **महालेखा नियंत्रक (CGA) कार्यालय** द्वारा विकसित और कार्यान्वित किया गया है।
- इसके अंतर्गत केंद्रीय योजनाओं और केंद्र प्रायोजित योजनाओं के साथ-साथ वित्त आयोग के अनुदान सहित अन्य व्यय शामिल किये गए हैं।
- यह सरकारी योजनाओं के लिए **वित्तीय प्रबंधन मंच (फाइनेंसियल मैनेजमेंट प्लेटफ़ॉर्म)** के साथ-साथ **भुगतान सह लेखांकन (पेमेंट कम एकाउंटिंग) नेटवर्क** के रूप में कार्य करता है। इसे कोर बैंकिंग प्रणाली के साथ एकीकृत किया गया है तथा यह पूरे देश में RBI सहित 170 बैंकों से संबद्ध (interface) है।

8.8.2. ई-विधान मिशन मोड परियोजना

(E-Vidhan Mission Mode Project)

- यह भारत में राज्य विधानमंडलों की कार्य-प्रणाली को कागज़-मुक्त बनाने तथा उसके डिजिटलीकरण हेतु एक मिशन मोड परियोजना है।
- यह विधानसभा की कार्य-प्रणाली को पूर्णतः स्वचालित बनाने वाली **सार्वजनिक वेबसाइट, सुरक्षित वेबसाइट, सदन के एप्लीकेशनों तथा मोबाइल एप्स** का एक सॉफ्टवेयर समूह है।
- संसदीय कार्य मंत्रालय, इस परियोजना हेतु नोडल मंत्रालय है।
- इस परियोजना के कार्यान्वयन हेतु निर्मित रणनीति के मुख्य घटकों में से एक केंद्र तथा राज्य, दोनों ही स्तरों पर परियोजना निगरानी इकाइयों का निर्माण करना है।
- हिमाचल प्रदेश, ई-विधान वेबसाइट का उपयोग करने वाला तथा एक मोबाइल ऐप लांच करने वाला प्रथम राज्य बना।

8.8.3. ई-समीक्षा

(E-Samiksha)

- ई-समीक्षा एक **ऑनलाइन निगरानी तथा अनुपालन तंत्र** है। इसे कैबिनेट सचिवालय द्वारा राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (NIC) की तकनीकी सहायता से विकसित किया गया है।

VISION IAS

- इसका उपयोग, **परियोजनाओं और नीतिगत पहलों की प्रगति की निगरानी करने** और **रियल टाइम में** कैबिनेट सचिव और प्रधानमंत्री द्वारा विभिन्न मंत्रालयों के कार्यों की जांच करने के लिए किया जाता है।
- एक **ई-पत्राचार** सुविधा प्रारंभ की गयी है जो ई-मेल और SMS के माध्यम से बैठकों की सूचना और एजेंडा, सर्कुलर, पत्र इत्यादि भेजती है। इस प्रकार यह **'मिनिमम गवर्नमेंट, मैक्सिमम गवर्नेंस'** के सिद्धांत को बढ़ावा देता है।
- **दक्षता में वृद्धि, पारदर्शिता लाने, जवाबदेही सुनिश्चित करने, तथा गवर्नमेंट** से **गवर्नमेंट**, बिज़नेस से गवर्नमेंट और गवर्नमेंट से बिज़नेस के बीच **संचार में सुधार** के लिए **ई-समीक्षा** पोर्टल का निर्माण किया गया है।

8.8.4. यूनीफाइड प्लानिंग एंड एनालिसिस इंटरफ़ेस (UPAAI)

सुर्ख़ियों में क्यों?

UPaAI (यूनिफाइड प्लानिंग एंड एनालिसिस इंटरफ़ेस) या अंग्रेजी में 'सॉल्यूशन', जो संसद सदस्यों को उनके राज्यों में विकास कार्यों को ट्रैक करने में सहायता करेगा।

महत्व

- यह ऐप प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के लिए अवसंरचना एवं सामाजिक संकेतकों से सम्बंधित आंकड़ों का एक समेकित प्लेटफॉर्म प्रदान करेगी।
- यह सांसद को उसके निर्वाचन क्षेत्र से संबंधित जिलेवार सूचनाएं प्रदान करेगी तथा MPLAD निधियों व किसी अन्य केंद्रीय योजना से संबंधित बेहतर निर्णय लेने में उनकी सहायता करेगी।
- इसकी **निगरानी प्रधानमंत्री कार्यालय द्वारा** की जाएगी और यह डिजिटल इंडिया पहल के अनुरूप है।
- अगले चरण में, राज्य योजनाओं को सम्मिलित करने के लिए इसका विस्तार किया जाएगा और यह जिलाधिकारियों एवं विधायकों को एक मंच पर लाएगा।

8.8.5 राष्ट्रीय ई-शासन योजना (NATIONAL E-GOVERNANCE PLAN)

- यह योजना वर्ष 2006 में प्रारम्भ की गई थी। यह योजना राष्ट्रीय स्तर पर सार्वजनिक सेवाओं की आपूर्ति में सुधार करने तथा उन तक पहुँचने की प्रक्रिया को सरलीकृत करने हेतु ई-शासन पहलों पर केन्द्रित है।
- मूल रूप से इसमें 27 मिशन मोड परियोजनाओं (MMPs) को शामिल किया गया था। इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय द्वारा राष्ट्रीय ई-शासन योजना के तहत मुख्य सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अवसंरचना का निर्माण किया गया था। इसके अंतर्गत स्टेट डेटा सेंटर्स, स्टेट वाइड एरिया नेटवर्क, स्टेट सर्विस डिलीवरी गेटवे, मोबाइल सेवा तथा ई-गवर्नेंस एप स्टोर शामिल किए गए हैं।
- ई-शासन योजना ने अनेक क्षेत्रों में आधारभूत सूचना प्रौद्योगिकी अवसंरचना को सुदृढ़ किया है तथा बढ़ते राजनीतिक समर्थन के कारण इसकी स्थिति में सुधार हुआ है। यद्यपि यह विभिन्न मुद्दों से ग्रसित है:

नवीन प्रौद्योगिकियों को अपनाना	प्रक्रियाओं में परिवर्तन	राष्ट्रीय ई-शासन योजना के क्रियान्वयन में सुधार
• उभरती प्रौद्योगिकियों जैसे कि मोबाइल, क्लाउड आदि का लाभ प्राप्त नहीं किया गया है। • कमजोर निगरानी एवं मूल्यांकन व्यवस्था। • सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूचना प्रौद्योगिकी अवसंरचना का समुचित प्रयोग न हो पाना।	• योजनाओं, परियोजनाओं इत्यादि में सरकारी प्रोसेस रिइंजीनियरिंग का अभाव। • अनुपयुक्त डाटाबेस तथा एप्लीकेशन्स। • एकीकरण एवं पारस्परिकता का अभाव।	• मौजूदा मिशन मोड प्रोजेक्ट (MMPs) के सीमित कार्यक्षेत्र। • विभिन्न MMPs की गैर-समावेशी प्रकृति। • प्रोजेक्टों की कार्यावधि में अनावश्यक वृद्धि। • अंतिम बिंदु तक कनेक्टिविटी का अभाव।

VISION IAS

- इन मुद्दों के समाधान हेतु वर्ष 2014 में **ई-क्रांति फ्रेमवर्क (या राष्ट्रीय ई-शासन योजना 2.0)** प्रारंभ किया गया। ई-क्रांति का दृष्टिकोण "गवर्नेन्स के कायाकल्प के लिए ई-गवर्नेन्स का कायाकल्प" है। ई-क्रांति कार्यक्रम के अंतर्गत 44 MMPs शामिल हैं जिन्हें केंद्र, राज्य और एकीकृत परियोजनाओं में समूहबद्ध किया गया है।

ई-क्रांति के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं:

- परिवर्तन, न कि रूपांतरण,
- एकीकृत सेवाएं न कि व्यक्तिगत सेवाएं,
- प्रत्येक MMP में सरकारी प्रोसेस रिइंजीनियरिंग को अनिवार्य करना,
- क्लाउड बाई डिफाल्ट,
- मोबाइल प्रथम,
- भाषा का स्थानीयकरण,
- मांग पर ICT बुनियादी ढांचा,
- फास्ट ट्रैक स्वीकृति,
- मानकों और प्रोटोकॉल की अनिवार्यता,
- नेशनल GIS (जियो-स्पैशियल सूचना प्रणाली) तथा
- सुरक्षा और इलेक्ट्रोनिक डाटा संरक्षण।

9. स्थानीय शासन (LOCAL GOVERNMENT)

73वें तथा 74वें संविधान संशोधन द्वारा देश की लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया में एक नए अध्याय को स्थापित किया गया। स्थानीय विकास के प्रबंध हेतु इन स्वशासी ग्राम पंचायतों एवं ग्राम सभाओं की स्थापना को 25 वर्ष हो गए हैं। इन संशोधनों द्वारा संविधान में दो भाग क्रमशः **भाग 9 (पंचायत) तथा भाग 9A (नगरपालिकायें)** अंत:स्थापित किए गए। इनकी महत्वपूर्ण विशेषताएं निम्नलिखित हैं:

- **ग्रामीण एवं नगरीय स्थानीय निकायों (ULBs) के गठन की अनिवार्यता:** अनुच्छेद 243B के तहत सभी राज्यों/संघ शासित प्रदेशों में पंचायत की त्रि-स्तरीय प्रणाली का गठन किया जाएगा तथा जिन राज्यों की जनसंख्या 20 लाख या उससे कम है उन राज्यों में पंचायतों के दो स्तर होंगे। इसी प्रकार अनुच्छेद 243Q नगरीय क्षेत्रों में नगरपालिकाओं के सृजन का प्रावधान करता है।
- अनुच्छेद 243G तथा अनुच्छेद 243W के तहत राज्य विधानमंडल द्वारा क्रमशः पंचायतों एवं नगरपालिकाओं को **शक्तियों एवं कर्तव्यों के प्रत्यायोजन** संबंधी प्रावधान शामिल किए गए। संविधान की **अनुसूची 11 और 12** में क्रमशः पंचायती राज संस्थाओं (PRIs) तथा नगरपालिकाओं को सौंपे गए कार्यों की विस्तृत सूची प्रदान की गई है।
- **ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों एवं महिलाओं को (33%) आरक्षण:** कुछ राज्यों जैसे केरल, बिहार आदि ने स्थानीय संस्थाओं में महिला आरक्षण को 50% तक बढ़ा दिया है।
- **राज्य निर्वाचन आयोग (SECs):** अनुच्छेद 243K के द्वारा पंचायतों हेतु निर्वाचक नामावली तैयार करने तथा निर्वाचनों के संचालन करने का नियंत्रण एक राज्य निर्वाचन आयोग में निहित गया है। यह प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक पांच वर्ष के पश्चात् नियमित चुनाव आयोजित किए जाएंगे।
- **जिला योजना समिति (DPC):** अनुच्छेद 243ZD के तहत प्रत्येक राज्य में जिला स्तर पर, जिले में पंचायतों और नगरपालिकाओं द्वारा तैयार की गई योजनाओं का समेकन करने और सम्पूर्ण जिले के लिए एक विकास योजना का प्रारूप निर्मित करने हेतु एक जिला योजना समिति का गठन किया जाएगा।
- **राज्य वित्त आयोग:** अनुच्छेद 243I और 243Y के अंतर्गत राज्य और स्थानीय निकायों के मध्य निधियों के वितरण के संदर्भ में अनुशंसाएं करने हेतु राज्यपाल द्वारा एक राज्य वित्त आयोग के गठन का प्रावधान है। यह आयोग ऐसे करों, शुल्कों, पथकरों और फीसों को निर्धारित करता है जो स्थानीय निकायों को समनुदिष्ट की जा सकती हैं या उनके द्वारा विनियोजित की जा सकती हैं। साथ ही यह राज्य की संचित निधि से सहायता अनुदान एवं स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक अध्युपायों के बारे में राज्यपाल को सिफारिश करता है।

अरुणाचल प्रदेश की दो स्तरीय पंचायती राज प्रणाली

- हाल ही में, अरुणाचल प्रदेश की विधान सभा ने राज्य में पंचायतों के मध्यवर्ती स्तर **अंचल समिति** को समाप्त करने तथा दो स्तरीय पंचायती राज प्रणाली की स्थापना करने हेतु एक विधेयक पारित किया है। यह ग्राम पंचायतों तथा जिला परिषदों के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क स्थापित करके योजनाओं के नियोजन एवं कार्यान्वयन की तीव्रता को सुनिश्चित करेगा तथा अंचल समिति स्तर पर होने वाले योजनाओं के विलम्ब को समाप्त करेगा।
- गोवा, मणिपुर, सिक्किम, दादरा एवं नागर हवेली, दमन एवं दीव तथा लक्षद्वीप में भी पंचायतों के मध्यवर्ती स्तर को गठित नहीं किया गया है।

9.1. पंचायती राज संस्थाएं (Panchayti Raj Institutions: PRIs)

9.1.1. PRIS से सम्बंधित मामले

(Issues With PRIS)

9.1.1.1. कार्यकर्ताओं से सम्बंधित मुद्दे

(Issues related to functionaries)

ग्राम पंचायत स्तर पर मानव संसाधन से सम्बंधित चिंता के विषय

- **उत्तरदायित्व का अभाव-** ग्राम पंचायत के स्तर पर कार्मिक अधिकांश मामलों में ग्राम पंचायत तथा ग्राम सभा (GS) के प्रति उत्तरदायी नहीं होते हैं, जबकि वे उस स्तर पर शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आजीविका सृजन करने जैसी महत्त्वपूर्ण सेवाएं प्रदान करते हैं।
- **क्षमताओं का अभाव-** इनमें बहु-कार्य (multi-task) करने या अन्य दायित्वों के निर्वहन संबंधी क्षमताओं का विकास एक निश्चित समयावधि में नहीं किया जा सकता है।

VISIONIAS

- ग्राम पंचायत स्तर पर कार्यवाहियों के **क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर समन्वय का अभाव** विद्यमान है। विभिन्न विभागों और योजनाओं के विशिष्ट अधिदेशों के अंतर्गत नियुक्त होने के कारण उनका ऊर्ध्वाधर एकीकरण सुनिश्चित नहीं किया जा सका है।
- **निगरानी का अभाव-** मौजूदा नियमों के उल्लंघन की जांच हेतु सुव्यवस्थित निगरानी तंत्र का अभाव है। विशेष रूप से ग्राम पंचायतों के निर्वाचित प्रतिनिधियों में प्रशासनिक अनुभव के अभाव की स्थिति में सरकारी कर्मचारियों पर निर्भरता में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। इस कारण कर्मचारियों द्वारा इस स्थिति का अनुचित दोहन (exploitation) किया जा सकता है अथवा निर्वाचित प्रतिनिधियों एवं अधिकारियों के मध्य संघर्ष उत्पन्न हो सकता है।
- **राज्यों के मध्य भिन्नता-** नियुक्ति के सन्दर्भ में विभिन्न राज्यों के मध्य व्यापक विविधता पाई जाती है, जैसे- योग्यता एवं भर्ती के तरीके, अवधि, पारिश्रमिक, यात्रा-भत्ते तथा एकसमान कैडरों के लिए अन्य भिन्न परिस्थितियाँ। इसके अतिरिक्त, अधिकांश राज्यों में मानव संसाधन नीति का अभाव है।
- **पारिश्रमिक में भिन्नता-** अन्य विभागों द्वारा अतिरिक्त कार्य के लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक का भुगतान नहीं किया जाता, परिणामस्वरूप कर्मचारियों का एक राज्य से दूसरे राज्य में तथा कभी-कभी एक योजना से दूसरी योजना में स्थानान्तरण हो जाता है।
- **अधिकांशतः राज्यों में कोई HR नीति नहीं:** वर्तमान में हरियाणा और राजस्थान जैसी कुछ सरकारों ने पंचायती राज संस्थाओं (PRI) के चुनावों में भाग लेने हेतु शैक्षणिक योग्यता के प्रावधान किये हैं; किन्तु किसी भी राज्य में पंचायतों में गैर -निर्वाचित कर्मियों की नियुक्ति के संबंध में स्पष्ट नियम नहीं हैं।

निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों के समक्ष चुनौतियाँ

स्थानीय राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी में सुधार हुआ है और यह वर्तमान में 44% (अखिल भारतीय औसत) है। हालांकि, उन्हें अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है-

- **निरक्षरता और नेतृत्व कौशल की कमी** जो उन्हें अपने विचारों को मजबूती के साथ प्रकट करने या खुले रूप से व्यक्त करने में बाधा उत्पन्न करती है। साथ ही सामाजिक मिथकों और पूर्वाग्रहों के साथ-साथ न बोलने की परंपरा के कारण, पंचायत कार्यवाही के दौरान महिलाएं अधिकांशतः चुप ही रहती हैं।
- महिलाओं के पंचायतों में निर्वाचन के पश्चात् भी विभिन्न कारणों जैसे **प्राधिकार की कमी** और **पुरुष वर्चस्व** के कारण, पंचायत में उनका अधिकांश कार्य उनके पतियों द्वारा किया जाता है।
- **पारिवारिक सदस्यों के हतोत्साहित करने वाले रवैये** के कारण पंचायत की बैठकों में महिला प्रतिनिधि सामान्य रूप से अनुपस्थिति ही रहती हैं।
- महिलाओं में सामान्यतः PRIs के ढाँचे और कार्यों के बारे में जानकारी का अभाव तथा **राजनीतिक प्रक्रियाओं में भागीदारी के मामले में पूर्व अनुभव का अभाव** भी होता है। यह महिलाओं की नेतृत्वकर्ता के रूप में संवृद्धि और विकास को बाधित करता है।

9.1.1.2. वित्त से संबंधित मुद्दे

(Issues Related To Finances)

- **अपर्याप्त स्थानीय राजस्व सृजन:** स्थानीय निकायों द्वारा उस सीमा तक करों से राजस्व का संग्रह नहीं किया गया है जिस सीमा तक उन्हें करना चाहिए था। इसे आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18 द्वारा **"निम्न संतुलन जाल (Low Equilibrium Trap)"** के रूप में रेखांकित किया गया है। इसके निम्नलिखित कारण हैं:
    - कई राज्य सरकारों द्वारा पंचायतों को पर्याप्त करारोपण की शक्ति प्रदान नहीं की गयी है।
    - यहाँ तक कि यदि राज्यों द्वारा इस शक्ति को हस्तांतरित भी किया गया है तब भी स्थानीय लोगों से कर प्राप्त करने की उनकी अनिच्छा के कारण राजस्व संग्रहण बहुत कम रहा है। इस प्रकार स्थानीय निकाय निधि हस्तांतरण पर निर्भर रहते हैं।
    - इनके द्वारा आवधिक रूप से कर की दरों को संशोधित भी नहीं किया जाता है।
- **वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने की अनिच्छा:** सार्वजनिक अवसंरचना तथा सेवा वितरण हेतु ऋण प्राप्त करने में सशक्त होने के बावजूद अनेक ग्राम पंचायतों ने ऋण प्राप्त नहीं किया है। परिणामस्वरूप पंचायतें प्रभावी तरीके से दीर्घकालिक योजना नहीं बना पाती हैं।
- **राज्य वित्त आयोग की अनुशंसाओं को कार्यान्वित न करना:** राज्य सरकार पर गैर-बाध्यकारी होने के कारण इन अनुशंसाओं को अक्षरश: लागू नहीं किया जाता है।

मुख्य तथ्य

- 25 वर्षों के बाद भी, स्थानीय शासन का व्यय केंद्र, राज्य एवं स्थानीय शासन के कुल सार्वजनिक क्षेत्र व्यय का केवल 7% रहा है। उल्लेखनीय है कि यह व्यय यूरोप में 24%, उत्तरी अमेरिका में 27% तथा डेनमार्क में 55% है।
- कुल सार्वजनिक क्षेत्र के स्वयं के स्रोत से प्राप्त राजस्व में स्थानीय शासन के स्वयं के स्रोत से प्राप्त राजस्व की भागीदारी केवल 2% से कुछ अधिक रही है और इसमें भी पंचायतों का हिस्सा केवल 0.3% है।

VISION IAS

9.1.1.3. प्रकार्यों से संबंधित मुद्दे

(Issues Related To Functions)

- **विभिन्न स्तरों के मध्य प्रकार्यों का अवैज्ञानिक वितरण:** पंचायती राज संस्थाओं को राज्यों द्वारा प्रकार्यों एवं प्राधिकारों का वास्तविक हस्तांतरण बहुत कम किया गया है। कई राज्यों में स्थानीय शासन की भूमिका के महत्त्व को मूल्यांकित किये जाने के बावजूद इनकी भूमिका और उत्तरदायित्वों को सही ढंग से परिभाषित नहीं किया गया है।
- **समानांतर निकायों का सृजन** (प्राय: मंत्रियों और वरिष्ठ नौकरशाहों का वर्चस्व): PRIs के समानांतर निकायों का विधायी अनुमोदन विकेंद्रीकृत लोकतंत्र की कमजोर होती प्रक्रिया को वैधता प्रदान करता है। उदाहरणार्थ हरियाणा की ग्रामीण विकास एजेंसी (RDA) ने पंचायतों के कार्यात्मक अधिकार क्षेत्र में प्रवेश किया है परिणामतः भ्रांति, कार्यों का दोहराव तथा उत्तरदायित्वों के निर्वहन से बचना आदि स्थितियां उत्पन्न होती हैं।
- **पंचायती राज संस्थाओं का राजनीतिकरण तथा उनका 'सरकारी एजेंसियों' के रूप में प्रतीत होना:** केंद्र और राज्य सरकार की विभिन्न विकासात्मक योजनाओं के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व तथा इनसे संबंधित अनुदानों पर उनकी निर्भरता उनकी स्वायत्तता को कम करती है तथा उन्हें एक प्रकार से सरकारी एजेंसियों के रूप परिवर्तित कर देती है। राज्य स्तर पर शासन कर रहे राजनीतिक दल पंचायती राज संस्थाओं को स्वायत्तता प्रदान करने से बचते हैं। इसके अतिरिक्त वे इन्हें अपनी संगठनात्मक शाखा के रूप में मानते हैं, जिसके परिणामस्वरूप इनके प्रतिदिन के कार्यों में निरंतर हस्तक्षेप किया जाता है तथा नियुक्तियों का राजनीतिकरण हो जाता है।
- **कमजोर और अकुशल जिला योजना समितियां (DPCs):** कई राज्यों में ये समितियां अत्यंत कमजोर स्थिति में हैं। इसके अतिरिक्त कई राज्यों में इनका गठन भी नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए गुजरात जैसे राज्यों में जिला योजना समिति की स्थापना तक नहीं की गई है।

9.1.2. पंचायती राज संस्थाओं हेतु सरकार द्वारा उठाए गए कदम

(Steps Taken By Government For PRIS)

- **महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता में सुधार:** महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा **'पंचायती राज संस्थाओं की निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों (EWRs) के लिए क्षमता निर्माण कार्यक्रम'** पर एक परियोजना का कार्यान्वयन किया जा रहा है।
  - यह कार्यक्रम महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के तत्वावधान में कार्यरत एक स्वायत्त निकाय 'राष्ट्रीय जन सहयोग एवं बाल विकास संस्थान' द्वारा कार्यान्वित किया जा रहा है।
  - इसके तहत सरकार के विभिन्न कार्यक्रमों के बेहतर कार्यान्वयन के लिए EWRs के नेतृत्वकारी गुणों एवं प्रबंधन कौशल में सुधार करते हुए उनका 'परिवर्तनकारी एजेंटों' के रूप में विकास करने पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की आवश्यकता

- **भारत में एक स्वस्थ लोकतंत्र की स्थापना:** इसके लिए लगभग आधी जनसंख्या अर्थात् महिलाओं के मानव अधिकारों और निर्णय निर्माण प्रक्रिया में उन्हें सुने जाने के अधिकार सहित अन्य अधिकारों का सम्मान किये जाने की आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में, महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण की आवश्यकता है।
- **निर्धनता से निपटना:** महिलाओं के राजनीतिक सशक्तिकरण के परिणामस्वरूप भारत में निर्धनता चक्र को समाप्त किया जा सकता है क्योंकि इससे महिलाएं बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षा तथा प्रशिक्षण पर अधिक निवेश का चयन करेंगी। ज्ञातव्य है कि बच्चों और जनसंख्या के कमजोर वर्गों की सुरक्षा और उनके संरक्षण को सुनिश्चित करने में अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर उनकी सहभागिता भलीभांति स्वीकार की गई है।
- **समाज में अपराधों से निपटना:** इसके परिणामस्वरूप नागरिक चर्चाओं में महिलाओं की सहभागिता में वृद्धि होगी और इससे महिलाओं और अल्पसंख्यकों द्वारा उनके विरुद्ध अपराध की घटनाएँ को रिपोर्ट करने की संभावना अधिक हो जाती है।

पंचायतों में कर्मचारियों के भर्ती संबंधी नियम: केंद्र सरकार शीघ्र ही **पंचायतों में गैर-निर्वाचित कर्मचारियों की भर्ती के संबंध में दिशा-निर्देश** जारी करने की योजना बना रही है। पंचायती राज मंत्रालय तथा ग्रामीण विकास मंत्रालय ने 5000 की जनसंख्या वाली ग्राम पंचायतों या ग्राम पंचायतों के समूहों हेतु कम से कम एक पंचायत विकास अधिकारी (PDO) / सचिव, एक तकनीकी सहायक (TA) तथा एक अकाउंटेंट की अनुशंसा हेतु परिपत्र भी जारी किया है। समर्पित कर्मियों के परिणामस्वरूप नियमित ऑडिट रिपोर्टों, खातों के विवरणों आदि के माध्यम से निधियों व सेवाओं की आपूर्तियों बेहतर उपयोग होगा तथा अधिक उत्तरदायित्व सुनिश्चित किया जा सकेगा।

- **बढ़ते कार्यभार से निपटने हेतु उन्हें साधन सम्पन्न बनाना:** हाल ही में **सुमित बोस समिति** ने अपनी रिपोर्ट "ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में बेहतर परिणामों के लिए निष्पादन आधारित भुगतान" में इस हेतु अनुशंसा की थी।

VISION IAS

- **पंचायती राज संस्थाओं को राजीव गाँधी पंचायत सशक्तिकरण अभियान के माध्यम से सुदृढ़ करना:** यह एक केंद्र प्रायोजित योजना है जिसका उद्देश्य ग्रामीण स्थानीय निकायों को आत्मनिर्भर,वित्तीय रूप से स्थिर तथा अधिक सक्षम बनाना है।
- **पंचायती राज संस्थाओं की क्षमताओं में वृद्धि करना:** सरकार ने ग्राम पंचायतों की क्षमताओं में वृद्धि करने तथा परिणामों में सुधार लाने हेतु मिशन अन्त्योदय का शुभारंभ किया। यह कार्य प्रभावी सामाजिक पूँजी, PRIs के क्षमता निर्माण, भागीदारी नियोजन को प्रोत्साहन, योजनाओं के कार्यान्वयन आदि के माध्यम से किया जाएगा।

सुमित बोस समिति की अनुशंसाएं

- **मानव संसाधन हेतु:** प्रत्येक पंचायत में सामान्य प्रशासन तथा विकास कार्यों, दोनों के निष्पादन हेतु एक पूर्णकालिक सचिव की नियुक्ति की जानी चाहिए। मौजूदा ग्राम रोजगार सेवकों को आवश्यक अभियांत्रिक कार्यों, जैसे कि जल आपूर्ति और स्वच्छता से संबंधित अभियांत्रिक कार्यों को करने हेतु औपचारिक रूप से प्रशिक्षित करना चाहिए।
- **सामाजिक उत्तरदायित्व हेतु:** ग्राम सभाओं की बैठकों का आयोजन नियमित होना चाहिए तथा यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि इन बैठकों की सूचना बैठक के सात दिन पहले ही लोगों तक पहुँच जाए। इसके अतिरिक्त पंचायतों का सहभागितापूर्ण नियोजन और बजटिंग, अग्र-सक्रिय प्रकटीकरण, सामाजिक लेखा परीक्षण इत्यादि किया जाना चाहिए।
- **सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अत्यधिक उपयोग:** पंचायतों को स्थानीय नियोजन और प्रगति की निगरानी, ई-खरीद सहित वित्तीय प्रबंधन, कार्य के प्रबंधन एवं मूल्यांकन, कैशबुक के इलेक्ट्रॉनिक रखरखाव आदि से संबंधित डाटाबेस के रखरखाव हेतु केवल ट्रांज़ैक्शन बेस्ड सॉफ्टवेयर (transaction-based software) का प्रयोग करना चाहिए।
- **निगरानी प्रदर्शन:** ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से सृजित सभी संपत्तियों के लिए मानक विकसित किए जाने चाहिए। इसके साथ-साथ क्षेत्र, जनसंख्या, कर्मचारियों तथा पंचायत कार्यालय के लिए आवश्यक अवसंरचना की उपलब्धता एवं अन्य को शामिल करते हुए अनिवार्य आकंड़ों को संकलित किया जाना चाहिए।

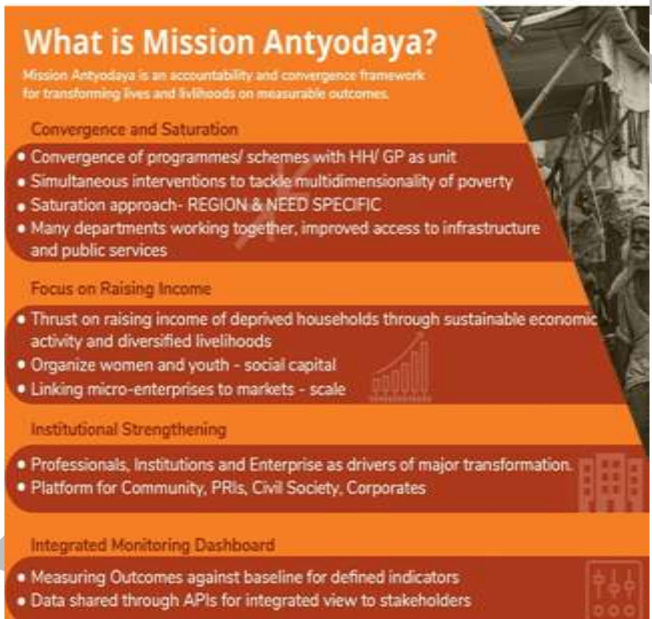

9.2 शहरी स्थानीय निकाय

(Urban Local Bodies: ULBs)

9.2.1 शहरी स्थानीय निकायों से संबंधित मुद्दे

(Issues With ULBs)

- **स्थानीय स्तर पर निर्वाचित प्रतिनिधियों के पास शक्तियों का अभाव:** अधिकांश नगरपालिकाअोें एवं नगर निगमों में यद्यपि महापौर (मेयर) औपचारिक प्रधान होता है, किन्तु नगर निगम की कार्यकारी शक्तियां राज्य सरकार द्वारा नियुक्त आयुक्त में निहित होती हैं।
- **अप्रभावी नेतृत्व:** महापौर एवं पार्षद (काउंसलर्स) इन निकायों के माध्यम से आवश्यक नगरीय सुधार लाने वाले एजेंट बनने के स्थान पर इन्हें अपने राजनीतिक जीवन हेतु सोपान के रूप में देखते हैं और इसे प्रभावी नेतृत्व प्रदान नहीं कर पाते हैं।

- **ULBs की शक्तियों का अन्य निकायों को प्रत्यायोजन:** उदाहरण के लिए- स्मार्ट सिटी मिशन जैसे केंद्र सरकार के कार्यक्रमों में SPV के मुख्य कार्यकारी अधिकारी को स्थानीय परियोजना से संबंधित ULBs को प्राप्त निर्णय लेने की शक्तियों का प्रत्यायोजन किया गया है।
- **राज्य सरकार का अत्यधिक नियंत्रण-** राज्य सरकारों को कुछ परिस्थितियों में नगरपालिकाओं एवं स्थानीय निकायों को हटाने और भंग करने की शक्ति प्राप्त है। इसके अतिरिक्त, राज्य सरकारों को निम्न शक्तियां भी प्राप्त हैं-
    - वे नगरपालिकाओं के बजट (निगम के अलावा) को मंजूरी प्रदान करती हैं।
    - यहां तक कि संशोधित स्थानीय कर संरचना को भी राज्य सरकार की पूर्व स्वीकृति एवं बाद में सरकार के अनुमोदन की आवश्यकता पड़ती है।
    - लेखांकन और लेखा परीक्षा प्रणाली,आदि के द्वारा नियंत्रण।
- **वित्त का अभाव-** ULBs की आय के मुख्य स्रोत विभिन्न प्रकार के कर हैं, जिनमें से अधिकांश संघ एवं राज्य सरकारों द्वारा लगाए जाते हैं। शहरी स्थानीय निकायों द्वारा एकत्र की गई कर राशि, प्रदत्त सेवाओं के खर्च को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होती है। इन शहरी निकायों का राजस्व कुल सकल घरेलू उत्पाद के 1% से भी कम है। कुल मिलाकर परिणाम यह है कि शहरी स्थानीय निकायों को पर्याप्त वित्तीय स्वायत्तता प्राप्त नहीं है।
- **पैरास्टेटल एजेंसियों (parastatal Agencies) का निर्माण:** उदाहरण के लिए शहरी विकास प्राधिकरण (जो शहर की आधारभूत संरचना का निर्माण करता है) एवं सार्वजनिक निगम (जो शहर को जल, बिजली और परिवहन जैसी सेवाएं उपलब्ध करवाते हैं) केवल राज्य सरकार के प्रति उत्तरदायी हैं, शहरी स्थानीय निकायों के प्रति नहीं। (**'पैरास्टेटल'** वे संस्थान/संगठन हैं, जो पूर्ण या आंशिक रूप से सरकार के स्वामित्व या नियंत्रण के अधीन होते हैं)
- **भ्रष्टाचार और उसके कारण प्रभावकारिता में कमी**: इन स्थानीय निकायों की समस्याओं के समाधान के लिए प्रशासनिक तंत्र अपर्याप्त एवं अप्रभावी है। जिन कर्मचारियों को कम भुगतान किया जाता है वे भ्रष्ट कार्यों में संलिप्त होते हैं। इससे राजस्व आय में हानि होती है तथा प्रशासन की प्रभावकारिता है।
- **प्रभावी और कुशल कर्मचारियों की कमी:** स्थानीय शहरी निकायों को जनसंख्या की गुणात्मक एवं मात्रात्मक रूप से बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विशेषज्ञों की पेशेवर सेवाओं की आवश्यकता होती है। शहरी निकायों की स्थिति लगातार खराब हो रही है, इसका मुख्य कारण शहरी क्षेत्रों की ओर होने वाले ग्रामीण प्रवासन में वृद्धि है। इसने शहरी क्षेत्रों को तीव्रता से परिवर्तित कर दिया है, परिणामस्वरूप लोगों की मूलभूत सेवाओं तक पहुंच में कमी आई है।
- **जन-सहभागिता का निम्न स्तर**: प्रशासन प्रणाली में भाग लेने में जनता की उदासीनता ऐसे संस्थानों को आत्मसंतुष्ट और गैर-जिम्मेदार बना देती है।
- **मार्च 2018 में जारी भारत की शहर प्रणाली के वार्षिक सर्वेक्षण, 2017 में इंगित किए गए मुद्दे:**
    - **शहरी स्थानीय निकायों में लोकतान्त्रिक प्रकृति का अभाव: सर्वेक्षण किये गए** 23 शहरों में से केवल दो शहरों में ही कम से कम कागज पर वार्ड समितियां एवं क्षेत्र सभाएं मौजूद थीं।
    - 23 शहरों में से 9 शहरों में **सिटीजन चार्टर** उपलब्ध था। हालाँकि, इन शहरों में जहां चार्टर उपलब्ध है, वहां भी सेवा स्तरों और सेवाओं प्रदायगी आदि के लिए समय-सीमा का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।
    - नागरिकों की समस्याओं के समाधान के लिए केवल तीन भारतीय शहरों में ही लोकपाल की व्यवस्था है: भुवनेश्वर, रांची और तिरुवनंतपुरम।
    - 23 शहरों में से 19 शहर ऐसे है जो अपनी कार्यप्रणाली और कामकाज के बारे में मूलभूत आंकड़े भी नहीं जारी करते हैं।
    - अधिकांश भारतीय शहरों द्वारा टाउन एंड कंट्री प्लानिंग एक्ट का उपयोग किया जाता है। इस एक्ट को अर्थव्यवस्था उदारीकृत होने से दशकों पहले तैयार किया गया था। आधुनिक एवं समकालीन शहरी नियोजन ढांचे के अभाव के कारण प्रति वर्ष भारत की GDP के 3% की हानि होती है।

9.2.2 ULBS हेतु सरकार द्वारा उठाये गए कदम

(Steps Taken By Government For ULBs)

- **प्रदर्शन आधारित अनुदान: 14 वें वित्त आयोग ने** यह निर्धारित किया है कि लेखांकन, लेखा परीक्षा, रिपोर्टिंग जैसे विभिन्न क्षेत्रों में सुधारों में प्रदर्शन के आधार पर **ULBs को अनुदान** प्रदान करने की एक विस्तृत प्रक्रिया निर्धारित की जाए।
- केंद्रीय आवास एवं शहरी मामलों के मंत्रालय ने नगरपालिकाओं में सुधारों के लिए एक व्यापक रोड मैप बनाया है। इस रोडमैप में तीन मुख्य मार्गों सहित सुधार के तीन स्तर सम्मिलित हैं, यथा - शासन, नियोजन एवं वित्त।

VISION IAS

चरण	उद्देश्य	उठाये गए कदम या सुधार
स्तर-1	जारी मुख्य वित्तीय और सेवा प्रदायगी सुधारों को बढ़ावा देना।	शहरों का कार्य: • प्रदर्शन अनुदान की प्राप्ति के समय विगत **दो वित्तीय वर्षों के लेखापरीक्षा विवरण** को प्रस्तुत करना। • विगत वर्ष के **राजस्व में वृद्धि** प्रदर्शित करना, जो कि लेखा परीक्षा खाते से प्रदर्शित हो रही हो। • जल आपूर्ति के लिए सेवा स्तर का मापन एवं प्रकाशन।
स्तर-2	सुधार प्रक्रिया को और बेहतर बनाने के लिए प्रयास करना	• **वैल्यू कैप्चर फाइनेंसिंग पॉलिसी** का निर्माण एवं क्रियान्वयन। • यह सुनिश्चित करना कि सभी ULBs की **क्रेडिट रेटिंग** की गयी हो और निवेश योग्य ग्रेड-रेटिंग वाले शहर ही म्युनिसिपल बांड जारी करें। • **म्युनिसिपल कैडर को पेशेवर बनाना,** रिक्त पदों को भरना एवं पेशेवरों की लैटरल एंट्री को अनुमति प्रदान करना। • **ट्रस्ट एंड वेरीफाई मॉडल** और सूचना तकनीक के उपयोग के माध्यम से **भूमि अधिकार कानून** को क्रियान्वित करना।
स्तर 3	तीव्र एवं अधिक परिवर्तनकारी सुधारों को बढ़ावा देना	• **निधि, प्रकार्यों एवं पदाधिकारियों के अधिक हस्तांतरण** के माध्यम से विकेंद्रीकरण को बढ़ावा देना तथा ULBs को सुदृढ़ बनाना। • आत्म-निर्भरता के लिए **स्वयं के राजस्व स्रोतों** में वृद्धि करना। • शहरी नियोजन में लचीलापन लाना, विशेष रूप से शहरों के मास्टर प्लान को वहां की बदलती सामाजिक-आर्थिक स्थितियों से संबद्ध करना।

- **म्युनिसिपल बांड:** वर्ष 2017 में नीति आयोग द्वारा अपने तीन साल के एक्शन एजेंडा दस्तावेज़ में म्युनिसिपल बॉन्ड मार्किट के उपयोग की चर्चा की गयी है। यह बांड ऋण प्राप्ति की कम लागत को सुनिश्चित करेगा जो ऐसी म्युनिसिपल परियोजनाओं के लिए आवश्यक है जिनकी व्यवहार्यता निम्न, परिपक्वता अवधि दीर्घ और लागत वसूली निम्न से मध्यम के बीच होती है।
- **महापौर का प्रत्यक्ष निर्वाचन:** देश में महापौरों के निर्वाचन के लिए प्रत्यक्ष चुनाव एवं उसके पद के सशक्तिकरण के प्रावधान से सम्बंधित एक निजी सदस्य विधेयक संसद में द्वारा प्रस्तुत किया गया था। यदि ऐसा होता है तो यह जवाबदेहिता में वृद्धि करने में सहायक होगा क्योंकि महापौर से सीधे पूछताछ की जा सकेगी तथा साथ ही इससे पारदर्शिता में वृद्धि होगी क्योंकि संचार तथा रिपोर्टिंग प्रत्यक्ष रूप से महापौर द्वारा की जाएगी।
- **कायाकल्प और शहरी परिवर्तन हेतु अटल मिशन (AMRUT):** वर्ष 2015-17 के दौरान, इस योजना के तहत विभिन्न बुनियादी सुधार किए गए जिसके फलस्वरूप:
  - **उपयोगकर्ता शुल्क का बेहतर संग्रह:** 14 राज्यों के 104 शहरों में 90% से अधिक उपयोगकर्ता शुल्क एकत्र किया गया।
  - **21 राज्यों में म्युनिसिपल कैडर** की स्थापना।
  - **बेहतर सेवा प्रदायगी:** 256 शहरों में **नागरिक सेवाओं** की **ऑनलाइन प्रदायगी** हेतु पहलें आरंभ की गयी हैं।
  - **अन्य:** 21 राज्यों ने **राज्य वित्त आयोग** की स्थापना की है एवं 363 शहरों ने अपनी **क्रेडिट रेटिंग** को पूरा किया है।

AMRUT के बारे में :

- यह पांच वर्षों की अवधि में 500 शहरों और कस्बों को निवास योग्य कुशल शहरी क्षेत्रों में परिवर्तित करने पर केंद्रित है।
- यह स्मार्ट सिटीज मिशन के क्षेत्र आधारित दृष्टिकोण के विपरीत **एक परियोजना उन्मुख विकास** दृष्टिकोण पर आधारित योजना है।
- इस योजना में केंद्र द्वारा 80% बजटीय सहयोग किया जा रहा है तथा यह एक केंद्र प्रायोजित योजना है।
- इसके लक्ष्य हैं:
  - इसमें यह सुनिश्चित किया जा रहा है कि प्रत्येक घर को जलापूर्ति की सुनिश्चितता वाले नल की उपलब्धता हो और प्रत्येक घर में सीवरेज कनेक्शन हो;
  - हरे-भरे एवं बेहतर रखरखाव वाले खुले स्थानों (जैसे पार्कों) को विकसित करके शहरों के सुविधात्मक मूल्य में वृद्धि करना; और
  - सार्वजनिक परिवहन को प्रोत्साहित करना अथवा गैर मोटर चालित परिवहन (जैसे चलना और साइकिल चलाना) आदि के लिए सुविधाओं का निर्माण करना और प्रदूषण को नियंत्रित करना।

VISION IAS

निष्कर्ष:

भारत में स्थानीय स्वशासन को सशक्त किया जाना चाहिए क्योंकि इसके द्वारा स्थानीय आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है और उत्तरदायी शासन सुनिश्चित होता है। चूंकि शहरी स्थानीय निकायों को अपने निवासियों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु संघर्ष करना पड़ता है, अतः शहरी निकायों में स्वशासन स्थापित करने के मौजूदा तरीकों की पुनः जांच की जानी चाहिए। 73वें संविधान संशोधन के तहत पंचायतों को तीन स्तर प्रदान किए गए हैं, परन्तु इसके विपरीत शहरी क्षेत्रों में शक्ति केवल एक नगरपालिका निकाय में ही केंद्रित होती है (चाहे वह एक नगर निगम हो, नगरपालिका परिषद हो या नगर पंचायत)। ऐसे में जब भारतीय शहर उत्तरोत्तर विशाल होते जा रहे हैं और कुछ तो 10 मिलियन आबादी के स्तर को पार कर चुके हैं, इस संरचना का पुनर्गठन किये जाने की आवश्यकता है।

स्थानीय निकायों के वित्तपोषण में वृद्धि करने हेतु विभिन्न अभिनव उपायों को भी अपनाया जा सकता है जैसे कि:

- स्थानीय समुदायों द्वारा स्पेशल पर्पज वेहिकल (SPV) का निर्माण किया जा सकता है: यदि अवसंरचना की आवश्यकता हो एवं स्थानीय लोग इसके लिए भुगतान करने को तैयार हों तो समुदाय एक SPV बना सकता है। इसका उपयोग अपेक्षित परियोजना के लिए निविदाएं जारी करने तथा वित्त के संग्रहण एवं नियोजन हेतु किया जा सकता है।
- समय के साथ राजस्व में वृद्धि को सुनिश्चित करने के लिए उचित कर एवं शुल्क दरों का निर्धारण, संग्रह क्षमता में सुधार तथा वित्तपोषण तंत्र का विस्तार किया जाना चाहिए।
- स्थानीय निकायों की ऋण पूंजी बाजारों तक पहुंच वित्तपोषण का एक मूल्यवान स्रोत साबित हो सकती है। यह उन्हें योजनाबद्ध बुनियादी ढांचे के विकास के लिए अवसर प्रदान करेगी। किन्तु इसके लिए स्थानीय निकायों को अपनी सम्पूर्ण प्रशासनिक एवं तकनीकी क्षमता में अत्यधिक सुधार करने की आवश्यकता है ताकि उन्हें ऋण बॉन्ड, विशेष रूप से दीर्घकालिक बॉन्ड, प्राप्त हो सकें।

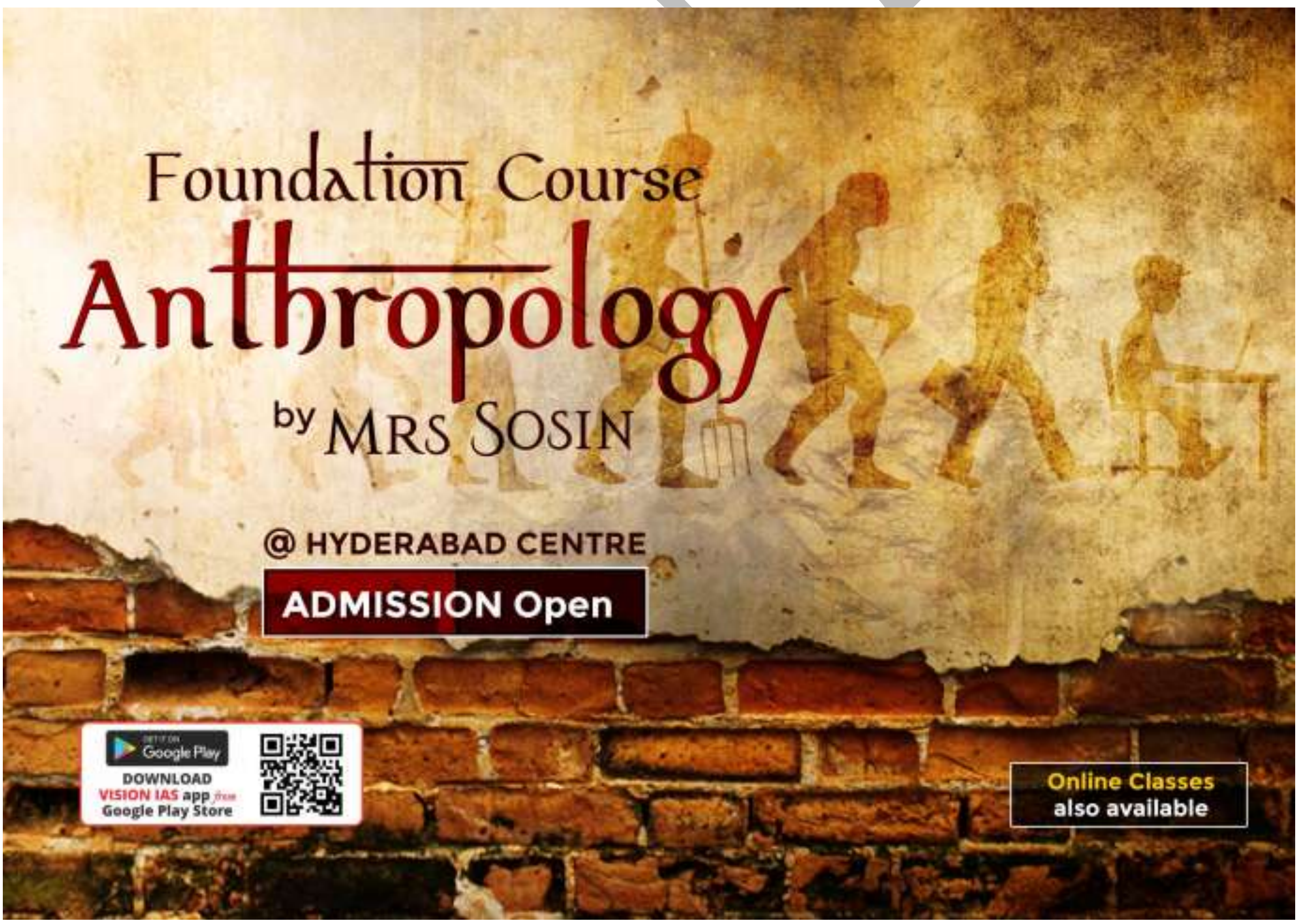

Copyright © by Vision IAS

All rights are reserved. No part of this document may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without prior permission of Vision IAS